सनातन हिन्दूधर्म और बौद्धधर्म

श्यामसुन्दर उपाध्याय
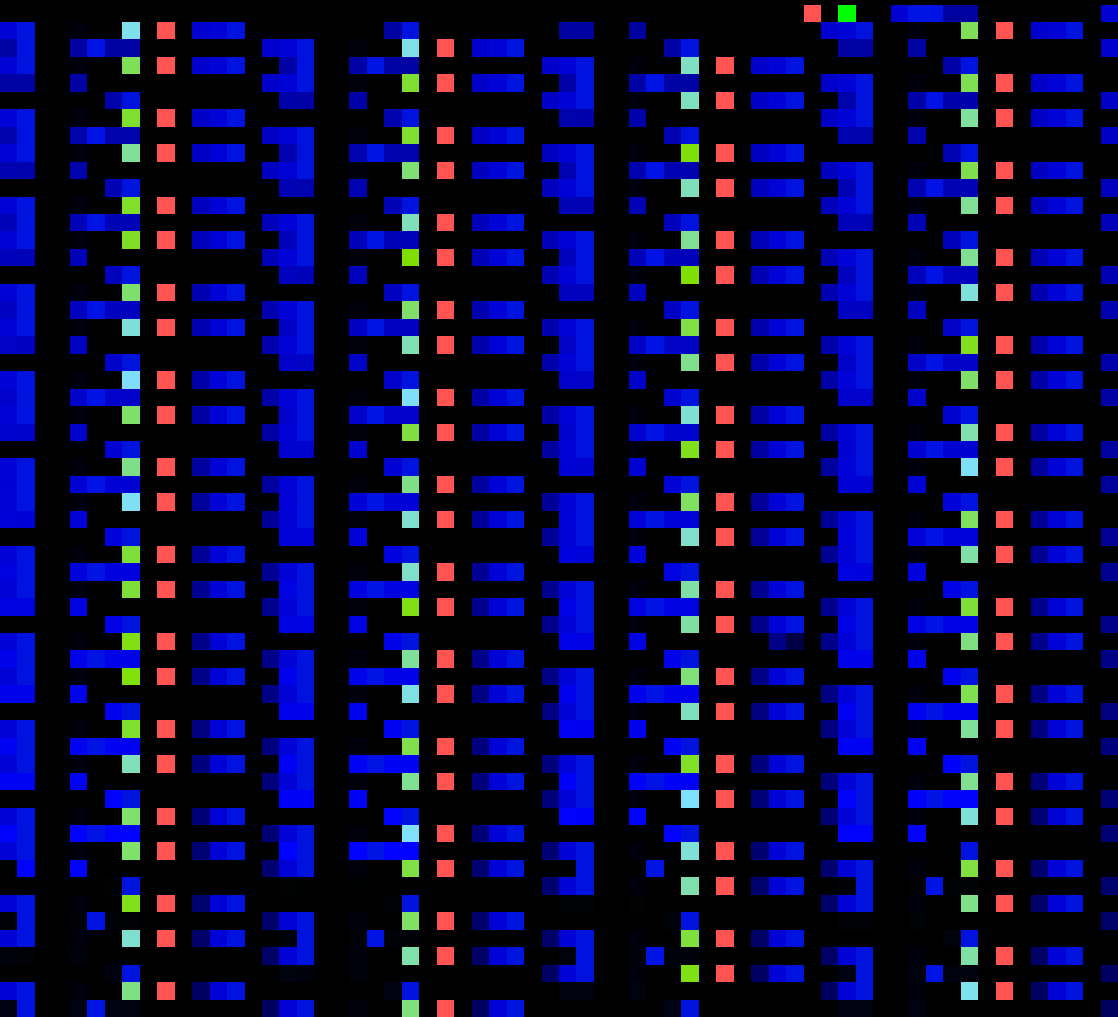
नातन हिन्दूधर्म और बौद्धधर्म

लेखक

श्यामसुन्दर उपाध्याय

एम०ए० (राजनीति-हिन्दी), एल०टी०, साहित्यरत्न (हिन्दी-संस्कृत)

अवकाशप्राप्त प्रवक्ता, डी०ए०वी० इण्टर कॉलेज, बलरामपुर

नई बस्ती, बलरामपुर (उ०प्र०)

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

प्रस्तावना

निहित स्वार्थ तन्मयतासे लग्न हैं। भ्रान्तियों को जन्म देने में, फैलाने मे और समृद्ध करने में। हिन्दूधर्म और बौद्धधर्म एक दूसरे के विरोधी हैं, इसे सिद्ध करने के लिए गोष्ठियाँ की जा रही हैं, लेख छापे जा रहे हैं। गहराई मे जाने का किसी के पास भी समय नहीं है। यह पुस्तिका इस दिशा में एक अनूठा प्रयास है। अगर यह कहा जाए कि इसने गागर में सागर भर दिया है तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। लेखक ने सनातन हिन्दूधर्म के प्रत्येक पक्ष को सरल भाषा में, ग्रन्थों के अनुमोदन के सात प्रस्तुत करने का अनुकरणीय प्रयास किया है। यह मानना होगा कि बौद्धधर्म सनातन हिन्दूधर्म की कोई 'कार्बन कापी' नहीं है। दो चीज़े हैं, दोनों के सृजन में जमीन आसमान का अन्तर है। अत: दोनों में भिन्नता होना स्वाभाविक है। पर यह भिन्नता शारीरिक है। बाहरी है, आन्तरिक नहीं। सनातन हिन्दूधर्म प्राचीन धर्म है और बौद्धधर्म इसके समक्ष नवीनतम ही कहा जायगा। हिन्दूधर्म में मानव जीवन का कोई भी क्षेत्र अछूता नहीं रहा है। मानव के सर्वांगीण विकास का मन्त्र इसमें निहित है। यह आत्मा को परमात्मा बनाने की कला को सिखाता है। यह कहना ठीक होगा कि बाद मे आने वाले धर्मों ने स्थापित धर्म से बहुत कुछ ग्रहण किया है।

परीक्षा में उत्तीर्ण होने के दो साधन है—

१. सारे कोर्स की किताबें पूरी तरह पढ़कर या

२. छोटा रास्ता अपना कर तथा बनी बनाई सामग्री के द्वारा।

दोनों विद्यार्थियों का लक्ष्य एक ही है, हाँ उसकी प्राप्ति के साधन अलग-अलग हो सकते हैं। यही बात धर्मो की है। सनातन हिन्दूधर्म और बौद्धधर्म दोनो का लक्ष्य एक ही है और हैरानी की बात है कि दोनों में साध्य के लिए साधन एक से ही दीखते हैं। यह खुशी की बात भी है। बौद्धधर्म ने यदा-कदा, कही कहीं सनातन हिन्दूधर्म के क्रिया-कलापों को संक्षिप्त रूप देने का प्रयास किया है। शायद वह समय की माँग थी। परन्तु क्रिया-कलापों का मूल स्वरूप वही रहा। जैसे हवन की अग्नि के स्थान पर बौद्धों ने धूप-अगरबत्ती को जलाना उचित समझा। आग तो फिर भी वही है। दोनों दोनों धर्मों की तुलनात्मक समीक्षा बहुत ही सुन्दर, रोचक एवं सहज ढंग से की गई है। लेखक ने अपने भरसक

प्रयत्न से बहुत सी भ्रान्तियों को दूर करने का अच्छा कार्य किया है। इस प्रयास की आज के उथल-पुथल वाले समय में अत्यन्त आवश्यकता थी। यह प्रयास वैमनस्य दूर करने में काफी कारगर सिद्ध होगा।

सचमुच यह पुस्तिका इस बात को उजागर करने में कि सनातन हिन्दूधर्म और बौद्धधर्म में समता है। काफी हद तक सफल रहेगी। दोनों के शरीरों में आत्मा वही है। ऊपरी वस्त्रों में अन्तर हो सकता है।

✣

इतिश्री

पुस्तक के प्रथम पन्नों में धर्म का वास्तविक स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। उसका विराट रूप जीवन के प्रत्येक पक्ष को सँजोए हुए है। लेखक ने बहुत ही चतुराई तथा विद्वत्ता से गिनती के पन्नों में धर्म का सच्चा रूप दर्शाया है। सनातन हिन्दूधर्म और बौद्धधर्म दोनों की आधारशिला कर्मफल का सिद्धान्त है। बौद्धधर्म द्वारा इस सिद्धान्त का पदार्पण अपने आपमें हिन्दूधर्म की गरिमा को दर्शाता है। हिन्दूधर्म की आधारशिला अभेद्य सिद्ध हुई है। कोई भी आने वाला धर्म उसके विपरीत जाने का चाहते हुए भी साहस नहीं बटोर सकता। दोनों धर्म तृष्णा को इस आवागमनरूपी चक्र के निरन्तर चलाने में मूल सहायक मानते हैं। कामना का त्याग रामबाण है हर व्याधि का। यह सहायक होता है जन्म, रोग और जरा से छुटकारा पाने में। तृष्णा को जीतने के लिए दोनों धर्म तीन मार्ग बताते हैं—भक्ति, कर्म और योग (ज्ञान) मार्ग।

हिन्दूधर्म ईश्वर में मन लगाने को और उसकी पूजा करने को विशेष महत्ता देता है। बौद्धधर्म बुद्ध में मन लगाने को और उसकी पूजा करने को कहता है। याद रखिए भगवान बुद्ध ईश्वर का ही रूप हैं। दोनों धर्मों में समता इसी बात से टपकती है कि दोनों में पूजा की विधि लगभग समान है। अन्तर केवल अलंकारों की कमी या अधिकता में निहित है और यह तो केवल देश, काल और पात्र के निमित्त से हुआ है। समय अँगड़ाई लेता रहता है और अपने साथ क्रिया-कलापों, मान्यताओं इत्यादि को भी लपेट लेता है। पर इन सबका मूल, सूक्ष्म स्वरूप वही रहता है।

सनातन हिन्दूधर्म की भाँति बौद्धधर्म भी निष्काम कर्म को प्राथमिकता देता है। दोनों धर्मों का उद्देश्य ज्ञानप्राप्ति है। योग द्वारा ज्ञानप्राप्ति परमानन्द की प्राप्ति करवाता है। दोनों धर्मों में चार आर्य सत्य हैं—संसार (दुःख), संसार हेतु (दुःख का कारण), मोक्षोपाय (रोग की दवा), मोक्ष (रोग से मुक्ति) बौद्ध सिद्धान्त भारतीय दर्शन परम्परा से विच्छिन्न नहीं है।

बुद्ध के अष्टाङ्गिक मार्ग का उल्लेख भारतीय दर्शन में पहले से अंगीकार है। सनातन हिन्दूधर्म के सोलह तत्त्वों में से दस तत्त्व बौद्धधर्म में स्थापित हैं। बाकी के छः तत्त्व भी किसी न किसी रूप में इस धर्म में मिलते हैं। ऐसा लगता है कि ये दस तत्त्व, १. धृति, २. क्षमा, ३. दया, ४. अस्तेय, ५ शौच

६. इन्द्रियविग्रह, ७. धैर्य, ८. विद्या, ९. सत्य तथा १०. अक्रोध इस धर्म ने हिन्दूधर्म से ही ग्रहण किए हैं। इससे यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि हिन्दूधर्म की सत्ता अभेदय और अनुकरणीय है।

दोनों धर्मों में संस्कारों का उद्देश्य मनुष्य को पुण्य कर्म करने के लिए सक्षम बनाना है। संस्कारों के करने की विधि भी समान है। पूजा-पद्धति में थोडा अन्तर है। सनातनधर्मी विभिन्न देवी-देवताओं की पूजा करता है। बौद्धधर्म अनुयायी बुद्ध, धर्म और संघ की पूजा करता है। दोनों धर्मों में सूत्रों, पवित्र पुस्तकों का पारायण होता है। इसका उद्देश्य भी समान है—इष्ट के गुणों को अंगीकार करना तथा पूजा से पूज्य तुल्य बनना।

यज्ञ की चर्चा करते हुए लेखक ने बड़े ही सुन्दर ढंग से यज्ञ की व्याख्या की है और इसके वास्तविक अर्थ को समझाया है। कालान्तर में आई बुराइयों के कारण ही बुद्ध ने यज्ञ के विकृत रूप का विरोध और खण्डन किया और इसे अधिक महत्ता नहीं दी। यज्ञ के पवित्र और प्रारम्भिक रूप को भगवान स्वय मान्यता देते हैं। किसी भी लाभकारी और पवित्र वस्तु या धारणा को कौन सा दर्शन अंगीकार करने से मना कर सकता है।

दोनों धर्मों में व्रत और उपवास संन्यास (भिक्षु) जीवन का आनन्द लेने के लिए किए जाते हैं। दोनों के मानसिक और वाचिक व्रतों में समता है। कायिक व्रत में थोड़ी सी भिन्नता है। बौद्धधर्म में भोजन एक ही बार (१२ बजे दिन तक) किया जाता है। सनातन हिन्दूधर्म में बहुत से व्रत हैं और उनके उद्देश्य भी अलग-अलग हैं। जैसे करवाचौथ का व्रत पति को समर्पित है। मंगलवार का व्रत श्री हनुमानजी को समर्पित है। परन्तु अलग-अलग व्रतों का उद्देश्य कामनाओं पर विजय पाना है। मन एकाग्र करना है तथा तृष्णा को क्षीण करना है। मानसिक और आत्मिक शक्ति को बढ़ाना है। बौद्धधर्म में व्रतों का उद्देश्य आसक्ति का त्याग कर निर्वाण की ओर अग्रसर होना है। बौद्धधर्म मे व्रतों में सरलता लाने का प्रयास किया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि सनातन हिन्दूधर्म के जिन व्रतों में विकृतियाँ आ गई थीं, बौद्धधर्म में उन्हें दूर करने की सफल चेष्टा हुई है।

बौद्धधर्म में तीर्थ के स्थान पर स्मारक का प्रयोग किया गया है। दोनों धर्मों में तीर्थ तृष्णा की समाप्ति के लिए हैं। तीर्थयात्रा के बहाने संन्यासी (भिक्षु) संन्यासी जीवन का पूर्वाभ्यास करता है। बौद्धधर्म में जितनी भी चीजे भगवान बुद्ध से सम्बन्धित हैं वे सब तीर्थ हैं। क्योंकि सनातन हिन्दूधर्म में इष्टदेवों की विभिन्नता है अतः तीर्थ भी विभिन्नता लिए हुए हैं। दुर्गा माँ को ही ले लीजिए, सारे भारतवर्ष में उनके तीर्थ हैं और माँ अलग-अलग नामों से जानी जाती हैं।

तार्थयात्रा मानासक श्रद्धा को दृटतर बनान म महत्त्वपूर्ण योग दता है इसस ससार को त्यागने का भावना उत्पन्न हाता ह और तार्थयात्रा माया माह से दूर रहन का अभ्यास करता है।

पुस्तक में पूजा की महत्ता और उसका असली स्वरूप स्पष्ट हैं। दोनो धर्मों में पूजा और अर्चना का उद्देश्य एक ही है—पूज्य जैसा बनना। दोनों में पूजा की पद्धति भी लगभग समान है। नाम जप का उद्देश्य भी इष्ट जैसा बनना है। पूजा-आदि का विधि-विधान दोनों धर्म मानते हैं परन्तु नाम जप में ऐसा नहीं है। बौद्धधर्म में केवल बुद्ध का नाम जपा जाता है क्योंकि बुद्ध स्वयं भगवान हैं। मन्त्र जप दोनों धर्मों में है और रक्षा हेतु है। दोनों धर्म मन की शुद्धि के लिए मन्त्रोचारण को पूर्ण मान्यता प्रदान करते हैं। गायत्री मन्त्र तो शायद भगवान बुद्ध का प्रिय मन्त्र था।

दोनों धर्मों में आश्रम व्यवस्था है, केवल नामों में विभिन्नता है।

ब्रह्मचर्य—श्रमरोर

गृहस्थ—गृहस्थ या उपासक

वानप्रस्थ—अरण्यक

संन्यास—भिक्षु

सनातन हिन्दूधर्म में आश्रमों की अवस्था तथा समय निश्चित है परन्तु बौद्धधर्म में दृष्टिकोण लचीला है। हिन्दूधर्म में वानप्रस्थी भिक्षा नहीं माँगता जबकि अरण्यक भिक्षा माँगता है। बौद्धधर्म हिंसापूर्ण जीविका अपनाने की आज्ञा नहीं देता जबकि सनातनधर्म निषादों और चाण्डालों को ऐसा करने का निषेध नहीं करता। संन्यासी और भिक्षु जीवन में समता है। जाति व्यवस्था के क्षेत्र में दोनों धर्म एक ही दृष्टिकोण रखते हैं—जन्म से नहीं, कर्म से जाति का निर्धारण करना चाहिए। अत हम देखते हैं कि दोनों धर्मों का दृष्टिकोण कितना व्यवहारिक है। बौद्धधर्म में सनातन हिन्दूधर्म की तरह उपनाम का प्रयोग नहीं होता। ऐसा शायद इसलिए है कि कालान्तर में मनुष्य ने केवल जन्म से ही जाति का निर्धारण करना शुरू कर दिया था। इस तरह एक कट्टरपन्थी विचारधारा पनपने लगी थी। भगवान बुद्ध ने उपनाम की प्रथा को धार्मिक रूप से निषेध करके इस कट्टरपन्थी विचारधारा पर सफल तुषारापात किया था। हिन्दूधर्म में भी उपनाम को क्षीण करने की प्रथा चल पडी है, समय लगेगा प्राचीन मान्यताओं को, जो रूढ़िवादिता का प्रतीक हैं और जो धर्म को ढाल बनाए हुए हैं, दूर होने में।

सनातन हिन्दूधर्म की तरह बौद्धधर्म भी योग को मान्यता देता है। दोनो में योग का उद्देश्य समान है। सनातनधर्म में योग से ज्ञान की प्राप्ति होती है तो बौद्धधर्म में योगाभ्यास से प्रज्ञा और फिर ज्ञान प्राप्त होता है।

भगवान बुद्ध नास्तिक नहीं हैं नामक अध्याय चौंका देना वाला है परन्तु भ्रान्तियों को क्षीण करने में सक्षम है। जो भ्रान्ति दोनों धर्मों को अलग अलग जतलाती है, का अस्तित्व ही धूमिल पड़ता दिखाई देता है। सब कुछ मिथ्या लगता है। बुद्ध ईश्वर की सत्ता में अटूट विश्वास रखते हैं। हाँ, वे निर्वाण के लम्बे सफर में ईश्वर की आवश्यकता को नहीं मानते। उनका मत है कि व्यक्ति स्वयं आत्मा से परमात्मा बनने की क्षमता रखता है। बुद्ध को भगवान का अवतार माना जाता है। क्या इससे इस गलत धारणा पर वज्रपात नहीं होता कि भगवान बुद्ध नास्तिक थे। अगर वे भगवान के अवतार हैं तो भगवान और ईश्वर की सत्ता स्वयं सिद्ध हो जाती है। स्वार्थी लोगों ने अपनी दूकानदारी सजाने के लिए ऐसा मिथ्या प्रचार कर सनातन हिन्दूधर्म और बौद्धधर्म को विरोधी अखाड़ों में खड़ा कर दिया है। इस में रत्ती भर भी अतिशयोक्ति नहीं होगी कि बुद्ध नास्तिक नहीं थे।

गौतम बुद्ध के चार आर्य सत्य भारतीय परम्परा से भिन्न नहीं हैं। अष्टाङ्गिक मार्ग सनातन हिन्दूधर्म का निचोड़ है। धर्म और अधर्म को बौद्धधर्म कुशल और अकुशल कहता है। मोक्षप्राप्ति के आठ पड़ाव सनातनधर्म में भी निहित हैं। सनातनधर्म के दस लक्षण बौद्धधर्म में भी स्वीकृत हैं। तुलनात्मक दृष्टि से जब हम दोनों धर्मों को देखते हैं तो लगता है कि हम किसी वस्तु की पुनरावृत्ति ही कर रहे हैं।

संस्कारों का उल्लेख बहुत ही विस्तृत है। बौद्धधर्म के संस्कारों का प्रतिबिम्ब पाठकगण सनातन हिन्दूधर्म के दर्पण में स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। बौद्धधर्म में रीति-रिवाजों में सरलता लाने का प्रयास किया गया है। सनातनधर्म भी इसी ओर अग्रसर है। स्वार्थी तत्त्वों ने संस्कारों के क्रिया-कलापों में जटिलता पैदा कर दी है। भौतिकवाद के बढ़ते प्रभाव से हिन्दूधर्मी भी अछूते नहीं रह पाए। नवीन धर्म होने के नाते बौद्धधर्म ने इन विषमताओं के बाहरी आवरण को बेध कर संस्कारों को उनका वास्तविक रूप प्रदान करने की चेष्टा की है। परन्तु यह अटल सत्य है कि जीव के गर्भ में आने से लेकर मृत्युपर्यन्त सभी संस्कार सनातनधर्म की देन हैं। और हमारी पवित्र धरोहर हैं। इस अध्याय को पढ़ने के बाद यह प्रतीत होता है कि ये दोनों धर्म एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

यज्ञ के वास्तविक अर्थों को बताते हुए लेखक स्पष्ट रूप से कहता है कि यज्ञ एक साधन-मात्र है, मोक्ष की प्राप्ति नहीं करवा सकता। शायद इसी कारण से और बाद में यज्ञों में आई जटिलताओं और विषमताओं के कारण ही बौद्धधर्म में यज्ञ की इतनी महत्ता नहीं दिखाई देती। यज्ञ-कर्मों की स्थापना में सहायक हैं। दान जो यज्ञ का अभिन्न अंग है, परित्याग के रूप में प्रस्तुत किया गया है। परित्याग से व्यक्ति में कई धर्मलक्षणों का प्रवेश हो जाता है लेखक ने भरसक

प्रयत्न किया है यह समझान का कि यज्ञों में हिंसा नहीं होती हिंसा तो धूर्तों कपटियो, मक्कारो तथा स्वार्थी लोगों द्वारा प्रक्षिप्त किया गया है। शास्त्रो की पंक्तियों के माध्यम से लेखक ने सफल प्रयास किया है कि भगवान बुद्ध भी यज्ञो के विरुद्ध नहीं थे। वे तो यज्ञों में व्याप्त बुराइयों के विरोधी थे. अगर वे यज्ञो के विरोधी होते तो अपने पिता की मृत्यु पर यज्ञ का आयोजन न करवाते। बुद्ध गायत्री मन्त्र के जप को पुण्यदायक मानते थे। इस अध्याय में यज्ञों के व्यवहारिक लाभों को बड़े ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया है। अन्त में इस सन्दर्भ में यह कहना उचित ही होगा कि यदि यज्ञ बुरी चीज़ होती तो भगवान बुद्ध उसकी सफलता हेतु उपाय क्यों बताते ?

सनातन हिन्दूधर्म उदारवादी है। तृष्णा को जीतने के लिए इसने तीन मार्ग बताए हैं, एक मार्ग नहीं। एक मार्ग का पर्दापण उसे संकुचित बना देता है। तीनों मार्ग मनुष्यों के सामर्थ्य के अनुसार प्रस्तुत किए हैं। क्या यह उदारवादिता नहीं है ? कोई भी मोक्ष का अभिलाषी अपने शारीरिक, भौतिक, मानसिक, बौद्धिक, अध्यात्मिक या किसी अन्य कमी के कारण मोक्ष से वंचित नहीं रह सकता। सबके लिए मार्ग खुला है। व्यक्ति कोई भी मार्ग अपना सकता है। कोई एक प्रतिपादित मार्ग ही नहीं, यह है सनातन हिन्दूधर्म की विशेषता। स्मृति में उद्धृत है—

धर्म यो बाधते धर्मो न स धर्मः कुधर्म तत्।
अविरोधी तु यो धर्मः स धर्म इति निश्चयः॥

जो धर्म दूसरे धर्म के विरोध का आभास कराता है वह सच्चा धर्म नहीं है। क्या यह श्लोक किसी संकीर्णता को दर्शाता है ?

आकाशात्पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम्।
सर्वदेव नमस्कारः केशवं प्रति गच्छति॥

आकाश से अलग-अलग जगह अवतरित वर्षा अन्ततः सागर में समावेश पाती है, इसी तरह किसी भी इष्ट की पूजा अन्ततः उसी एक ईश्वर जो सर्वशक्तिमान है, सर्वव्यापक है, से मिलाती है।

अतः हम देखते हैं कि सनातन हिन्दूधर्म में किसी एक विशेष इष्ट की पूजा पर ही जोर नहीं दिया गया। व्यक्ति हर प्रकार से स्वतन्त्र है। बन्धन केवल श्रद्धा और नम्रता है।

सनातन हिन्दूधर्म का एक ही लक्ष्य में अटूट विश्वास है। हाँ, रास्ते अलग-अलग होना स्वाभाविक है। इससे इस धर्म की उदारता टपकती है। यह धर्म प्रत्येक व्यक्ति की आस्था पूर्ण करने की क्षमता रखता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि सनातन हिन्दूधर्म एक धर्म नहीं है, बल्कि संसार के सारे धर्मों का समावेश है। दुनिया के धर्मों को हम झील, सरोवर, नदी, तालाब, कुआँ इत्यादि कह सकते हैं

पर सनातन धर्म सागर है बौद्धधर्म ने अहिसा का सन्देश दिया और हम पाते है कि यह सन्देश श्रुतियों और स्मृतियों में पहले से ही प्रतिपादित है। पारसी अग्नि की पूजा लेकर आए जो हमारे धर्म में पहले से ही है। भगवान श्रीकृष्ण का सन्देश अर्जुन के लिए ही नहीं है, समस्त मानवता के लिए है।

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्॥

भगवान गीता में कहते हैं कि जो मेरी पूजा नहीं करते परन्तु दूसरे इष्टो की पूजा करते हैं श्रद्धा से, भक्ति से, पवित्रता से और नेक नियति से, वे वास्तव में मेरी ही पूजा करते हैं। सनातन हिन्दूधर्म तो यहाँ तक कहता है कि व्यक्ति नास्तिक भी क्यों न हो, अगर वह पवित्र हृदय वाला है, दूसरों की भलाई चाहने वाला है, वह भी मोक्ष का अधिकारी है। प्रत्येक व्यक्ति को अपना-अपना धर्म अपनाने की स्वच्छन्दता है। सनातनधर्म यह स्वच्छन्दता प्रदान करता है।

भगवान बुद्ध एक रक्षक के रूप में आए। उन्होंने पाया कि वैदिकधर्म पतन के गर्त की ओर अग्रसर हो रहा है। उन्होंने वैदिकधर्म के वास्तविक स्वरूप की स्थापना के लिए कार्य किया।

पुस्तिका के आखिरी पन्ने को पढ़ने के पश्चात धर्मों का एक तुलनात्मक चित्र हमारी आँखों के सामने चलचित्र की तरह गतिशील हो उठता है। सनातन हिन्दूधर्म और बौद्धधर्म में कोई विरोधाभास है भी! यह प्रश्न शूल की तरह चुभने लगता है और फिर आती है उन बुद्धजीवी महारथियों पर हँसी जो यही बात सिद्ध करने में प्रयत्नशील हैं कि दोनों धर्म अलग-अलग हैं। उनका मेल एक मृगतृष्णा की तरह है, क्षितिज की लम्बी कतार की तरह है। इतिहास में थोड़ा सा भी दखल रखने वाले व्यक्ति यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि अगर ये धर्म अलग-अलग न होते तो भगवान बुद्ध सनातन हिन्दूधर्म से ही क्या काम नहीं चला सकते थे? क्या वे सनातन हिन्दूधर्म की नाव में बैठकर भवसागर को पार नहीं कर सकते थे? अवश्य कर सकते थे। दोनों धर्मों की ज़रा तुलना दोहरा के देखें—

दोनों धर्म मानव-जीवन के प्रत्येक पहलू को स्पर्श करते हैं। दोनों कर्म-फल में विश्वास तथा सभी को सुखी देखना चाहते हैं। दोनों व्यक्ति की क्षमता और रुचि के अनुसार तृष्णारहित होने के उपाय बताते हैं। सनातन हिन्दूधर्म के भक्ति, कर्म और योग इन तीन मार्गों के समक्ष बौद्धधर्म भक्ति, कर्म और ज्ञान के तीन मार्गों को प्रस्तुत करता है। योग से ही ज्ञानप्राप्ति होती है, इस तथ्य को बौद्धधर्म भी स्वीकारता है। दोनों धर्म मूर्तियों को स्नान कराने तथा सुगन्धियों से लेपन की आज्ञा प्रदान करते हैं। बौद्धधर्म में भगवान बुद्ध की ही पूजा होती है परन्तु सनातन हिन्दूधर्म में अनेक देवी-देवताओं का पूजन होता है। यहाँ यह याद

रखना होगा कि बुद्ध विष्णु के ही अवतार हैं दोना धर्मों के चार आर्य सत्य हैं सस्कारों का उद्देश्य मनुष्य को पुण्य कर्म करने के लिए सक्षम बनाना है दोनों धर्म हिंसा के विरोधी हैं। दोनों धर्मों में मन्त्रजाप को महत्ता दी जाती है और पवित्र पुस्तकों का पारायण किया जाता है। सनातनधर्म में बहुत तरह के व्रत हैं और उनके उद्देश्य भी भिन्न-भिन्न हैं। बौद्धधर्म में व्रतों का उद्देश्य आसक्ति का त्याग कर निर्वाण की ओर बढ़ना है। सनातन हिन्दूधर्म में चार आश्रमों का उल्लेख है। बौद्धधर्म में भी चार आश्रम हैं पर उनके नाम भिन्न हैं। हिन्दूधर्म मे जेसे आश्रमों की अवस्था और समय निश्चित है ऐसा बौद्धधर्म में नहीं हैं। हिन्दूधर्म की तरह बौद्धधर्म भी ईश्वर की सत्ता को मानता है परन्तु उसकी आवश्यकता नहीं समझता।

सनातन हिन्दूधर्म की तीन विशेषताएँ हैं—१. समाज व व्यक्ति के बीच अङ्ग-अङ्गी का सम्बन्ध, २. पुनर्जन्म, ३. मोक्षप्राप्ति। ये विशेषताएँ बौद्धधर्म मे भी हैं। धर्म के १० तत्त्व दोनों में हैं। बौद्धधर्म की अष्टाङ्गिका का उल्लेख महाभारत में स्पष्ट रूप से आया है। बुद्ध ब्राह्मणों के विरुद्ध नहीं थे, वे चाहते थे कि ब्राह्मणों में वही पुराने गुण होने चाहिए।

किसी भी धर्म में समय-परिवर्तन के साथ कुछ न कुछ नई चीज़ें जुड़ती चली जाती हैं। वे अच्छी भी होती हैं और खराब भी। सुधारों की आवश्यकता पडती है। बुद्ध ने सुधार लाकर प्राचीन परम्पराओं को नवजीवन प्रदान किया है। वे कुछ सादगी और सरलता लाए हैं जो हमें परिवर्तन लगता है। ऐसी कोई बात नहीं है। दोनों धर्मों का उद्देश्य एक ही है—मोक्ष की प्राप्ति। इसके लिए रास्ते अलग-अलग हो सकते हैं। सनातन हिन्दूधर्म इतना व्यापक और विशाल है कि इसमें कुछ और अतिरिक्त जमा करने की आवश्यकता नहीं है। पूर्वाग्रहो से हटकर अगर हम देखें तो प्रतीत होगा कि सनातन हिन्दूधर्म और बौद्धधर्म में समता है।

✣

श्यामसुन्दर उपाध्याय

माता : छन्ना देवी

पिता : महावीरप्रसाद

जन्म स्थान : ग्राम-चरनगहिया (वेलहा डाक घर व जनपद-बलरामपुर)। उक्त ग्राम बौद्धकालीन नगरी सेतव्या के अधिपति आर्य राजन्यपयासी के किले के ध्वंशावशेष पर स्थित है।

शिक्षा : एम०ए० (हिन्दी-राजनीति), एल०टी०, साहित्यरत्न (हिन्दी-संस्कृत)।

भाषा ज्ञान : हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत, पालि, प्राकृत, बंगला, उर्दू।

बोली ज्ञान : अवधी, भोजपुरी, ब्रज आदि।

अन्य कृतियाँ : (१) अवधी बाइबिल के मुख्य अनुवादक, (२) एक संदेश अनेक संदेशवाहक, (३) सूरज टेढ़ी और राप्ती में स्वतन्त्रता की लहरें (अप्रकाशित)।

व्यवसाय : अध्यापक, सम्प्रति : अध्ययन, धार्मिक चर्चा व लेखन।

१८५७ की क्रान्ति से सम्बन्ध : लेखक तुलसीपुर राज्य के नायब नन्दप्रसाद तिवारी की पौत्री का पुत्र है। श्री तिवारी १८५७ की क्रान्ति के नायकों में से एक हैं उन्हें १८५७ में अपना इलाका और प्राण दोनों की बलि देनी पड़ी थी। साथ ही लेखक एकहत्तर (श्रावस्ती क्षेत्र के अधिपति) राज शिवनाथ की पाँचवीं पीढ़ी में है। दोनों इलाकों को अंग्रेजों ने हड़प लिया था।

उद्देश्य : विभिन्न सम्प्रदायों के बीच एकता और सद्‌भाव पैदा करके देश को महान बनाना।

विषय सूची

✤

जिस प्रकार भारत का तिरंगा झंडा भारत के तीन धर्मों का प्रतीक है उसी प्रकार चार सिंहों वाला अशोक चक्र भी तत्कालीन चार धर्मों—हिन्दू, बौद्ध, जैन और आजीवक (जैनियों से मिलती जुलती विचारधारा वाले) का प्रतीक है। सबसे नीचे चक्र है। चक्र की व्याख्या अश्वघोष ने निम्न रूप में किया है— "शील इसके आरे हैं। शम (मन का निग्रह) और विनय इसकी पुट्ठियाँ हैं। यह बुद्धि में विशाल है और स्मृति (जागरूकता) एवं मति (ज्ञान) से स्थिर है। लज्जा ही इसकी नाभि है। गम्भीरता, असत्य अभाव तथा उपदेश की उत्तमता के कारण त्रिभुवन में उपदिष्ट होते समय यह अन्य शास्त्रों द्वारा उलटाया नहीं जा सकता।" (बुद्धचरित १५-५५)

किन्तु चक्र बौद्ध धर्म का प्रतीक है और बौद्ध धर्म सम्राट अशोक का नहीं वह अशोक (व्यक्ति विशेष) का है। सम्राट तो राष्ट्र का प्रतिनिधि होता है। सम्राट अशोक को तो तत्कालीन हिन्दू, बौद्ध, जैन, आजीवक सभी को संतुष्ट करने वाले प्रतीक को उजागर करना था।

हिन्दू धर्म के चार तत्त्व (तप, शौच, दया, सत्य) या चरण सभी धर्मों मे पाये जाते हैं। उसके दुर्गा देवी का चार चरणों वाला सिंह इसके लिये धर्म के प्रतीक रूप में प्रसिद्ध था। अतः ज्ञात से अज्ञात की शिक्षा देने हेतु उसने इसी सिंह को धर्म का प्रतीक चुना और यह बताया कि सभी धर्म इन चार तत्त्वों को धारण करते हैं अतः सभी को इनके प्रचार में समान रूप से मिल-जुल कर काम करना चाहिये न कि विरोध में। सबसे नीचे अर्थात् आधार पर चक्र है जो यह बताता है कि सभी धर्मों का आधार अष्टाङ्ग मार्ग शील, शम, विनय, बुद्धि, स्मृति, मति, लज्जा, सत्य ही हैं। चूँकि सभी का आधार एक है, सभी की मूल बातें समान हैं। अतः सबको उनके प्रचार और प्रस्तर में योगदान देना चाहिए। वे चार होते हुए भी मूल तत्त्व स्वरूप और आधार से आधार पर एक हैं और उन्हें एक होकर ही रहना चाहिये तभी राष्ट्र शक्तिशाली व महान हो पायेगा।

विषय-प्रवेश

धर्म शब्द धृ धातु से बना है जिसका अर्थ धारण करना है। धर्मो धारयते प्रजा अर्थात धर्म वह सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था है जो समाज को हिंसा, झूठ, कपट, चोरी, कंजूसी, दुराचार, जुआ, शराब आदि से बचाकर लोगों को प्रेमसूत्र में बाँधे रहे। धर्म में व्यापकता निहित है।

आजकल लोग धर्म को एक सीमित क्षेत्र में बाँध कर रखना चाहते हैं। उसे राजनीति और अर्थ के क्षेत्र में प्रवेश करने से रोकते हैं। यही कारण है कि समाज में भिन्न-भिन्न बुराइयाँ उग्र और विकराल रूप धारण करती जा रही हैं।

हिन्दू समाज एक मानवतावादी विश्व व्यवस्था को मान्यता प्रदान करता है और अंगीकार करता है। वह उसे धर्म के नाम से सम्बोधित करता है।

इस व्यवस्था में वह कार्यों का बँटवारा गुण और स्वभाव के अनुसार करता है। वह सभी को अपने-अपने कर्मो द्वारा समाज-सेवा की शिक्षा देता है। इस समाज-सेवा को वह तप नाम से पुकारता है और एक प्रकार का कार्य करने वालों को जाति।

वेदाभ्यासो ब्राह्मणस्य क्षत्रियस्य च रक्षणाम्।
वार्ता वैश्यस्य विशिष्यतिस्व शूद्रस्य कर्मस॥

अर्थात ब्राह्मण को वेदाभ्यास (ज्ञानार्जन) और शिक्षा, क्षत्रिय को देश की रक्षा, वैश्य को व्यापार और शूद्र को सेवा द्वारा समाज की रक्षा और विकास में सहयोग देना चाहिए। आज के संदर्भ में अपने-अपने कार्यों द्वारा देश को धर्मयुक्त, सुरक्षित, प्रगतिशील, शक्तिशाली एवं सर्वसम्पन्न बनाना ही तप है।

सनातनधर्म व्यक्ति और समाज के बीच अङ्गी और अङ्ग का सम्बन्ध मानता है अर्थात जिस प्रकार शरीर के सभी अङ्ग पूरे शरीर की रक्षा और हित के लिये कार्य करते हैं, परस्पर सहयोग करते हैं और बिना प्रमाद के कर्त्तव्यपालन करते हैं उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति को वह समाजहित के लिए कार्य करने को कहता है। वह सम्पूर्ण मानव समाज को सुखी, निरोग और खुशहाल देखने की कामना नित्य तीन बार करता है—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तुः मा कश्चित् दुःखभाग्भवेत्॥

सनातनधर्म की इसी विशेषता की व्याख्या करते हुए तन्त्रशास्त्र के मर्मज्ञ उडरफ महोदय भी कहते हैं—

The wor d o der s Dharam what s that by wh ch the un verse s upheld. Again Dharama ıs not only the ıaw of each being but necessarily also of the whole, The whole ıs again harmonious, otherwise ıt would dissolve. The principle which holds it together as one organism ıs Dharama. (Shakti & Sakta, p.2)

अर्थात विश्व व्यवस्था को धर्म कहते हैं। यह वह व्यवस्था है जिसके द्वारा विश्व स्थिर तथा संतुलित रहता है (एक सूत्र में बँधा रहता है)। पुनः धर्म प्रत्येक व्यक्ति के लिए ही नहीं होता है अपितु आवश्यक रूप से सम्पूर्ण समाज के लिए भी होता है। और सम्पूर्ण समाज को आपस में सामंजस्य बनाये रखना होता है अन्यथा उसकी स्थिरता, सन्तुलन, एकता और अखंडता भङ्ग हो जाती है।

इस प्रकार नियम जो उसे एकता के सूत्र में बाँधे रहते हैं, धर्म कहलाते है।

इसी भावना को व्यावहारिक रूप देने हेतु वह नित्य धार्मिक ग्रन्थों का पारायण (ब्रह्मयज्ञ) करता है। लोगों को निरोग और धन-धान्य से परिपूर्ण एव ओत-प्रोत रखने हेतु हवन करता है। देवयज्ञ करता है। बड़ों और पितरों को तृप्त रखने हेतु तर्पण करता है। वह अपने ही पितरों को नहीं अपितु सभी बन्धु-बान्धवविहीन लोगों को तर्पण करता है। वह (मनुष्य जाति ही नहीं) जलचर, नभचर और स्थलचारी सब को तृप्त करता है।[१]

भोजन के पूर्व पशु-पक्षियों और कीड़ों-मकोड़ों के लिये अपने भोजन का कुछ भाग अर्पित करता है। घर पर आने वाले अतिथियों का स्वागत करता है उन्हे भोजन व निवास देता है। वह जीव-मात्र को भगवान का रूप मान कर उनकी सेवा करता है—सन्तन प्रभु विराट मय देखा।

परन्तु जब भगवान बुद्ध का जन्म हुआ उस समय देश में धार्मिक अराजकता व्याप्त थी। उपरोक्त मूल्यों का ह्रास हो गया था। धर्म की ग्लानि हो रही थी। भोगवादी, भौतिकवादी जनों का बोलबाला था। समाजहित के स्थान पर अपना हित और भोग ही सर्वोपरि थे।

पूर्ण काश्यप का अक्रियावाद (कर्मफल का विरोध) अजित केश कम्बल का भौतिक उच्छेदवाद (मरने के बाद कुछ नहीं रहता; न स्वर्ग है न नर्क है) प्रक्रुद्ध कात्यायन का अकृततावाद (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, सुख-दुःख और जीवन से संसार व शरीर बना है) मंक्खलि गोशाल का दैववाद (चर्म पान, चरम गान, चरम नाट्य, चरम अंजलि कर्म, चरम पुष्कर, संवर्तक, महामेघ, चरम सेचनक, गन्ध हस्ती, चरम महाशिला, कंटक, संग्रहरणा, पुनरजीवित और चरम तीर्थंकर हैं) संजय वेल टिठ पुत्त का अनिश्चततावाद स्वर्ग नर्क है भी, नही भी आदि-आदि।

---

१. तर्पण-विधि

आर्य राजन्य पयासी का अनात्म व अनीश्वरवाद स्वर्ग, मोक्ष और नर्क का खण्डन आदि प्रचलित थे।

ऐसे अन्धकार के युग में भगवान बुद्ध ने लोगों को शील व सदाचार की ओर अग्रसर होने के लिए प्रेरित किया। अज्ञानतारूपी गहन तथा घोर काले मेघों को छाँटने हेतु शील और समाधि की शिक्षा दी। कर्मफल को पुनर्जीवन प्रदान किया। उन्हीं के प्रभाव से प्रत्येक बौद्ध नित्य प्रातःकाल और सन्ध्याकाल में सबको सुखी देखने की प्रार्थना करता है—

सव्वे सत्ता सुखी होन्तु,
सव्वे होन्तु च खेमिनो।
सव्वे भद्राणि पस्सन्तु
मा कच्चि दुख भागमा।

अर्थात समस्त प्राणी सुखी रहें, सभी अपने भले की देखभाल कर सकें और किसी को कोई दुख न व्यापै। (बौद्धचर्या पद्धति, भदन्त बोधानन्द)

कर्मफल का सिद्धान्त

मनुस्मृति में लिखा है—

नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरव।
शनैरावर्त्यमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति॥ मनु, ४-१७२

अर्थात किया हुआ पाप पृथ्वी पर बोए हुए बीज की भाँति फल नहीं देता, किन्तु धीरे-धीरे फलित होने का समय आने पर पापकर्त्ता का मूलोच्छेदन कर देता है।

बृहदारण्यकउपनिषद में लिखा है—

पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति, पापा पापेनेति।

(बृ०उ०, ३/२/१३)

अर्थात पुण्य करने से मनुष्य पुण्यशाली होता है और पापकर्म करने से पापी होता है।

कठोपनिषद भी कर्म के अनुसार जन्म ग्रहण की बात कहता है—

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्॥

अर्थात कुछ शरीरधारी शरीर ग्रहण करने के लिये योनि का आश्रय लेते हैं और कुछ लोग वृक्षयोनि में जन्म लेते हैं। जन्म धारण करना कर्म तथा ज्ञान के अनुसार होता है।

तुलसीदासजी भी कर्मफल की ही बात करते हैं

कर्म प्रधान विश्व रचि राखा।
जो जस कीन्ह सो तस फल चाखा॥

सनातनधर्म की इस कर्मफल के सिद्धान्त को भौतिकवादी, भोगवादी तत्कालीन विचारक अपने चातुर्य से झुँठला रहे थे। भगवान बुद्ध ने इसकी पुन स्थापना की।

सनातनधर्मियों की भाँति भगवान ने घोषणा की—

अत्तना हि कतं पातं अत्तजं अत्तसम्भवं।
अभिमन्थति दुम्मेधं वजिरं वस्मयं मणिं॥

(धम्मपद,अत्तवग्गो, ५)

अर्थात अपने से जन्मा, अपने से उत्पन्न, अपने से किया पाप करने वाले दुर्बुद्धि को उसी प्रकार पीड़ित करता है जिस प्रकार की पाषाण से निकला वज्र पाषाणमय मणि को छेद डालता है।

पुनश्च **न हि पापं कतं कम्मं सज्जुखीरं व मुच्चति।**
डहन्तं बालमन्वेति भस्मच्छन्नो व पावको॥

(धम्मपद,बालवग्गो, १२)

अर्थात जैसे ताजा दूध शीघ्र ही जम नहीं जाता ऐसे ही किया हुआ पाप-कर्म शीघ्र ही अपना फल नहीं लाता। राख से ढकी आग की भाँति वह जलता हुआ मूर्ख का पीछा करता है।

सनातनधर्म की विशेषता—जीवन का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष है—आवागमन से छुटकारा, भवसागर को पार करना। वह मानवशरीर को मोक्ष प्राप्त करने का साधन तथा निमित्त मानता है—

जौन तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मन्दमति आत्मा हन गति जाइ॥

पुनश्च **साधन धाम मोक्ष कर द्वारा।**
पाय न जेहि परलोक सुधारा॥

और इस मोक्षप्राप्ति हेतु उसने वैराग्य का रास्ता (निवृत्त मार्ग) दिखाया था—

निष्कामं ज्ञानपूर्वं तु निवृत्तमुपदिश्यते

(मनु, १२-९०)

ज्ञानपूर्वक जो निष्काम कर्म किया जाता है उसे निवृत्त कहते हैं

निवृत्तं सेवमानस्तु भूतान्यत्येति पञ्च वै। (वही, ९१)

निवृत्त कम करन वाला भूतो को जीत लेता ह अर्थात मुक्त हाने पर फिर शरीर को नहीं धारण करता है।

कृष्णभक्ति शाखा के सूर्य कवि सूरदास भी जन्म लेने का मूल उद्देश्य मोक्ष को ही मानते हैं और इसके लिये कामना का त्याग बताते हैं—

जौ लौं मन कामना न छूटै।
तौ कहा जोग जज्ञ व्रत कीन्हें बिन कन तुसको कूटे।

सनातनधर्म की इस भावना को Wood Roofe महोदय निम्न प्रकार से व्यक्त करते हैं—

But just as desire leads to manifestation in form, so desirelessness leads away from it. Those who reach this state seek Moksha or Nirvana The forth Purshartha which is a state of bliss beyond the warlets of changing form, for there is a rest from suffering which desire together with a natural tendency to pass its right limits bring upon men.

(Shakti & Shakta)

अर्थात जिस प्रकार कामना व्यक्ति को शरीर धारण (पुनर्जन्म) की ओर ले जाती है कामनाहीनता जन्म लेने से छुटकारे की ओर। जो निष्काम अवस्था को प्राप्त करते हैं वे चतुर्थ पुरुषार्थ मोक्ष की खोज करते हैं जो कि परमानन्द की अवस्था है।

सनातनधर्मियों की भाँति (प्राचीन ऋषियों की तरह) भगवान बुद्ध ने इस जन्म देने वाली तृष्णा को नष्ट करने का परामर्श दिया है। ताकि लोग जन्म, रोग और जरा से छुटकारा पा सकें। क्योंकि तृष्णा या कामना की पूर्ति में लगे रहने वाले व्यक्ति को कभी आवागमन से छुटकारा नहीं मिलता है।

मनुजस्स पमत्तचारिनो तण्हा वड्ढति मालुवा विय।
सोप्लवति हुरा हुरं फलमिच्छं व वनस्मि वानरो॥

(धम्मपद, तण्हावग्गो, १)

अर्थात प्रमत्त होकर आचरण करने वाले की तृष्णा मालुवा लता की भाँति बढ़ जाती है। वन में फल की इच्छा से कूद-फाँद करते बन्दर की तरह वह जन्म-जन्मान्तर भटकता रहता है।

पुनश्च **यो चेतं सहती जम्मिं तण्हं लोके दुरच्चयं।**
सोका तम्हा पपतन्ति उदबिन्दु व पोक्खरा॥

(धम्मपद, तण्हावग्गो, ३)

अर्थात जो संसार में इस दुस्त्याज्य नीच तृष्णा को जीत लेता है उसके शोक उस तरह गिर जाते हैं, जैसे कमल के ऊपर से जलबिन्दु अर्थात वह आवागमनरूपी दुःख से छुटकारा पा जाता है।

उपरोक्त तृष्णा को जीतने के लिये सनातनधर्म में व्यक्तियों की सामर्थ्य के अनुसार तीन पद्धतियाँ बतायी गई हैं—कर्म, भक्ति और योग। सामान्यजन के

लिये भक्ति, मध्यम कोटि के लिये कर्म तथा उच्च कोटि के लिये योग और ज्ञान का मार्ग बताया गया है।

नारदजी राजा वसुदेव को बताते हुए कहते हैं कि भगवान ने भोलेभाले अज्ञानी पुरुषों को भी सुगमता से साक्षात (अपनी प्राप्ति) के लिये जो उपाय स्वयं श्रीमुख से बतलाये हैं उन्हें ही भागवत धर्म भक्ति मार्ग समझो।

(श्रीमद्भागवत, ११/२-४)

मध्यम कोटि के लोगों के लिये कर्म है—

छठे योगेश्वर आविर्होत्रजी राजा निमि को यही बात बताते हुए कहते हैं, "जिसका अज्ञान निवृत्त नहीं हुआ है, जिसकी इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं, वह यदि मनमाने ढंग से वेदोक्त कर्मों का परित्याग कर देता है तो वह विहित कर्मों का आचरण न करने के कारण विकर्म रूप अधर्म ही करता है। इसलिये वह मृत्यु के बाद फिर मृत्यु को प्राप्त होता है। इसलिये फल की अभिलाषा छोड़कर और विश्वात्मा भगवान को समर्पित कर जो वेदोक्त कर्म का ही अनुष्ठान करता है, उसे कर्मों की निवृत्ति से प्राप्त होने वाली ज्ञानरूपी सिद्धि मिल जाती है।" अब प्रश्न उठता है कि यदि ज्ञानसिद्धि हेतु कर्म (कर्मकाण्ड) किए जाते हैं तो स्वर्ग आदि का प्रलोभन क्यों दिया जाता है? योगेश्वर कहते हैं, "वेदों में जो स्वर्गादि फल का वर्णन है, उसका तात्पर्य फल की सत्यता मे नहीं है, वह तो कर्मों में रुचि उत्पन्न कराने के लिये है।"

(भागवत, ११-३-४५,४६)

योग और ज्ञान दोनों मार्ग समाहित चित वालों के लिये हैं। सर्वात्म दर्शन नामक पुस्तक में जब उसके लेखक सन्त देवरहा बाबा से योगसाधना की कठिनता का जिक्र करते हैं तो बाबा कहते हैं, "बच्चा तुम ठीक कहते हो, योग साधना की क्षमता बड़े-बड़े सन्तों में भी नहीं है।"

इसी प्रकार तुलसीदास ने भी ज्ञानमार्ग को अत्यन्त दुश्वार और कठिन बताया है—

ज्ञान कै पंथ कृपाण कै धारा। परत खगेशन लागै वारा॥

जिस प्रकार सनातनधर्म में भक्ति, कर्म और योग (ज्ञान का मार्ग आसक्ति त्याग के लिये) बताया गया है उसी प्रकार बौद्धधर्म में भी तीन मार्ग हैं जिनका प्रवर्तन भगवान बुद्ध ने समय-समय पर किया है। (क) भक्तिमार्ग, (ख) कर्म-मार्ग, (ग) ज्ञानमार्ग।[१]

---

१. १. श्रामण धर्म का चक्र प्रवर्तन बोधि के प्रथम वर्ष में ऋषिपत्तन में।
२. तेरहवें वर्ष में महायान (भक्तिमार्ग) का गृध्रकूट पर्वत पर।
३. मन्त्रयान का धर्मचक्रप्रवर्तन १६वें वर्ष में धान्य कटक में किया।
बौद्धदर्शन मीमांसा, बुद्धतन्त्र, पृ० ३६१

बौद्धधर्म मे भक्तिमार्ग

भक्तिमार्ग के प्रवर्तक महर्षि नारद के अनुसार, "भगवान में तैल धारा के समान मन को लगाये रखना ही भक्ति है।" (परानुरक्तिः भक्ति)

बौद्धधर्म में भगवान गौतम में निरन्तर मन लगाये रहने वाला भक्त पिंगय कहता है—"हे ब्राह्मण मैं महाज्ञानी गौतम, महाप्रज्ञावान गौतम से मुहूर्त भर भी अलग नहीं रह सकता।" (सुत्तनिपात पारायण, ११७)

पुनश्च, हे ब्राह्मण! मैं रातदिन अप्रमत्त हो मन की आँख से ही उन्हें देखता हूँ। नमस्कार करते हुए ही मैं रात व्यतीत करता हूँ उसी से मैं उनसे अलग रहना नहीं समझता। (वही १९)

स्थिवर भी भगवान की पूजा करते हैं, भदन्त ग० प्रज्ञानन्द अपनी पुस्तक बौद्धों की हस्तपुस्तक में लिखते हैं, "यदि वस्ती में कोई बिहार हो तो वहाँ शुद्ध वस्त्र पहन कर जाना चाहिए और भगवान बुद्ध की मूर्ति के सम्मुख एकाग्रचित्त बैठ कर वन्दना और ध्यान भावना करनी चाहिए।"

अन्यथा घर के किसी एकान्त कोने में भगवान बुद्ध की मूर्ति अथवा चित्र के सम्मुख बैठ कर वन्दना और ध्यान भावना करनी चाहिये। सद्धर्म पुण्डरीक ग्रन्थ तो पूरी तरह से भक्ति-भावना से भरा है। इसकी भूमिका में श्रीराम मोहनदास लिखते हैं, "समाधि और यौगिक क्रियाओं की अपेक्षा बुद्धभक्ति, मूर्तिपूजा, स्तूपपूजा आदि को अधिक महत्त्व देना इस ग्रन्थ की चौथी विशिष्टता है। बुद्धत्त्व प्राप्ति के लिये बुद्धों एवं बोधिसत्त्वों की पूजा आवश्यक मानी गई है। अरहंतों को भी बुद्धत्व की प्राप्ति तभी होगी जब वे असंख्य बुद्धों, बोधिसत्त्वो एव उनके धातुत्वशेषों की पूजा करेंगे।"

(सद्धर्म पुण्डरीक, भूमिका, पृ० १९, पैरा ५)

इसी प्रकार महायान में कोई व्यक्ति बिना बोधिचित्तोद्पाद के महायान का अनुगामी नहीं हो सकता और बोधिचित्त उदपाद के लिए सप्त विधि अनुत्तर पूजा का विधान है। जिसे "धर्म संग्रह" में इस प्रकार बताया गया है। वन्दना, पूजना, पापदेशना, पुण्यानुमोदन, अध्येष्णा, बोधि चित्तोदपाद और परिणामना।"

सनातनधर्म की तरह बौद्धधर्म में भक्त स्नान गृह में गन्ध, पुष्प पूर्ण रत्नमय कुम्भों के जल से गीत वाद्य के साथ बुद्ध तथा बोधिसत्त्वों को स्नान कराता है। स्नान के बाद निर्मल वस्त्र से शरीर पोंछता है। सुखत वासित वर चीवर प्रदान करता है। दिव्य अलंकार पहिनाता है। उत्तम-उत्तम गन्ध से शरीर का विलेपन करता है। माला पहिनाता है। धूप-दीप तथा नैवेद्य अर्पित करता है। बुद्ध, धर्म तथा संघ की शरण में जाता है।

(आचार्य नरेन्द्रदेव, बौद्धधर्म, अ० १०, पृ० १८७)

बौद्धधर्म में कर्म (निष्काम कर्म)

योग के विषय में भगवान कृष्ण कहते हैं—

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्य सिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥

(भगवद्गीता, २-४८)

अर्थात हे धनंजय आसक्ति को त्याग कर तथा सिद्धि और असिद्धि मे समान बुद्धि वाला होकर योग में स्थित हुआ कर्मों को कर निष्काम कर्म में आसक्ति का त्याग और जय-पराजय का विचार त्याग कर कर्म किया जाता है अतः भगवान अर्जुन को कर्मयोग की शिक्षा तभी देते हैं जब वह राज्य और स्वर्ग, जीत और हार की आसक्ति नहीं रखता है।

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं न पुनर्भवम्।

यही बात भगवान बुद्ध भी कहते हैं—

"चाहे कोई भले ही थोड़े ग्रन्थों का पाठ करने वाला हो, किन्तु धर्मानुकूल आचरण करता हो, राग-द्वेष और मोह को छोड़ सचेत और मुक्त चित्त वाला हो तथा उसी लोक या परलोक में कहीं भी आसक्ति न रखता हो, वह श्रमण्य का अधिकारी होता है।" (धम्मपद, यमकवग्गो, २०)

भगवान स्वयं अपने को कर्मयोगी कहते हुए कहते हैं, "आसक्त मनुष्यो में अनासक्त हो। अहो! हम सुखपूर्वक जीवन बिता रहे हैं। पीड़ित मनुष्यो के बीच पीड़ारहित होकर हम विहार करते हैं। भगवान का शील व्रत कर्मयोग ही है।"

बौद्धधर्म में योग

भगवान बुद्ध योग की महत्ता बताते हुए कहते हैं—

सदा जागरमानाम अहोरत्तानुसिक्खिनं।
निब्बानं अधिमुत्तानं अत्थं गच्छन्ति आसवा॥

(धम्मपद, कोधवग्गो, ६)

अर्थात सदा जागरणशील रहो, दिन-रात योगाभ्यास में लगे रहने वाले तथा निर्वाण के उद्देश्य वाले (पुरुषों) के आश्रव नष्ट हो जाते हैं।

बौद्धधर्म में ज्ञान

भगवान बुद्ध ज्ञानमार्ग को मानते हैं। सनातन धर्म की तरह बुद्ध भी योग के द्वारा ज्ञान प्राप्त करने का उपाय बताते हैं—

"योगाभ्यास से प्रज्ञा उत्पन्न होती है, उन्नति और उसके अभाव से प्रज्ञा का क्षय होता है उन्नति और विनाश के इन दो भिन्न मार्गों को जान अपने को ऐसा लगावे जिससे प्रज्ञा की वृद्धि हो।" (धम्मपद, मग्गवग्गो, १०)

इस प्रकार दोनों धर्मों में व्यक्तियों की क्षमता और रुचि के अनुसार तृष्णा-रहित करने के लिये क्रमशः भक्ति, कर्म और योग का मार्ग (जो ज्ञान या प्रज्ञा प्रदान कराने वाला है) बताया गया है। यद्यपि भक्ति, कर्म और योग ऊपर से देखने में भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं तथापि ये एक-दूसरे के पूरक हैं।

बौद्धधर्म में शील (सदाचार), समाधि और प्रज्ञा को क्रमशः अपनाया गया है। महायान में समाधि के स्थान पर भक्ति को महत्त्व दिया गया है और उसे आँख खोलने वाला (ज्ञानप्रद) बताया गया है। दुःख का कारण अज्ञान, अज्ञान को दूर करने का उपाय योगाभ्यास और उससे प्राप्त होने वाले ज्ञान को आवागमन से छुटकारा दिलाने वाला बताया है। और यही उपरोक्त बातें भारतीय दर्शन, योग, सांख्य, वैशेषिक, न्याय आदि के प्रतिपाद्य विषय रहे हैं।

सनातनधर्म और बौद्धधर्म के चार आर्यसत्य और धर्मतत्त्व

हिन्दू शास्त्रों में आर्य चतुष्ठय का प्रतिपादन मुख्य विषय रहा है। व्यास भाष्य में लिखा है—

यथा चिकित्सा शास्त्रं चतुर्व्यूहं
रोगो रोग हेतुः आरोग्य भैष्यमिति।
एवमिदमपि शास्त्रं चतुर्व्यूहं तद यथा
संसारः संसारहेतुः मोक्षो मोक्षोपाय इति।

(व्यास भाष्य, २/१५)

अर्थात जिस प्रकार चिकित्सा शास्त्र में रोग, रोग का हेतु (कारण), आरोग्य (रोग का नाश) तथा भैषज्य (रोग को दूर करने की दवा) है उसी भाँति दर्शन शास्त्र में संसार (दुःख), संसार हेतु (दुःख का कारण), मोक्षोपाय तथा मोक्ष ये चार सत्य माने जाते हैं। अर्थात जिस प्रकार वैद्य रोगी के रोग का कारण जानता है उसके लिये उपाय करता है, दवा देता है और रोग का नाश कर स्वास्थ्य-लाभ कराता है उसी प्रकार दार्शनिक या तत्त्वज्ञानी भी मनुष्य के दुःख के कारण (को बतलाकर) और (व्यक्ति को) दुःख से छुटकारा पाने का उपाय बताकर उसके दुःख का नाश कर देता है।

इसी प्रकार भगवान गौतम बुद्ध के अष्टाङ्गिक मार्ग के तत्त्वों का उल्लेख महाभारत और मनुस्मृति में पहले से ही उद्धृत है। गौतम बुद्ध की विशिष्टता यह है कि उन्होंने इन्हें अपने जीवन में उतार कर लोगों को प्रेरणा प्रदान की।

इसी बात को व्यक्त करते हुए महान सन्त देवरहा बाबा कहते हैं, ''यदि गम्भीरता से विचार किया जाय तो स्पष्ट हो जायगा कि बौद्ध दर्शन के मूल सिद्धान्त भारतीय दर्शन परम्परा से विच्छिन्न नहीं हैं। भगवान गौतम के चार आर्य सत्य अर्थात दु:ख, दुख का कारण, दु:ख निरोध तथा दुख निरोधगामी मार्ग विशुद्ध भारतीय परम्परा के हैं। उसी प्रकार अष्टाङ्गिका अर्थात सम्यक दृष्टि, संकल्प, वचन, कर्म, जीविका, प्रयत्न, स्मृति और समाधि का विवेचन भी महाभारत में बड़े स्पष्ट रूप में हुआ है।'' (सर्वात्म दर्शन, पृ० ८)

वास्तव में भगवान गौतम का सारा प्रयास धर्म के ह्रास हो रहे मूल्यों को फिर से स्थापित करना था।

सनातन धर्म के दसों तत्त्व धृति, क्षमा, दया, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धैर्य, विद्या, सत्य, अक्रोध बौद्धधर्म में स्थापित हैं।

सनातनधर्म और बौद्धधर्म में संस्कार व पद्धति

संस्कारों का उद्देश्य दोनों में समान है। सनातनधर्म का विश्वास है कि जिस प्रकार अध्यापक पहले श्यामपट्ट पर लिखी पुरानी लिखावट को मिटाता है तत्पश्चात उसे चमकाता है उस पर रंग लगाता है तब लिखता है उसी प्रकार बालक के मन पर अंकित पुराने पाप के छापों एवं चिह्नों को मिटाने और उसे पुण्य कर्म करने के लिये सक्षम बनाने हेतु संस्कार किये जाते हैं यही उद्देश्य बौद्धधर्म में भी संस्कारों का है।

संस्कारों के विषय में अपने विचार व्यक्त करते हुए यही बात भदन्त बोधानन्द महास्थविर कहते हैं—''संस्कारों से जीवन सुसंस्कृत होकर ऊँचा होता है, ऐसा सुसभ्य मानव समाज का बहुत प्राचीन काल से विश्वास चला आता है।'' (बौद्ध चर्चा पद्धति, संस्कार परिच्छेद)

सनातनधर्म द्वारा किये जाने वाले १६ संस्कारों में से लगभग दस संस्कार बौद्धधर्म में भी मनाये जाते हैं। ये हैं—१. पुसवन, २. नामकरण, ३. अन्नप्राशन, ४. केश कम्पन मुंडन, ५. कर्णावेधन, ६. विद्यारम्भ, ७. विवाह, ८. प्रवज्या, ९. उपसम्पदा, १०. मृतक संस्कार।

संस्कारों के करने की पद्धति में समानता—भिन्न-भिन्न संस्कारों के करने का ढंग भी समान है। केवल पूजा-पद्धति में अन्तर है। सनातनधर्मी इस अवसर पर गौरी-गणेश और पंचदेवों की उपासना (पूजा) करते हैं जबकि बौद्ध बुद्ध, धर्म और संघ की पूजा करते हैं। दोनों इस अवसर पर सदाचार व व्यवहार की शिक्षा देने वाली पवित्र पुस्तकों या सूत्रों का पारायण करते हैं।

यज्ञ

यज्ञ का अर्थ है समाज-हित में अपने स्वार्थ की बलि चढ़ा देना। कालान्तर मे इस बलि शब्द का दुरुपयोग होने लगा और लोग यज्ञ का उद्देश्य ही भूल गये। लोग अपने स्वार्थ की बलि चढ़ाने की जगह पशु-पक्षियों की बलि चढ़ाने लगे।

वास्तव में यज्ञ एक बहुउद्देश्यीय धार्मिक परियोजना थी। इसमें बहुत सी बातें निहित थीं। जैसे कि—

(क) प्रकृति के साथ अनुकूलन—प्राकृतिक वस्तुओं अर्थात वृक्ष, नदी, पहाड़, पशु-पक्षियों की सुरक्षा तथा संवर्द्धन।

(ख) गरीबों, अपंगों को दान।

(ग) धर्म-प्रचारकों का आदर-सम्मान।

(घ) यज्ञ वातावरण को शुद्ध कर उचित समय पर वर्षा होने में सहायक होता था, जिससे वृक्ष, पशु-पक्षी और अन्न के उत्पादन में वृद्धि होती थी।

(ङ) यज्ञों में अनेक प्रकार के कुण्डों के निर्माण द्वारा ज्योमित का प्रत्यक्ष ज्ञान होता था।

(च) नाना प्रकार के श्रमिकों को जीविका मिलती थी। वे यज्ञों के लिए फूल, फल, पत्ते, लकड़ी, वृक्षारोपण, नदियों, पोखरों, का पवित्र जल लाते थे।

(छ) कलाकारों को कलशों के निर्माण आदि से जीविका मिलती थी।

इस तरह यज्ञ जीविका के सुअवसर प्रदान करते थे। कालान्तर में यज्ञ का स्वरूप ही बदल गया. पशु-हिंसा से वातावरण शुद्ध होने के स्थान पर अशुद्ध होने लगा। वनस्पति का विनाश होने लगा। श्रमिकों का भी शोषण होने लगा। सब काम दिखावे और निजी स्वार्थ के लिए होने लगे। विरोध स्वाभाविक था।

उपनिषद् काल में इन उद्देश्यहीन यज्ञों का विरोध होने लगा था। लोग इन्हें फूटी नाव कहने लगे थे। हिंसायुक्त यज्ञ आवागमन से छुटकारा नहीं दिला सकते थे।

यज्ञों में व्याप्त भ्रष्टाचार और शोषण आदि का भगवान बुद्ध ने दीर्घ निकाय में स्पष्ट वर्णन किया है—पहले यज्ञों में हिंसा, प्राकृतिक वस्तुओं का विनाश और श्रमिकों का शोषण तथा उत्पीड़न नहीं किया जाता था। प्राणियो की हत्या नहीं की जाती थी। श्रमिक अश्रुगलित होकर रोते-रोते काम नहीं करते थे। वृक्ष का छेदन और कुशोच्छेदन नहीं किया जाता था। यज्ञ घृत, तैल, नवनीत, दही और मधु द्वारा ही सम्पन्न होते थे।

(बुद्ध और बौद्धधर्म, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, पृ० ३७)

उपरोक्त बुराइयों के कारण ही उपनिषद्कालीन ऋषियों ने ऐसे यज्ञों को, जो कभी भवसागर पार कर स्वर्ग दिलाने वाले थे—

ऐहिका नाव आरोढं न शक्नुवन्ति यज्ञियाः।
आरोहन्त्यासि कास्ता ये कृष्णास्तान् स्वर्गिणोऽब्रवीत्॥

(ऋग्वेद)

अर्थात परलोक में विश्वास करने वाले परोपकारियों को स्वर्ग दिलाने वाले थे।

प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञ रूपा

अर्थात फूटी नाव जो भवसागर पार न लगा सके, कहा जाने लगा। इसी प्रकार महाभारत में ऐसे पशुबलि के अंशों को धूर्तों द्वारा जोड़ा गया (प्रक्षिप्त अंश) कहा गया है—

सुरामत्स्याः पशोर्मांस द्विजावीनाम् बलिस्तथा।
धूर्ते प्रवर्तितं यज्ञे नैताद वेदेषु कथ्यते॥

अर्थात शराब, मछली, पशु, मांस तथा पक्षी की बलि को धूर्तों ने चलाया है। यह वेद ने नहीं कहा है।

उपनिषदकालीन ऋषियों और महाभारत की तरह भगवान बुद्ध भी यज्ञ मे हिंसा के विरोधी थे—न कि चावल, शयन, वस्त्र, घी, तैल आदि द्वारा सम्पन्न किये जाने वाले यज्ञों के। भगवान कहते हैं—

"तब उन्होंने (पुराने ब्राह्मणों ने) धार्मिक रीति से चावल, शयन, वस्त्र, घी और तेल की याचना कर, उन्हें एकत्र कर यज्ञ का संविधान किया। उन्होंने उस उपस्थित यज्ञों में गौवों की हत्या नहीं की।"

(सुत्तनिपात ब्राह्मणाधम्मिक सुत्त, १२)

अर्थात ऐसा यज्ञ करना चाहिये जिसमें हिंसा न हो। यही विचार राष्ट्रकवि दिनकरजी ने भी व्यक्त किया है। वह कहते हैं—

"बुद्धदेव का मत था कि जिस यज्ञ में प्राणियों की हिंसा नहीं होती है, भेड़ बकरे, गाय, बैल आदि प्राणी मारे नहीं जाते और जो सर्वदा अच्छा लगता है, उसमें सन्त, महर्षि जाया करते हैं। इसलिए सुज्ञ पुरुषों को ऐसा यज्ञ करना चाहिए।" (दिनकर, संस्कृत के चार अध्याय)

व्रत और उपवास

सनातनधर्म और बौद्धधर्म में व्रतों के रखने के उद्देश्य और विधियों में भी समानता बहुत मिलती है। दोनों धर्मों में व्रत और उपवास केवल गृहस्थों के लिये हैं। सनातनधर्म के संन्यासी धर्म के दस तत्त्वों का पालन करते हैं। बौद्धधर्म में भिक्षु भी सदैव उपोसथ व्रत (आठ अङ्गों वाले व्रत) का पालन करते हैं। अतः बौद्धधर्म में भिक्षु जीवन का आनन्द लेने और सनातनधर्म में संन्यास-जीवन का आनन्द लेने के लिये लोग व्रत करते हैं। और भिक्षु और संन्यासी की चर्या भी

समान है। भिक्षु और संन्यासी सबके घर से भिक्षा माँग कर केवल एक वक्त ही भोजन करते हैं। वाराह पुराण में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और सरलता को **मानसिक व्रत**, एक भुक्त, नक्त व्रत निराहारादि को **कायिक व्रत** तथा मौन एव हित, मित, सत्य, मृदु भाषण को **वाचिक व्रत** कहा गया है।

इन्हीं बातों को उपोसथ व्रत के रूप में भगवान बुद्ध ने श्रावस्ती के प्रसिद्ध सेठ सुदत्त की पत्नी पद्मलक्षणा को बताया था—

१. जीव हिंसा न करो, २. चोरी न करो (अस्तेय), ३. संभोग से विरत रहो (ब्रह्मचर्य), ४. असत्य भाषण न करो (सत्य), ५. मद्यपान न करो, ६ आभूषणादि धारण न करो, ७. बढ़िया या आरामदायक बिस्तर पर न लेटो, ८. पराये धन का प्रयोग न करो।

टिप्पणी—उस दिन विकाल भोजन अर्थात बारह बजे दिन के बाद भोजन नहीं किया जाता है। उपरोक्त में सनातनधर्म के मौन, हित, मित, सत्य, मृदु भाषण को बौद्धधर्म में सत्य के अन्तर्गत ही माना जाता है।

इसी प्रकार सनातनधर्म के सरलता में मद्यपान न करना, जुआ न खेलना, आभूषणादि धारण न करना, आरामदायक बिस्तर पर न लेटना और पराये धन का प्रयोग न करना आ जाता है।

इस प्रकार दोनों धर्मों के मानसिक और वाचिक व्रतों में समता है।

कायिक व्रत—वाराह पुराण में एक भुक्त, नक्त व्रत और निराहादि को कायिक व्रत कहा गया है। अर्थात सनातनधर्म के व्रतों में किसी में एक समय आहार किया जाता है, किसी में रात में, किसी में भोजन किया ही नहीं जाता है।

लेकिन बौद्धधर्म में भिक्षुओं द्वारा केवल एक बार अर्थात बारह बजे दिन तक भोजन कर लिया जाता है।

बौद्धधर्म में उदया या अस्ता तिथि या अन्य किसी बात का विचार नहीं किया जाता है।

उद्यापन आदि नहीं किया जाता है। पंचदेवों के स्थान पर बुद्ध धर्म और संघ की पूजा की जाती है।

व्रतों का उद्देश्य—सनातनधर्म में कुछ व्रत सौभाग्य के लिये जैसे वट सावित्री, करवाचौथ आदि हैं कुछ पश्चात्ताप के लिये जैसे चन्द्रायण व्रत आदि और कुछ निरोग रहने हेतु जैसे रविवार और कुछ पुण्य संचय हेतु किये जाते हैं जैसे एकादशी आदि, परन्तु बौद्धधर्म में व्रतों के रखने का उद्देश्य आसक्ति का त्याग कर निर्वाण की ओर बढ़ना ही है। भोजन के नियन्त्रण से इन्द्रियों के नियन्त्रण में और सदाचार पालन से योगाभ्यास में सहायता मिलती है।

तीर्थयात्रा

तीर्थ उन साधनों को कहा जाता है जिनसे भवसागर पार किया जाता है, आवागमन से छुटकारा पाया जाता है। महाभारत में सत्य, क्षमा, इन्द्रियनिग्रह, सर्वभूत दया, सरलता, दान, दम, संतोष, ब्रह्मचर्य, प्रिय वचन, ज्ञान, धृति, तप तथा मन की पवित्रता को तीर्थ कहा गया है क्योंकि ये गुण मनुष्य को आवागमन से मुक्ति दिलाने वाले (मोक्ष दिलाने वाले हैं)।

वास्तव में ये धर्म के दस लक्षणों में निहित हैं। धर्म-पालन से संसार से विरक्ति होती है। मन अन्तरमुख होता है। योग के लिये जमीन तैयार हो जाती है तत्पश्चात योगसाधना से ज्ञान और मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

यथा— **धर्म ते विरति योग ते ज्ञाना**
ज्ञान मोक्ष प्रद वेद बखाना। (रामचरितमानस)

इस प्रकार तीर्थयात्रा भी कुटुम्ब, स्त्री, पुत्र और धन-सम्पत्ति आदि के आसक्ति का त्याग और संन्यास-जीवन का आनन्द व पूर्वाभ्यास हेतु होता है क्योंकि बिना आसक्ति के त्याग के मोक्ष (आवागमन से छुटकारा) नहीं मिल सकता है। यही कारण है कि पद्म-पुराण में आसक्ति त्याग कर तीर्थ-यात्रा की आज्ञा दी गई है—

विरागं जनयेत पूर्वे कलत्रादि कुटुम्बके, असत्यभूतं
तज्ज्ञात्वा क्षौरं विरागं जनयेत पूर्वे कलत्रादि कुटुम्बके।
असत्य भूतं तज्ज्ञात्वा हरिं तु मनसा स्मरेत्॥

अर्थात तीर्थयात्रा का निश्चय करके सबसे पहले कुटुम्ब, घर, पदार्थ आदि को असत्य जान कर उनमें किंचित मात्र आसक्ति न रहने दें और मन से श्री भगवान का स्मरण करें—पद्मपुराण, पातालखण्ड १९-११

इसके साथ तीर्थयात्री को संन्यास भेष धारण करने को भी कहा गया है।

केशमाश्रित्य तिष्ठन्ति तस्मात् तद्वपनं चरेत्॥

पाप सिर पर सवार हो जाता है अत: बालों का मुण्डन कराना चाहिये।

ततो दण्डं तु निर्ग्रन्थि कमण्डलुम् याजिनम्।
विभृयाल्लोभ निर्गुतस्तीर्थ वेष धरो नरः॥ (वही)

अर्थात उसके बाद बिना गाँठ का दण्ड, कमण्डलु और आसन लेकर तीर्थ हेतु उपयोगी वेष धारण करे। संन्यासी का भेष धारण करे। पुनश्च भेष ही नहीं संन्यासी का गुण भी अपनाये (धन, मान, बड़ाई, पूजा, संस्कार आदि भी त्याग दे।)

विधिना गच्छतां नृणां फलावाप्तिर्विशेषतः।
तस्मात् सर्व प्रयत्नेन तीर्थयात्रा विधं चरेत्॥ (वही)

हाथ-पैर और मन अपने वश में करे, क्योंकि तीर्थ का फल उसी को प्राप्त होता है जिसके हाथ, पैर और मन संयत रहते हैं तथा जिनमें विद्या, तप और कीर्ति तथा अध्यात्म होता है। यथा—

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थ फलमश्नुते ॥ (वही, २४)

इस प्रकार सनातनधर्म में तीर्थयात्रा आसक्ति त्याग और मोक्ष प्राप्त करने का एक साधन कहा गया है जिससे व्यक्ति भव सागर को पार करके मुक्ति प्राप्त करता है। इसी प्रकार तीर्थ में पहुँचने पर स्नान, पितृतर्पण, श्राद्ध, दान भूमि शयन, एक समय भोजन आदि भी तृष्णा त्याग (संन्यास) की ओर संकेत करते हैं।

बौद्धधर्म में तीर्थ—बौद्ध धर्म में तीर्थ शब्द के स्थान पर स्मारक (अर्थात स्मरण कराने वाला) शब्द का प्रयोग किया जाता है। स्मारक का अर्थ है भगवान बुद्ध की शिक्षाओं (आर्य चतुष्टय और अष्टाङ्ग मार्ग) की याद दिलाने वाला।

भगवान ने जहाँ जन्म लिया लुम्बिनी वन (कपिलवस्तु), जहाँ उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ (बुद्धगया), जहाँ-जहाँ उन्होंने चौमासे बिताये (श्रावस्ती, अयोध्या आदि), जहाँ उनकी मृत्यु हुई (कुशीनगर), जहाँ उनकी अस्थियों पर स्तूप बने हैं, जहाँ-जहाँ उनकी मूर्तियाँ स्थापित हैं, सब उनकी और उनकी शिक्षाओं की याद दिलाने वाले हैं।

भगवान तो महत्त्वपूर्ण हैं ही लेकिन उनकी शिक्षायें उनसे भी महत्त्वपूर्ण हैं। वक्कालि को समझाते हुए स्वयं वह कहते हैं—

"तुम समझते हो बुद्ध को देखने के लिये मेरी शक्ल देखनी आवश्यक है। यह शरीर महत्त्वपूर्ण नहीं है। जब तुम मेरी शिक्षाओं को देख सकते हो तो मुझे देख सकते हो। यदि तुम शरीर देखते हो और शिक्षायें नहीं तो उसका कोई महत्त्व नहीं।" (Old Path & White Clouds)

(जहँ जहँ चरण पड़े गौतम के, अं० ६४, पृ० ४२६, पैरा २)

इस प्रकार दोनों धर्मों में तीर्थयात्रा का उद्देश्य आवागमन के मूल कारण तृष्णा का क्षय करा कर बार-बार जन्म लेने से छुटकारा दिला कर मोक्ष या निर्वाण प्राप्त कराना है।

सनातनधर्म में संन्यास-जीवन का पूर्वाभ्यास करना है तो बौद्धधर्म में भिक्षु के जीवनयापन या चर्या का और दोनों के लक्ष्य में कोई अन्तर नहीं है अत: सनातनधर्म और बौद्धधर्म की तीर्थयात्रा में भी विभेद नहीं किया जा सकता। दोनों का लक्ष्य तीर्थयात्रा के बहाने संन्यासी भिक्षु जीवन का पूर्वाभ्यास कराना है।

पूजा

श्रीमद्भागवत में कहा गया है, "परिचर्या भगवत आत्मनो दुरितक्षय" अर्थात अपने समस्त पापों को नष्ट कर देना ही भगवान की पूजा है।

(भागवत, १२-११-१७)

पाप के क्षय हेतु भक्तों ने एक बड़ी सुन्दर विधि खोज निकाली है। उनका कहना है कि यदि प्राणी स्नेह से, द्वेष से अथवा भय से भी जानबूझ कर एकाग्र रूप से अपना मन किसी में लगा दे तो उसे उसी वस्तु का स्वरूप प्राप्त हो जाता है।

(भागवत, ११-९-२२)

इसी बात को योग में सूत्र रूप से कहा गया है, "वीत राग विषय वा चित्तम्।" अर्थात कोई व्यक्ति अपना चित्त किसी वीतराग पुरुष में लगा दे (उसका ध्यान करने लगे और उसके नाम का जप करने लगे) तो वह व्यक्ति कालान्तर में उसी के समान वीतराग हो जाता है।

इस प्रकार पूजा का मूल उद्देश्य हृदय को शुद्ध करना ही है और उसके लिये किसी वीतराग या राम, कृष्ण, बुद्ध आदि का ध्यान करने से, उनके गुणो को बार-बार स्मरण करने से (गुण, कीर्तन, स्तुति आदि करने से) व्यक्ति (ध्यानी) ध्येय का-सा शुद्ध हृदय वाला हो जाता है।

चूँकि ध्यान के लिये चित्त का एकाग्र होना आवश्यक होता है अत सनातनधर्म की तरह बौद्धधर्म में भी भक्तगण इस हेतु नाना उपाय करते हैं। वह अपने इष्ट को स्नान कराते हैं, वस्त्र, अलंकार पहिनाते हैं, सुगन्धित विलेपन करते हैं, धूप-दीप, नैवेद्य चढ़ाते हैं, स्तुति करते हैं तथा अन्य प्रकार से भी पूजन करते हैं बुद्ध धर्म तथा संघ की शरण में जाते हैं। शुद्ध बनते हैं। इन सबका उद्देश्य बाहरी विषयों से मन को हटा कर इष्ट में मन को एकाग्र करना होता है।

(अ०न०दे० बौद्ध दर्शन वो० भाग २, ७)

इसी प्रकार पूजा का जो उद्देश्य सनातनधर्म बताता है वही बौद्धधर्म भी। भदन्त प्रज्ञानन्द जी भी पूजा का यही उद्देश्य बताते हुए कहते हैं, "किसी भी लोकोत्तर पुरुष की जो पूजा की जाती है वह इसलिये की जाती है, कि उसका आदर्श चरित्र हमारे अपने चरित्र को ऊँचा उठाये और उस महापुरुष के कल्याणकारी उपदेश हमें भी सदाचारी बनायें।"

(बौद्धों की हस्त पुस्तक, पूजा विधि, पृ० ४)

(महायान) में कोई व्यक्ति बिना बोधिचित्तोत्पाद के महायान का अनुयायी नहीं बन सकता। बोधिचित्तोत्पाद हेतु धर्म संग्रह में इस अनुत्तर पूजा के सात अङ्ग कहे गये हैं यथा—वन्दना, पूजना, पापदेशना, पुण्यानुमोदन, अध्येष्णा, [illegible] और परिणामना

इस प्रकार उद्देश्य की दृष्टि से भी दोनों पूजा पद्धतियों में समानता मिलती है।

सनातनधर्म और बौद्धधर्म में नामजप तथा मन्त्रजप

नामजप भी पूजा की एक विधि है जिसमें कोई विधि-विधान नहीं रहता है। बस एक ही शर्त है कि मन एकाग्र होकर भगवान का (वीतराग पुरुष का) नाम ले।

नामजप से नामी के गुण जप करने वाले के हृदय में आ जाते हैं अथात अपने इष्टदेव की तरह वह भी वीतराग बन जाता है। भव (जन्म) रोग, जरा ओर मृत्यु से छुटकारा पा जाता है। इस सम्बन्ध में देवरहा बाबा भी यही बात कहते हैं, "मन से जिस वस्तु का बार-बार चिन्तन हो, उसी को ध्येय बना लेना चाहिए तथा रामनाम अथवा गुरु मन्त्र से उसी का ध्यान करता जाय। कुछ दिनों के अभ्यास मे वृत्ति तदविषयाकार हो जाएगी।" (सर्वात्म दर्शन, पृ० २२०, पैरा १)

पुनश्च—नाम का चिन्तन करते-करते नामी का चिन्तन स्वयं हो जाता है। (वही, पैरा, ३)

अब बौद्धधर्म में नाम का महत्त्व देखिए—अवलोकितेश्वर (बुद्ध) के नाम का केवल स्मरण ही मनुष्य की अनेक दुःखों एवं आपदाओं से रक्षा करता है। "महान अग्नि स्कन्ध, वेगवती नदी की धारा से, मृत्युदण्ड से, कारावास से, डाकुओं से एवं समुद्रवास के समय कालिका वात से रक्षा प्राप्त करने के लिये अवलोकितेश्वर का स्मरण-मात्र पर्याप्त है। चीनी यात्री फाहियान ने लंका से चीन जाते समय समुद्रवास के समय तूफान से बचने के लिये अवलोकितेश्वर की ही प्रार्थना की थी। अवलोकितेश्वर के स्मरण एवं नमन से निःसन्तान स्त्री को सुन्दर पुत्र की प्राप्ति होती है।"

ह्वेनसांग ने भी भगवान बुद्ध का नाम स्मरण करने पर ही डाकुओं से छुटकारा पाया था जो देवी को उसकी बलि चढ़ाना चाहते थे। अब प्रश्न उठता है कि जब बौद्ध भगवान को मानते ही नहीं तो पूजा कैसी और फल कैसा? इस सम्बन्ध में भगवान के वचन ही पर्याप्त हैं जिसमें उन्होंने स्वयं ही अपने को स्वयंभू, संसार का पिता, वैद्य, अनादि अनन्त और अजन्मा बताया है—

यथा हि सो वैद्य उपाय शिक्षितो
विपरीत संज्ञीन सुतान हेतोः।
जीवन्तमात्मान मृतेति ब्रूयात्
तं वैद्यु विज्ञो न मृषेण चोदयेत्॥ (सद्धर्म पुण्डरीक, १५/१८)

ममेव हं लोक पिता स्वयम्भूः
चिकित्सकः सर्व प्रजान नाथः।
विपरीत मूढाश्च विदित्व वालान्
अनिर्वृतो निर्वृत दर्शयामि॥ (वही, १५-२१)

अर्थात जिस प्रकार उपाय को जानने वाला वैद्य अपने विपरीत ज्ञान रखने वाले पुत्रों के लिये जीते हुए भी अपने को मृतक बतलाता है और विद्वान उस पर झूठ बोलने का आरोप नहीं लगाते उसी प्रकार "मैं भी जो स्वयंभू, लोक का पिता, सभी प्रजा का स्वामी एवं चिकित्सक हूँ, इन मूर्ख प्राणियों को विपरीत ज्ञान वाला जानकर मैं यद्यपि कि निर्वाण को प्राप्त नहीं हुआ हूँ तथापि कहता हूँ कि निर्वाण को प्राप्त हो गया।"

उपरोक्त उद्धरणों के पढ़ने से यही निष्कर्ष निकलता है कि भगवान बुद्ध एक अवतार थे और बौद्ध विशेषकर महायानी उन्हें भगवान समझ कर ही पूजते हैं।

इस प्रकार दोनों धर्मों में नामजप का महत्त्व समान रूप से प्रचलित है। दोनों धर्म में नामजप का महत्त्व है और दोनों में (वीतराग पुरुष) राम, कृष्ण, शिव, बुद्ध आदि के गुणों को बार-बार स्मरण कर वीतराग बनने का लक्ष्य है। पूजा और नामजप दोनों का लक्ष्य समान है अन्तर यही है कि पूजा में विधि-विधान है और नामजप में कोई विधि-विधान नहीं है।

मन्त्रजप—सनातनधर्म में मन्त्रजप की बड़ी महिमा गाई गई है। मनुस्मृति मे गायत्री मन्त्र के जप से परब्रह्म में मिलने अथवा आवागमन से छुटकारे की बात कही गई है—

योऽधीतेऽहन्यहन्येतांस्त्रीणि वर्षाण्यतन्द्रितः।
स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः खमूर्तिमानः। (मनु०, २-८५)

सन्त देवरहा बाबा कहते हैं, "जिस प्रकार काष्ठ में निहित अग्नि का साक्षात्कार संघर्ष से होता है उसी प्रकार मन्त्र द्वारा हृदय में ब्रह्माग्नि का साक्षात्कार होता है।"

सनातनधर्म की सभी शाखाओं में (योग, यज्ञ, ज्ञान, तन्त्र, नाथ योग आदि में) मन्त्रों का महत्त्व है। (सर्वात्म दर्शन)

बौद्धधर्म में मन्त्र—बौद्धधर्म की मूल पुस्तक त्रिपटों में ही तन्त्र-मन्त्र के बीज दिखाई पड़ते हैं। साधन माला तथा गुह्य समाज आदि पुस्तकों में मन्त्रों की महिमा है। महायान के मन्त्रयान और वज्रयान में तो मन्त्रों की महत्ता उनके नामो से ही प्रगट होती है। करण्डव्यूह में ॐ मणि पद्मे हूँ तथा निचरेन सम्प्रदाय (जापान में स्थित) में नमः पुण्डरीकाय स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करने वाले हैं। भगवान बुद्ध का साक्षात्कार कराने वाले हैं।

इसी प्रकार तन्त्र साहित्य में अष्टमी व्रत विधान में मन्त्रों और मुद्राओं का विधि-विधान बताया गया है।

बौद्धधर्म में मन्त्रों के समान धरणी का भी महत्त्व है। ये सनातन धर्म के कवच और कील की तरह बौद्धधर्म के प्रचारकों तथा सामान्य जन की रोग,

अनावृष्टि तथा भूत-प्रेत और दुष्ट आत्माओं से रक्षा करते हैं। इस प्रकार मन्त्र-जाप दोनों में है।

आश्रम-व्यवस्था

सनातन-धर्म में ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास चार आश्रम माने गये हैं। इसी प्रकार बौद्धधर्म में श्रमणोर गृहस्थ या उपासक, अरण्यक और भिक्षु चार आश्रम हैं।

टिप्पणी—ब्रह्मचर्याश्रम बौद्धधर्म में भी है और बौद्ध विद्यार्थी सनातनधर्म के समान गुरुकुलों, नालन्दा, विक्रमशिला आदि में पढ़ते थे। वैसा ही जीवन व्यतीत करते थे लेकिन बौद्धधर्म में कोई खास अवस्था या समय किसी आश्रम के लिये निर्धारित नहीं किया गया है।

हाँ, बीस वर्ष की अवस्था तक के साधक को वह श्रमणोर कहते हैं। बीस वर्ष के बाद उसे उपसम्पदा देकर भिक्षु वर्ग में मिला लेते हैं। इसी प्रकार अरण्यक वानप्रस्थी की भाँति होता है। एकान्तवास करता है। पर उसकी कोई खास अवस्था नहीं होती। वह भिक्षु वर्ग का ही सदस्य होता है।

उपरोक्त से हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि बौद्धधर्म में ब्रह्मचर्याश्रम है तो लेकिन वह उसे ब्रह्मचर्य आश्रम न कह कर कभी शिष्य तो कभी श्रमणोर कहते हैं। गृहस्थाश्रम और उपासकों (बौद्ध गृहस्थों) में अन्तर नहीं है। यदि है तो वह हिसापूर्ण जीविका से विरत रहने की है। बौद्धधर्म अपने गृहस्थों को हिंसापूर्ण जीविका अपनाने की आज्ञा नहीं देता है। जबकि सनातनधर्म क्षत्रियों, निषादों और चाण्डालों को ऐसी हिंसापूर्ण जीविका अपनाने का निषेध नहीं करता।

संन्यासी और भिक्षु के जीवनयापन और आदर्शों में पूरी समानता है।

वानप्रस्थाश्रम अरण्यक और श्रमणोर के बीच का है पर वहाँ इसकी अवस्था निर्धारित नहीं है।

फिर भी अरण्यक के जीवन से वानप्रस्थाश्रम की तुलना की जा सकती है—

१. दोनों अरण्यक में एकान्त निवास करते हैं।
२. दोनों स्त्री, पुत्र कलत्र और गृहत्यागी होते हैं।
३. दोनों ब्रह्मचर्य और योगाभ्यास अपनाते हैं।
४. दोनों भीड़भाड़ से अलग रहते हैं।
५. दोनों क्षमा और स्वावलम्बन का अभ्यास करते हैं।

वानप्रस्थी और अरण्यक में अन्तर

वानप्रस्थी भिक्षा नहीं माँगता है। जबकि अरण्यक भिक्षा माँगने हेतु जाता है।

जाति-व्यवस्था

सनातनधर्म की भाँति बौद्धधर्म में भी कर्मों का बँटवारा है। भगवान बुद्ध रक्त की पवित्रता हेतु गोत्र को भी मानते हैं। यही कारण है कि बौद्धधर्म ग्रहण करने पर भी गोत्र नहीं बदलता है।

आज भी सभी बौद्ध देशों में श्रमणों के साथ ब्राह्मणों का नाम लिया जाता है और पूजा व प्रचार का कार्य प्रायः उच्च वर्गों को ही सौंपा जाता है। कुछ जातियों को जैसे—निषाद व चण्डाल जो हिंसक वृत्ति अपनाने के कारण उपेक्षित थे—बौद्धधर्म में भी उपेक्षित रहे। लेकिन वह उपेक्षा हिंसा-वृत्ति के कारण थी, मनुष्य की किसी जाति में जन्म लेने के कारण नहीं। भगवान राम ने शबरी के दिये हुए बेर खाये थे। **निषादराज गुह को अङ्क में भेंटे थे।** अर्जुन ने नागराज कन्या को ब्याहा था। उसी प्रकार भगवान बुद्ध का यह कहना है कि यदि कोई अपनी जाति के निर्धारित कामों को नहीं करता है अपितु दूसरी जाति के कर्मों को करता है तो उसे उसी नाम से पुकारना चाहिये।

इस प्रकार सनातनधर्म की भाँतिबौद्ध धर्म भी जाति को तभी मान्यता देता है जब वह व्यक्ति उसके अनुकूल कर्म भी करता हो।

योग

सनातनधर्म की भाँति बौद्धधर्म में भी योग की मान्यता है—

१. दोनों धर्मों में यम, नियमों की समान रूप से प्रतिष्ठा है।

२. दोनों धर्मों में बैठने हेतु कुशासन प्रयोग होता है।

३. दोनों में लोग पीपल के वृक्ष के नीचे बैठ कर साधना करना लाभदायक मानते हैं।

४. दोनों में प्रायः पद्मासन लगा कर बैठा जाता है।

५. दोनों में प्राणायाम है। बौद्ध उसे आनापानस्मृति कहते हैं।

टिप्पणी—बौद्धधर्म में साँस आने व बाहर जाने की गतिविधि भी देखी जाती है।

६. ब्रह्म विहार दोनों में है यथा, सुखी प्राणियों को देखकर सुखी होना (मुदिता), दुःखी जनों को देखकर दुःखी होना (करुणा), सत्कर्म करने वालों को देखकर प्रसन्न होना और दुष्ट मनुष्यों के प्रति उपेक्षा-भाव दिखाना दोनों में है।

७. प्रत्याहार (इन्द्रियों द्वारा अपने-अपने विषयों को छोड़ चित्त में विलीन होना) भी दोनों में है।

८. धारणा (किसी विषय या वस्तुविशेष में चित्त को आबद्ध करना) भी दोनों में है।

९. ध्यान (किसी विषय पर एकाग्रचित्त होकर टकटकी लगाये रखना। समाधि (वस्तुओं का आन्तरिक अर्थ या परम सत्य का ज्ञान होना) दोनों में है।

टिप्पणी—बौद्धधर्म में ध्यान के चालीस कर्म स्थानों में दृष्टि लगाना और एकाग्रचित्त हो उनका नाम जपना, उनके विषय में सोचना समाधि कहलाता है। कुछ अन्तरों के साथ योग दोनों में समान रूप से ज्ञान (प्रज्ञा) या विवेक प्राप्त करने का साधन माना जाता है। सनातनधर्म कहता है—योगते ज्ञाना, बौद्धधर्म कहता है—योगाभ्यास से प्रज्ञा होती है।

इस प्रकार सनातन हिन्दूधर्म की तीनों विशेषतायें समाज व व्यक्ति के बीच अङ्ग-अङ्गी का सम्बन्ध, पुनर्जन्म व मोक्ष की प्राप्ति बौद्धधर्म में भी है।

भक्ति, कर्म, योग और ज्ञान भी दोनों में समान रूप से हैं। चार आर्य सत्य व अष्टाङ्ग मार्ग तथा धर्म के दस तत्त्व दोनों में हैं। यज्ञ, व्रत, तीर्थ, जाति व आश्रम व्यवस्था, पूजा, नामजप, मन्त्रजप और कुण्डलिनी की साधन भी दोनों में है। भगवान बुद्ध ने इन सभी क्षेत्रों में सुधार कर उन्हें नवजीवन प्रदान किया।

इस प्रकार यह बात पूरी तरह सिद्ध हो जाती है कि भगवान बुद्ध एक अवतार थे। वह सनातन हिन्दूधर्म की परम्पराओं को मानते हैं, केवल उसमें आये दोषों को दूर करना चाहते हैं। समस्त हिन्दू देवताओं, इन्द्र, शिव, ईश, महेसर, आदि को मानते हैं। वे देवगण राम-कृष्ण जैसे अवतारों की भाँति उनकी भी पूजा करते हैं। संसार के दुःख दूर करने हेतु प्रार्थना करते हैं। उनके पैरों में अवतार के लक्षण स्वरूप चक्र है। (वेद में कहे गये) अवतारी पुरुष के ३२ लक्षण उनके शरीर में पाये जाते हैं। अन्य अवतारों की भाँति सारी प्रकृति उनके अवतार पर प्रसन्न होती है। उस समय के सर्वश्रेष्ठ ऋषि असित उनके अवतार एवं धर्मचक्र-प्रवर्तन की भविष्यवाणी करते हैं।

बौद्ध ग्रन्थ ललित विस्तर, सद्धर्म पुण्डरीक, करण्डव्यूह आदि उन्हें अवतार मानते हैं। ललित विस्तर में लिखा है, "हे च्युत, हे बुढ़ापा, मृत्यु क्लेशों को नष्ट करने वाले, हे रजस अर्थात राग-द्वेष से हीन! बहुत से देव, असुर, नाग, यक्ष तथा गन्धर्व तुम्हारे अवतार की प्रतीक्षा कर रहे हैं।" (ललित विस्तर, समुत्साह, परिवर्त १८)

पुनश्च, वे चारों लोकपाल (इन्द्र और ब्रह्मा) जो उत्पन्न होने पर तुम्हें ग्रहण करेंगे, प्रतीक्षा कर रहे हैं। (वही, पृ० ३१)

भगवान बुद्ध नास्तिक नहीं

भगवान बुद्ध यद्यपि नास्तिक नहीं हैं तथापि साधना-काल में वह किसी अदृश्य सत्ता की आवश्यकता नहीं समझते हैं। वह भगवान कृष्ण की भाँति पहले कामना का उन्मूलन आवश्यक समझते हैं, क्योंकि बिना काम को जीते ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती। यह उनका स्वयं का अनुभव था। उन्होंने जब काम को

जीत लिया तभी उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ था। वह अपने शिष्यों को पहले काम-विजय करने की शिक्षा देते थे—

यो चेतं सहते जम्मि तण्हं लोके दुरच्चयं।
सोका तम्हा पपतन्ति उदबिन्दु व पोक्खरा। (धम्मपद, तण्हावग्गो-३)

अर्थात जो संसार में इस दुस्त्याज्य नीच तृष्णा को जीत लेता है, उसके शोक उस तरह गिर जाते हैं, जैसे कमल के ऊपर से जल के बिन्दु। अर्थात वह जन्म, जरा, मृत्युरूपी दुःख से छुटकारा पा जाता है।

अतः तुम पहले काम का नाश करो, उसकी जड़ खोदो। दुःख से छुटकारा पाने का उपाय करो—

तं वो वदामि भद्दं वो यावन्तेत्थ समागता।
तण्हाय मूलं खणथ उसीरत्थो' व वीरणं।
मा वो नलं' व सोतो' व मारो भञ्जि पुनप्पुन॥ (वही, ४)

इसलिए मैं तुम्हें, जितने यहाँ आये हो, तुम्हारे कल्याण के लिये कहता हूँ—जैसे उशीर के लिए लोग खस को खोदते हैं, वैसे ही तुम तृष्णा की जड खोदो। वह तुम्हें स्रोत में उत्पन्न नरकट की भाँति बार-बार न तोड़े।

इसी बात को वह एक उदाहरण द्वारा भी समझाते हुए कहते हैं—

"यदि किसी व्यक्ति को किसी तरफ से आकर विषैला तीर लग जाय और उसके शरीर में रुधिर की धारा बहने लगे, तब यदि वह व्यक्ति रुधिर-धारा को बन्द करने के उपाय की चिन्ता न करके पूछने लगे कि उस विषैले तीर को मारने वाला कौन है? वह ब्राह्मण है, वैश्य है या शूद्र, वह कितना लम्बा-चौड़ा है, उसका वर्ण श्याम है या गौर, उसने मुझे यह तीर क्यों मारा इत्यादि। निश्चित ही ऐसा व्यक्ति मूर्ख होगा और मृत्यु को प्राप्त हो जायगा।"

(धम्मपद की भूमिका, इन्दुविद्यावाचस्पति)

अतः व्यक्ति को पहले दुःख (जन्म, जरा, मरण) से छुटकारा पाने का उपाय करना चाहिए।

इसी प्रकार एक बार जब भगवान कौशाम्बी में शिंशपा उद्यान में ठहरे हुए थे, कुछ भिक्षुओं ने उनके पास जाकर नम्रतापूर्वक पूछा, "भगवन! आपने हमें अदृश्य शक्ति के बारे में कभी कुछ नहीं बताया।" भगवान ने अपने हाथ में कुछ शिशप वृक्ष के पत्ते लिये और भिक्षुओं से पूछा "तुम क्या देखते हो, ये शिंशप के पत्ते जो मेरे हाथ में हैं अधिक हैं या वे पत्ते जो वृक्ष पर?"

भिक्षुओं ने उत्तर दिया, "भगवान वृक्ष पर लगे हुए पत्ते कहीं अधिक हैं।"

इसी तरह कितने अधिक तथ्य हैं जिन्हें मैने जान लिया है परन्तु तुम्हें नहीं बतलाया। उन्हें तुम्हें बतलाने का मैं कोई लाभ नहीं समझता, क्योंकि संसार में

विरक्त होने के लिए, तृष्णा के नाश के लिए, उपशम तथा निर्वाण प्राप्त करने के लिये उनका जानना आवश्यक नहीं। (वही)

निर्वाण की प्राप्ति कराने वाला आर्य चतुष्टय और अष्टाङ्गिकमार्ग ही पर्याप्त है—

यो च बुद्धं च, धम्मं च संघ च सरणं गतो।
चत्तारि अरियसच्चानि सम्मप्पञ्ञय पस्सति॥
दुक्खं दुक्खसमुप्पाद दुक्खस्स च अतिक्कमं।
अरियं चट्ठङ्गिकं मग्गं दुक्खूपसमगामिनं॥
एतं खो सरणं खेमं एतं सरणमुत्तमं।
एतं सरणमागम्य सब्बदुक्खा पमुच्चति॥

(धम्मपद, बुद्धवग्गो, १२, १३, १४)

अर्थात जो बुद्ध, धर्म, और संघ की शरण गया है, जिसने चार आर्य सत्यों— दु:ख, दु:ख की उत्पत्ति, दु:ख से मुक्ति और मुक्तिगामी आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग को सम्यक प्रज्ञा से देख लिया है, यही मंगलदायक शरण है। यही उत्तम शरण है। इसी शरण को प्राप्त कर (व्यक्ति) सभी दु:खों से मुक्त हो जाता है।

इस प्रकार यह बात सिद्ध हो जाती है कि बुद्ध भगवान अदृश्य सत्ता को मानते हैं परन्तु वह उसकी आवश्यकता नहीं समझते हैं। ईश्वर को स्वीकार वह अवश्य करते हैं। जब उनके शिष्य कश्यप उनसे प्रश्न करते हैं कि क्या आप निरीश्वरवादी विचारधारा का प्रचार कर रहे हैं तो वह कहते हैं—"निरीश्वरवादी धारणा भी असंख्य संकीर्ण धारणाओं में से एक धारणा है जिस प्रकार पृथक आत्मसत्ता और उसकी शाश्वता की धारणा" (जहँ जहँ चरन परे गौतम के)।

आगे अपनी धारणा को व्यक्त करते हुए कश्यप से कहते हैं, "कश्यपजी इस कमल-सरोवर को देखिए। मैं यह नहीं कहता कि जल और कमल विद्यमान नहीं हैं। मैं केवल इतना कहता हूँ कि जल और कमल की सत्ता अन्य समस्त तत्त्वों की विद्यमानता और उनके परस्पर अवलम्बन के कारण है और सभी तत्त्व न तो सर्वथा पृथक हैं और न शाश्वत।" (जहँ जहँ चरन परे गौतम के, पृ० १८७-८८)

अपने ऐसा कहने का कारण बताते हुए वह कहते हैं, "वही जीव है, वही शरीर है अर्थात दोनों एक हैं ऐसा मत होने पर ब्रह्मचर्यवास नहीं हो सकता। जीव दूसरा है शरीर दूसरा है ऐसा मत होने पर पर भी ब्रह्मचर्यवास नहीं हो सकता।"

(दीर्घनिकाय, अंगुत्तर निकाय, ३)

भगवान ईश्वरवादी थे लेकिन वह ईश्वर को सांख्य की तरह कर्ता-धर्ता मानने के विरुद्ध थे तभी तो उनके शिष्य ने भौतिकवादी दार्शनिक आर्य राजन्य पयासी को जोकि सेतव्या नगरी के अधिपति थे, के खण्डन की आवश्यकता समझी थी—

"कश्यप ने उसकी भौतिकता की बड़ी सुन्दरता से खण्डन कर परलोक की सत्ता, पुण्यापुण्य लाभ तथा जीव को शरीर से भिन्नता का प्रतिपादन किया।"

(बौद्धदर्शन मीमांसा-बुद्ध के दार्शनिक विचार)

भगवान बुद्ध अद्वैतवादी हैं। वह कहते हैं, "जन्म और मृत्यु लहरों की भाँति है। लहरें लौटकर जल बन जाती हैं। लहरें जल ही हैं और जल ही लहरें।" (जहँ जहँ चरन परे गौतम के)। धम्मपद के निम्न श्लोक से भी उनका अद्वैतवादी होना सिद्ध होता है—

अत्ता हि अत्तनो नाथो को हि नाथो परो सिया।
अत्तना हि सुदन्तेन, नाथं लभति दुल्लभं॥ (धम्मपद, अत्तवग्गो, ४)

अर्थात मनुष्य स्वयं ही अपना नाथ है कौन दूसरा उसका नाथ हो सकता है। दमन करता हुआ मनुष्य अपने को ही दुर्लभ नाथ के रूप में प्राप्त करता है।

ऊपर का यह कथन कि "जन्म और मृत्यु लहरों की भाँति है। लहरें लौट कर जल बन जाती हैं। लहरें जल ही हैं और जल ही लहरें" योगवशिष्ठ के निम्न श्लोक से तुलना कीजिये—

निस्तत्त्वे नाम रूपे द्वे जन्म नाश युते च ते।
बुद्ध्या ब्रह्मणीवीक्षस्व समुद्रे बुदबुदादिवत्॥

अर्थात नाम और रूप जन्म मरण युक्त अतएव मिथ्या है। जैसे समुद्र में बुदबुद होते हैं वैसे ही सत्य ब्रह्म में नाम रूप को जानो।

इसी प्रकार शून्य तत्त्व की समीक्षा से भी यही बात सिद्ध होती है कि शून्य परमतत्त्व है। भगवान बुद्ध मोघराज को समझाते हुए बताते हैं कि, "हे मोघराज। सदा स्मृतिमान हो शून्य के रूप को देखो। इस प्रकार आत्म-दृष्टि का नाश कर मृत्यु को पार कर जावोगे। इस रूप में संसार को देखने वाले को मृत्युराज नहीं देख पाता।" (सुत्तनिपात, मोघराज माणव, पुच्छा ४)

पुनश्च **न तेऽस्ति मन्युना नाथ न विकल्पो न चेञ्जना।**
अनाभोगेन ते लोके बुद्ध कृत्यं च वर्तते॥

(बौद्धदर्शन मीमांसा, दार्शनिक विवरण, पृ० ३१०)

इसी प्रकार नैषधकार, जैन कवि हरिश्चन्द्र, शान्तिदेव आदि ने भी बुद्ध को अद्वैतवादी ही कहा है।

शरावेस्की महोदय ने भी यही लिखा है कि "बौद्ध पहले आत्मा, परमात्मा, पुनर्जन्म आदि को मानते थे।"

अतः यह तथ्य स्पष्ट है कि बुद्ध आत्मा, परमात्मा में विश्वास रखते हैं किन्तु शब्दों द्वारा जो वर्णनीय नहीं है उसे उन्होंने अव्याकृत कह कर टाल दिया है और आत्मा-परमात्मा का प्रत्यक्ष करने के लिए उपाय बताया लेकिन अव्यक्त

को शब्दों द्वारा व्यक्त करने का न तो निरर्थक प्रयास किया और न किसी ईश्वर के सहारे आत्मसाक्षात्कार करने को कहा।

मानवलीला में देवगण उनके साथ रहना चाहते हैं। रामावतार में जिस प्रकार देवताओं ने वानरों का अवतार लिया था। भगवान बुद्ध के अतार के साथ भी देवताओं ने जन्म लिया। (लोक में) शत सहस्र देवता इकट्ठे होकर बोले—

"हे मार्षो, यह ठीक न होगा; यदि हम बोधिसत्त्व को अकेला छोड़ दे अत उनके गर्भवास, जन्म, बालक्रीड़ा, अन्तःपुर विहार, नाटक संदर्शन, गृहत्याग, दुष्करचर्या, बोधिवृक्ष के नीचे जाना, मार विजय, बोधि अभिसंबोधन, धर्मचक्रप्रवर्त्तन तथा महापरिनिर्वाणा प्रयन्त साथ न रहें।"

(वही, प्रचलन परिवर्त. १४, १५)

तदन्तर चारों दिशाओं के चारों लोकपालों, इन्द्र सुभाम, तथा निर्मित देवताओं, देवगणों, कुम्भाण्डों, राक्षसों, असुरों, महेसरों, और किन्नरों से कहा, "पुरुषोत्तम से पहिले जाओ, श्रेष्ट पुरुष का रक्षण एवं गोपन करो।" (वही, १३१-३२)। इस प्रकार निम्न उद्धरण से सिद्ध होता है कि वह विष्णुलोक की तरह तुषित लोक से अवतरित हुए थे—तब वे तुषित कायिक देवपुत्र रोते हुए बोधिसत्त्व के चरणों को पकड़ कर यों कहने लगे, "हे सत्पुरुष! यह तुषित भवन तुमसे बिछुड़ा न सुहायेगा।" (प्रचल परिवर्त्त २, पृ० १०३)

पुनश्च, जब तुषित लोक के श्रेष्ठ भवनरूपी निलय से (आलय से) पुरुष सिह नायक पृथ्वी पर जन्म लेते हैं तब देवताओं से कहते हैं कि "सम्पूर्ण प्रमाद छोड़ दो।" (वही)

जन्म के बाद जब उन्हें देवदर्शन कराने ले गये थे तब उन्होंने स्वयं अपने श्रीमुख से बताया था कि वह ही पारब्रह्म हैं—

देवातिदेव अहं उत्तमु सर्व देवैः।
देवो न मे अस्ति सदृशः कुत उत्तरं वा

(ल०वि० देवकुलोप नया परिवर्त, २८८)

अर्थात भगवान बुद्ध अपनी माता को बताते हैं कि हे अम्ब, कौन सा और देवता मुझसे बढ़-चढ़ श्रेष्ठ है, जिसके यहाँ तुम आज मुझे ले जा रही हो। मैं सब देवताओं में उत्तम, देवताओं का भी श्रेष्ठ देवता हूँ। देवता मेरी बराबरी का भी नहीं है, फिर मुझसे बढ़ कर हो ही कैसे सकता है।

जब वह देवदर्शन हेतु गये तो देवप्रतिमायें यथा शिव, स्कन्द, नारायण, कुबेर, चन्द्र, सूर्य, वैश्रवण, शक्र, ब्रह्मा तथा लोकपालों की प्रतिमायें सब की सब अपने-अपने स्थानों से उठकर बोधिसत्त्व के चरण-तलों में गिर पड़ीं।

(वही. अ० ६. पृ० २३७)

भगवान बुद्ध को मनुष्य देह धारण का कारण लोगों को धर्म-मार्ग पर चलने की प्रेरणा प्रदान करना था और यही अन्य अवतारों के जन्म का भी रहा है क्योकि मनुष्य मनुष्य का ही अनुकरण कर पाता है न कि देव का—"वह देवता होकर धर्मचक्र का प्रवर्त्तन नहीं करते। वह क्यों? हे आनन्द, वह इसलिये कि प्राणी निरुद्यमी न हो जायँ कि भगवान तथा गत अरहत सम्बुद्ध थे, हम तो कोरे मनुष्य हैं। हम वह स्थान परिपूर्ण करने में समर्थ नहीं।"

(वही, जन्म परिवर्त्त ८८, पृ० १८५)

उन्हें तिब्बत के तान्त्रिक, जापान का जोदो सम्प्रदाय, निचिरेन सम्प्रदाय आदि भी अवतार मानते हैं।

इसी प्रकार सनातन हिन्दूधर्म के मत्स्यपुराण (अध्याय ४७), पद्मपुराण (अध्याय ६८, पाताल खण्ड), ब्रह्मवैवर्तपुराण (कृष्ण जन्म खण्ड, अध्याय ९), श्रीमद्भागवत (प्रथम स्कन्ध, तृतीय अध्याय), भविष्यपुराण उत्तरार्ध (अध्याय ७३), वाराहपुराण (प्रथम अध्याय), शिवपुराण (पाँचवाँ खण्ड), अग्निपुराण (अध्याय १६) में उन्हें विष्णु का अवतार माना गया है।

अन्य अवतारों की भाँति उन्होंने भी मुरझाये हुए हिन्दू समाज में नवप्राण फूँक कर उसे (जो घोर निद्रा में था) जगाया।

उनके समय में हिन्दू समाज जिन-जिन व्याधियों (हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार, जुआ, शराब, शोषण, उत्पीड़न) से ग्रस्त था, भगवान ने उसका उपचार करके उसे स्वस्थ बनाया।

यही कारण है कि दोनों धर्मों के विद्वान एक दूसरे के धर्म को अपना ही मानते हैं। सन् १९३६ में हिन्दू महासभा के सभापतित्व के लिये बौद्धधर्म के प्रसिद्ध विद्वान भिक्षु उत्तम को तथा वाद को पूज्यपाद दलाईलामा को हिन्दू सभा का अध्यक्ष चुन कर यह सिद्ध कर दिया कि बौद्धधर्म सनातन हिन्दूधर्म से भिन्न नहीं है। उपरोक्त पूज्य पुरुषों ने अध्यक्षता करके भी यही भाव व्यक्त किया कि बौद्ध और हिन्दू दोनों एक हैं।

वैसे अन्तर भी बहुत दिखाई देते हैं परन्तु भगवान बुद्ध के बताये मार्ग पर चलने वाला जब शील व समाधि की सीढ़ियों पर चढ़कर प्रज्ञा के राजप्रासाद पर पहुँचता है और सनातनधर्मी योग की सीढ़ियों पर चढ़ कर विवेक ख्याति प्राप्त करता है तब दोनों एक ही सत्य का साक्षात्कार करते हैं।

आवश्यकता एक-दूसरे को समझने की, प्रेम और आदर के साथ व्यवहार करने की है।

अन्त में हम दोनों धर्मों के जानकार महान निष्पक्ष विद्वान वुडरफ महोदय के विचार उद्धरित कर इस प्रसग को विश्राम देते हैं

The Hindu religious conciousness is like a mighty Gangea emerging from the Himalayas of Vadic wisdom, receiving tributaries and sending out branch streams at many points in its course and though the nature of the current its colour, velocity or uses may vary at different places, the Ganges is the same Ganges whether at Haridwar, Allahabad or Calcutta. The stream is not only one but has also its one main channel inspite of all the tributaries and branches.

(Shakti & Shakta, p. 184-83)

अर्थात हिन्दू धार्मिक विचार एक शक्तिशाली गंगा के समान हैं जो वैदिक बुद्धिरूपी हिमालय से निकलती हुई, मार्ग में अनेक स्थलों पर अनेक सहायक नदियों को समेटती हुई अनेक शाखाओं और धाराओं को बाहर निकालती हुई भी विभिन्न स्थलों पर उसकी चाल, रंग और वेग की विभिन्नता होने पर भी गंगा वही है वह चाहे हरिद्वार हो, इलाहाबाद हो या कलकत्ता हो, केवल प्रवाह (धारा) ही एक नहीं है अपितु बहुत सी नदियों और फूटकर बाहर निकलने वाली धाराओं के होते हुए भी उनका मूल श्रोत भी एक ही है।

भगवान गौतम बुद्ध के चार आर्य सत्य

भारतीय दर्शन प्रायः चार विषयों को अपना प्रतिपाद्य बनाता है—१. हेय (दुःख), २. हेय हेतु (दुःख का कारण), ३. हान (दुःख को दूर करने का उपाय) ४ हानोपाय (दुःख के अत्यन्ता भाव या अभाव की अवस्था का अनुभव)।

चूँकि बौद्ध दर्शन भी इन्हीं विषयों को अपना प्रतिपाद्य विषय बनाता है अतः हम उसके दर्शन को भारतीय दर्शन या सनातन हिन्दूधर्म की परम्परा से भिन्न नहीं कह सकते।

सभी भारतीय दर्शन मानव-जीवन को आवागमन से छुटकारा पाने का एक साधन मानते हैं। जन्म, जरा, रोग के दुःखों से छुटकारा पाने का उपाय खोजते हैं।

योगसूत्र में चारों आर्य सत्यों का वर्णन देखिये। भोजवृत्ति में इसकी सटीक व्याख्या है—तस्य सप्तधा प्रान भूमिः प्रज्ञा। अर्थात उस योगी को निम्न सात प्रकार की प्रज्ञा प्राप्त होती है। डॉ० सम्पूर्णानन्द ने अपने योगदर्शन में इसकी बडी सुन्दर व्याख्या की है।

(१) हेय को जान लिया गया अब इसको जानने की कोई आवश्यकता नहीं है।

(२) हेय का हेतु जान लिया गया अब फिर उनको क्षीण नहीं करना है।

(३) निरोध समाधि के द्वारा हान का (दुःख दूर करने का उपाय) साक्षात्कार कर लिया गया।

(४) विवेक ख्याति रूप हानोपाय की भी भावना हो गई।

(५) बुद्धि चरिताधिकार हो गई।

(६) तीनों गुण (सत, रज, तम) पहाड़ के शिखर पर से गिरे हुए पत्थर के टुकड़े के समान निराधार हो गये हैं और अब अपने कारण में लय होने की दिशा में हैं। उसके साथ ही अस्त होंगे। प्रलीन हुए गुणों का अब फिर उत्पाद नहीं होगा।

(७) इस अवस्था में गुणों से सम्बन्ध को पार करके स्वरूप-मात्र से पुरुष स्थित रहता है। इस दशा में उसे केवली कहते हैं।

उपरोक्त आर्य चतुष्टय पद्धति को अपनाने के कारण व्यास भाष्य २/१५ में योगशास्त्र की समता से की गई है

यथा चिकित्सा शास्त्रं चर्तुव्यूहं रोगो,
रोग हेतुः, आरोग्यं भेषज्यं इति।

योगशास्त्र की तरह सांख्यशास्त्र भी दु:ख, दु:ख का कारण, दु:ख को दूर करने का उपाय और दु:ख के अत्यन्ताभाव की अवस्था की खोज करता है। महर्षि कपिल कहते हैं—

दृष्ट दृश्यो संयोगो हेय हेतुः।

दृष्टा (जीव) का दृश्य से संयोग ही दु:ख का कारण है।

पुनश्च, तदर्थ एव दृश्यस्याऽऽत्मा (सांख्य २/२१)

अर्थात जब तक जीव (दृष्टा) इस दृश्य को अपना समझता है तभी तक उसमें भोक्ता-भाव है। नहीं तो उसका दृश्य से कोई सम्बन्ध नहीं है। उपरोक्त (प्रकृति-पुरुष) के सम्बन्ध का कारण अविद्या है। अविद्या के नष्ट होते ही उसका दृश्य से सम्बन्ध छूट जाता है। दृष्टा को अपने स्वरूप का ज्ञान हो जाता है।

योग में उस स्थिति को विवेक ख्याति कहते हैं और उस अवस्था में जो वृद्धि उत्पन्न होती है, उसी का नाम प्रज्ञा है। इस प्रज्ञा से बौद्ध की संज्ञा की तुलना समीचीन है। इस प्रकार सांख्य में भी आर्य चतुष्टय के चारों तत्त्व पाये जाते हैं।

योग और सांख्य की भाँति न्याय और वैशेषिक में भी अज्ञान को दु:ख का कारण माना गया है तथा दु:ख, दु:ख का कारण, उसके दूर करने का उपाय और दु:ख के अभाव की अवस्था का वर्णन किया गया है। पूज्यपाद देवरहा बाबा ने इसकी बड़ी सुन्दर विवेचना की है—

"सांख्य में जिस प्रकार प्रकृति पुरुष के ज्ञान से तत्त्वज्ञान होता है उसी प्रकार इन दोनों दर्शनों में जड़ और चेतन के विवेक को ही तत्त्वज्ञान कहते हैं। इस तत्त्वज्ञान से अविद्या का नाश होता है तथा अविद्या नाश से राग-द्वेषादि दोष नष्ट होते हैं। दोषों के नाश से प्रकृति का नाश होता है, जिससे जन्मातर नहीं होता। और अन्त में सब दु:खों का अभाव हो जाता है। यह दु:खों का अभाव ही अपवर्ग है।" (सर्वात्म दर्शन)

बौद्धों की तरह यह उपरोक्त अपवर्ग भी दु:खों का अभाव वाला निर्वाण है। न्यायमंजरी में लिखित इस अपवर्ग पर ध्यान दीजिए—

स्वरूपैक प्रतिष्ठानः परित्यक्तोऽखिलै गुणैः।
अर्मि षट का तिंग रूपं, तदस्याहुर्म मनीषिणः॥
संसार बन्धना धीनं दु:ख क्लेशाद्य दूषितम्।

वात्स्यायन प्रश्न करते हैं कि कौन बुद्धिमान इस अपवर्ग को पसन्द करेगा जिसमें सर्वसुख का उच्छेद है। अपवर्ग को उन्होंने जड़ावस्था ही माना है वैशेषिक के अनुसार स्वरूपावस्था में आत्मा में न चैतन्य है न वेदना। शरवास्की

ने भी अपनी पुस्तक में न्याय वैशेषिक में अपवर्ग को अचेतन व जड़ावस्था माना है।　　(बौद्धदर्शन आ०न०, अध्याय १४, निर्वाण का स्वरूप)

यही नहीं, इन दोनों दर्शनों में भी पदार्थों के साक्षात्कार के लिये क्रियाओं को आधार माना गया है। भगवान बुद्ध ने भी योग क्रियाओं को ज्ञान प्राप्त करने का आधार माना है। इस प्रकार इनका भी प्रतिपाद्य विषय आर्य चतुष्टय ही है।

पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा (वेदान्त) में भी अज्ञान को दुःख का कारण माना गया है। पूर्व मीमांसा में कर्मों का विधान है। (नित्य कर्म, नैमित्तिक कर्म, काम्य कर्म, निषिद्ध कर्म) अज्ञानवश होते हैं। वेदविहित कर्मों को न करने और निषिद्ध कर्मों को करने के कारण जीव दुःख पाता है। इसी प्रकार वेदान्त में भी मनुष्य के दुःख का कारण अज्ञानता ही कहा गया है। आत्मा ब्रह्म ही है— अयं आत्मा ब्रह्म सर्वं खल्विदं ब्रह्म। तत्त्वमसि अहम् ब्रह्मासि लेकिन अज्ञानतावश वह अपने को शरीर मानता है और उसकी अभिलाषाओं की पूर्ति हेतु जड़वत् व्यवहार करता है और इस हेतु जन्म, रोग, जरा से अनेक कष्ट पाता है।

इस प्रकार पूर्व और उत्तर मीमांसा (वेदान्त) भी आर्य चतुष्टय का प्रतिपादन करते हैं।

अतः यह बात पूरी तरह से सिद्ध हो जाती है कि भगवान बुद्ध का आर्य चतुष्टय सनातन हिन्दूधर्म के शास्त्रों का भी प्रतिपाद्य विषय रहा है।
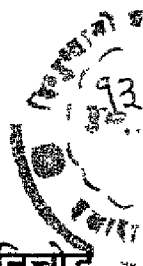
अष्टाङ्गिक मार्ग सनातन (हिन्दू) धर्म का निचोड़

भगवान गौतम बुद्ध ने अष्टाङ्गिक मार्ग को सर्व मार्गों में श्रेष्ठ बताया है—

मग्गाट्ठङ्गिको सेट्ठो (धम्मपद, २०-१)

क्योंकि यह मार (काम) को मूर्छित करने वाला है—

मारस्सेसं पमोहनं (धम्मपद, २०-२)

निर्वाण प्राप्त करने के लिए (गन्तव्य स्थान पर पहुँचने के लिए) भगवान बुद्ध ने जिस मार्ग पर चलने की शिक्षा दी उसके आठों पड़ाव (विराम या तत्त्व स्थल) निम्न है—

१.	सम्यक दृष्टि	प्रज्ञा
२.	सम्यक संकल्प	
३.	सम्यक वाचा	शील
४.	सम्यक कर्मान्त	
५.	सम्यक आजीविका	
६.	सम्यक व्यायाम	समाधि
७.	सम्यक स्मृति	
८.	सम्यक समाधि	

यह अष्टाङ्गिक मार्ग तृष्णा के प्रति वैराग्य पैदा करने वाला है। तुलसीदास ने भी धर्म का यही उद्देश्य बताया है—

धर्म ते विरति योग ते ज्ञाना।
ज्ञान मोक्ष प्रद वेद बखाना॥

अत: हम देखते है कि धर्म के उद्देश्य हैं—

१. वैराग्य, २. काम (मार) पर विजय, ३. योग से ज्ञानप्राप्ति, ४. ज्ञान से मोक्ष या निर्वाणप्राप्ति; जन्म, जरा, रोग से छुटकारा।

यदि हम तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो प्रतीत होगा कि अष्टाङ्गिक मार्ग और सनातनधर्म के उद्देश्य समान हैं। योग से ज्ञान उत्पन्न होता है। योग को बुद्ध भगवान भी बहुत महत्त्व देते हैं—

योगा वे जायती भूरि (धम्मपद, २०-१०)

अर्थात योगाभ्यास से ज्ञान उत्पन्न होता है। अष्टाङ्गिक मार्ग के पड़ाव ज्ञान-उत्पत्ति के साधन हैं।

प्रज्ञा

१ सम्यक दृष्टि

दृष्टि का अर्थ है ज्ञान। सनातन हिन्दूधर्म में करने योग्य और न करने योग्य कर्म का ज्ञान परमावश्यक है। धर्म और अधर्म को जानना व्यक्ति का प्रथम कर्त्तव्य है क्योंकि इन्हें जाने बिना व्यक्ति धर्म का पालन नहीं कर सकता। इसी तरह बौद्धधर्म में भी भगवान बुद्ध ने करने योग्य और न करने योग्य कर्म को जानना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य कहा है।

मनुष्य तीन प्रकार के कर्म करता है—सोचने का काम, बोलने का काम, करने का काम। इन्हें मानसिक, वाचिक तथा कायिक कर्म कहा जाता है। सनातनधर्म तीनों (मन, वाणी और शरीर) की दुष्कर्मों से रखवाली करने वाले को त्रिदण्डी कहता है।

वाग्दण्डोऽथ मनोदण्डः कायादण्डस्तथैव च।
यस्यैते निहिता बुद्धौ त्रिदण्डीति स उच्यते ॥ (मनु १२-१०)

अर्थात वाग्दण्ड, मनोदण्ड और कायदण्ड ये जिसकी बुद्धि में स्थिर हैं (अर्थात जो उपरोक्त तीनों से दुष्कर्म नहीं होने देते हैं) उसको त्रिदण्डी कहते हैं।

दण्डी—दण्ड लेकर रखवाली करने वाला।

मज्झिमनिकाय में इन कर्मों (धर्म और अधर्म) को जिसे बौद्धधर्म मे कुशल और अकुशल कहा गया है, इस प्रकार हैं—

अकुशल	कुशल
१. अभिध्या (लोभ)	१. अ + लोभ
२. व्यापाद (प्रतिहिंसा)	२. अ + प्रतिहिंसा
३. मिथ्या दृष्टि (झूठी धारणा)	३. अ + मिथ्या दृष्टि
४. मृषा वचन (झूठ)	४. अमृषा वचन (सत्य)
५. पिशुन वचन (चुगली)	५. अ + पिशुन वचन
६. परुष वचन (कटु वचन)	६. अ + कटु वचन (मधुर वचन)
७. संप्रलाप (बकवाद)	७. अ + संप्रलाप
८. प्राणातिपाद (हिंसा)	८. अहिंसा
९. अदत्ता दान (चोरी)	९. अचौर्य
१०. मिथ्याचार (व्यभिचार)	१०. अव्यभिचार

कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि कुशल (धर्म) और अकुशल (अधर्म) को जानने की तथा अधर्म (अकुशल) छोड़कर कुशल (धर्म) पालन की जो शिक्षा भगवान बुद्ध ने दी है वही शिक्षा भगवान कृष्ण ने भी दी है—

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः॥

(भगवतगीता, ४-१७)

अर्थात कर्म (धर्म) का स्वरूप भी जानना चाहिए और अकर्म (अधर्म) का स्वरूप भी जानना चाहिए क्योंकि कर्म की गति गहन है। धर्म, अधर्म का समझना दुष्कर है। इसी बात की शिक्षा कठोपनिषद भी देता है—

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्य मेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद्वृणीते।

(कठोपनिषद)

अर्थात मनुष्यों के सामने श्रेय और प्रेय दोनों आते हैं। उनकी परीक्षा करके धीर पुरुष विवेक से काम लेते हैं। वह प्रेय को छोड़कर श्रेय (धर्म को) चुनता है तथा मन्द पुरुष योगक्षेम के लिए प्रेय को चुनता है। अब यदि मानसिक, वाचिक और कायिक के कुशल (धर्ममय) और अकुशल (अधर्ममय) कर्मों पर विचार करे तो उनमें पूर्ण समता दिखाई देती है।

न्यायदर्शन के प्रणेता गौतम ने भी भगवान बुद्ध द्वारा उक्त निर्दिष्ट दस प्रकार के पापों (अकुशल कर्मों) से बचकर धर्म (कुशल कर्मों) के अनुष्ठान में लगने को कहा है। १० प्रकार के पाप निम्न हैं—

मानस पाप—१. मुझे दूसरे का धन कैसे मिल जाए ऐसा चिन्तन, २. मन से निषिद्ध कर्म करने की आकांक्षा। ३. नर्क, स्वर्ग, पुनर्जन्म, जीव, ईश्वर को कौन जानता है। यह देह ही सब कुछ है, ऐसा मान बैठना (मिथ्या दृष्टि धारण करना)।

वाचिक पाप—४. कठोर बोलना, ५. मिथ्या भाषण करना, ६. दूसरों की निन्दा करना, ७. निष्प्रयोजन वार्ता करना।

कायिक पाप—८. बिना दिये किसी की वस्तु लेना, ९. तन, मन और वचन से किसी को कष्ट पहुँचाना, १०. परस्त्री और परपुरुष के साथ संभोग करना। (गीताप्रेस, धर्मशास्त्र विशेषांक, पृ० ५४-५५)

टिप्पणी—स्कन्दपुराण में भी अधर्म की उपरोक्त सूची लगभग ऐसी ही है। मनुस्मृति, अध्याय १२-५, ६, ७ में भी पापों की यही सूची है।

भविष्यपुराण में व्यासजी ने इन पापों की सूची इस प्रकार दी है—

मानसिक पाप—१. परस्त्री चिन्तन, २. दूसरे का अनिष्ट चिन्तन, ३ कुकर्म।

वाचिक पाप—४. प्रलाप, ५. कटुवचन, ६. असत्य, ७. परनिन्दा, ८ पिशुनता (चुगली)।

कायिक पाप ९ अभक्ष भक्षण १० हिंसा ११ मिथ्या कामसेवन १२ परधन-हरण (भविष्यपुराण उत्तर पर्व, ४-६७)

उपरोक्त में परनिन्दा और पिशुनता को अलग-अलग कहा है जबकि गौतम ने इन्हें एक ही श्रेणी में रखा है। व्यासजी ने कायिक पाप में अभक्ष्य का भक्षण भी जोड़ दिया है।

अत: हम देखते हैं कि बौद्धधर्म में सम्यक दृष्टि संकल्प, वाचा, कर्मान्त, आजीव, व्यायाम, स्मृति, समाधि और मज्झिम निकाय में कुशल और अकुशल कर्मों की जो सूची दी गई है वह न्यायदर्शन के प्रणेता गौतम तथा स्कन्दपुराण और भविष्यपुराण आदि में दी गई सूची से भिन्न नहीं है।

२. सम्यक संकल्प

राग, हिसा, प्रतिहिंसा रहित संकल्प को सम्यक (ठीक) संकल्प कहते है।

जिस प्रकार बौद्धधर्म में सम्यक संकल्प (ठीक निश्चय) को निर्वाण का साधन माना गया है उसी प्रकार सनातनधर्म में भी सम्यक संकल्प (रागद्वेष, हिंसा और प्रतिहिंसा रहित संकल्प को मोक्ष का साधन माना गया है। सनातनधर्म केवल रागद्वेष, हिंसा और प्रतिहिंसा का त्याग करना ही नहीं अपितु इनके त्याग का उपाय इन्द्रियनिग्रह भी बताता है—

इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च।
अहिंसया च भूतानाममृततत्त्वाय कल्पते ॥ (मनु० ६-६०)

अर्थात इन्द्रियों के नियन्त्रण से और राग-द्वेष के त्याग तथा प्राणियों के प्रति अहिंसा भाव रखने से संन्यासी मोक्ष को प्राप्त करता है।

प्रतिहिंसा का त्याग भी करने को कहा गया है—

क्रुद्ध्यन्तं न प्रतिक्रुद्ध्येदा क्रुष्टः कुशलं वदेत्। (मनु० ६-४८)

क्रोधभरे मनुष्य का जवाब क्रोधित होकर न दे और यदि कोई निन्दा करे तो भी भद्र वचन ही कहे।

शील

३. सम्यक वचन

झूठ, चुगली, कटु वचन और बकवाद से रहित वचन को सम्यक वचन कहते हैं।

उपरोक्त चारों बातों को सनातनधर्म में भी फल देने वाला बताया गया है—

पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चापि सर्वशः।
असंबद्ध प्रलापश्च वाङ्मयंस्याच्चतुर्विधम्॥ (मनु० १२-६)

अर्थात कठोर और असत्य वचन बोलना, चुगली करना और व्यर्थ बात करना, ये चार प्रकार के अशुभ फल देने वाले वाणी के दोष कहे गये हैं अतः इन दोषों से रहित वाणी बोलना चाहिये।

महाभारत में इसका धनात्मक गुण बताया गया है अर्थात व्यर्थ न बोलना, सत्य बोलना, प्रिय बोलना, धर्मसम्मत बोलना सम्यक वचन के लक्षण हैं—

अव्याहृतं व्याहृताच्छ्रेयः आहुः सत्यं वदेद व्याहृतं तद् द्वितीयम्।
वदेद व्याहृतं तत तृतीय प्रियं धर्मंवदेद व्याहृतं तत्चतुर्थम्॥

(महाभारत, शान्तिपर्व, २९९/३८)

अर्थात व्यर्थ बोलने की अपेक्षा मौन रहना अच्छा बताया गया है। यह वाणी की प्रथम विशेषता है। सत्य बोलना वाणी की दूसरी विशेषता है। प्रिय बोलना वाणी की तीसरी विशेषता है। धर्मसम्मत बोलना वाणी की चौथी विशेषता है। इसमे उत्तरोत्तर श्रेष्ठता है।

४. सम्यक कर्मान्त

हिंसा, चोरी, व्यभिचाररहित कर्म ही ठीक कर्म हैं।

(बौद्धदर्शन, राहुल सांकृत्यायन)

सनातनधर्म भी इसी प्रकार हिंसा, चोरी और व्यभिचार से रहित कार्य जो सबके लिये कल्याणकारक और मंगलमय हो करने की शिक्षा देता है।

नीचे स्पष्ट रूप में हिंसा, चोरी, और व्यभिचार से दूर रहने की शिक्षा देखिये—

न हिंस्यात सर्व भूतानि नानृतं वा वदेत क्वचित्।
न हितं न प्रियं वाच्यं न स्तेन स्यात कदाचन॥

अर्थात किसी जीव की हत्या न करें, न कभी झूठ बोलें न अहित करें न अप्रिय बोलें न कभी चोरी करें, क्योंकि तृण अथवा शाक वा मिट्टी या जल भी दूसरे का हरण करने वाला नर्क में पड़ता है।

पुनश्च **अदत्ता नामुपादानं हिंसा चैव विधानतः।**
परदारोप सेवा च शरीरं त्रिविधं स्मृतम्॥

अर्थात न दी हुई वस्तु को बलपूर्वक ले लेना, बिना विधान के हिंसा करना और परस्त्री का सेवन ये तीन प्रकार के शारीरिक दुष्कर्म हैं।

५. सम्यक आजीव

सच्ची जीविका का अर्थ ऐसे पेशे को अपनाने से है जिससे न तो किसी को कष्ट पहुँचे और न कोई हिंसा हो। बौद्धधर्म की पुस्तकों—अंगुत्तरनिकाय और दीर्घनिकाय में इसका सम्यक वर्णन है। अंगुत्तरनिकाय में पाँच प्रकार की जीविकाओं का निषेध है यथा–१. शस्त्र वणिज्जा अर्थात हथियार का व्यापार,

२ सत्त वणिज्जा (प्राणी का व्यापार) ३ मस वणिज्या अर्थात मास का व्यापार ४ मज्ज वणिज्जा अर्थात मद्‌य या शराब का व्यापार, ५. विष वणिज्जा अर्थात विष का व्यापार।

पुनश्च, दीर्घनिकाय के लक्खण सुत्त में निम्न जीविकायें भी वर्ज्य हैं—

१. तराजू की ठगी, २. बटखरे (कंस) की ठगी, ३. मान (नाप) की ठगी, ४. रिश्वत, ५. वंचना, ६. कृतघ्नता, ७. कुटिलता, ८. छेदन, ९. वध, १० बन्धन, ११. डाका, १२. लूटपाट की जीविका।

सनातनधर्म भी हिंसापूर्ण और अन्यायपूर्ण जीविका अपनाने की स्वीकृति नही देता है—

अन्यायोपार्जिते नैव द्रव्येण सुकृतं कृतम्।
न कीर्ति रिह लोके च परलोके न तत्फलम्॥ (देवी भागवत)

अर्थात अन्याय से उपार्जित धन द्वारा जो पुण्य कार्य किया जाता है वह न तो इस लोक में कीर्ति दे सकता है और न परलोक में ही उसका कुछ फल मिल सकता है।

१. शस्त्र वणिज्जा (शस्त्र का व्यापार)—सनातनधर्म में शस्त्र बेचने वाले का सामाजिक बहिष्कार करने को कहा गया है। उसके अन्न (भोजन को) मल बताकर निन्दा की गई है—

शस्त्र विक्रयिणो मलम्। (मनु० ४-२२०)

२. मंस वणिज्जा (मांस का व्यापार)—

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्ता चोप हर्ता च खादकश्चेति घातकाः॥ (मनु० ५-५१)

अर्थात (पशु को) मारने की आज्ञा देने वाला, मारने वाला, उसके खण्ड-खण्ड करने वाला, बेचने और मोल लेने वाला, पकाने वाला, परोसने वाला और खाने वाला—ये आठों घातक हैं।

टिप्पणी—मांस के व्यापार का मूल मांस खाने की प्रथा है। सनातनधर्म इस मांस खाने की प्रथा का ही उन्मूलन करके मांस के व्यापार को बन्द करने की स्थायी व्यवस्था करता है—

समुत्पत्तिं च मांसस्य वधबन्धौ च देहिनाम्।
प्रसमीक्ष्य निवर्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात्॥ (मनु० ५-४९)

अर्थात मांस की उत्पत्ति को और जीवों के वध बन्धन को अच्छी तरह सोचकर सब प्रकार के मांस-भक्षण को त्याग देना चाहिये।

३. सत्त वणिज्जा—प्राणी का व्यापार—

अरण्यांश्च पशून् सर्वान् दंष्ट्रिणश्च वयांसि च।
मद्यं नीलिं च लाक्षां च सर्वांश्चैकशफांस्तथा॥ (मनु० १०-८८)

अर्थात सभी प्रकार के जंगल में रहने वाले जानवर, दाढ़ वाले जानवर, ो, मदिरा, नील, लाख (लाह) और जिन पशुओं का खुर जुटा हो उन्हें न बेचे।

४. विष वणिज्जा—अर्थात सभी प्रकार के जहरीले पदार्थों का व्यापार।

५. मज्ज वणिज्जा—मद्य या शराब का व्यापार—मनु० ४-२१६ में मदिरा ाने वाले का अन्न न खाने को कहा गया है अर्थात उसे पापी कहा गया है और ाका सामाजिक बहिष्कार करने को कहा गया है।

द्यूतं समाह्वयं चैव राजा राष्ट्रान्निवारयेत्।
राज्यान्तकरणावेतौ द्वौ दोषौ पृथिवीक्षिताम्॥ (मनु० ९-२२०)

अर्थात राजा अपने राज्य में जुआ और समाह्वय (तीतर, बटेर, भेड़ा आदि बाजी लगा कर खेलना) दोनों न होने दे क्योंकि ये दोनों राजाओं के राज्य का त कर देते हैं।

द्यूत और समाह्वय पर रोक

पुनश्च **द्यूतं समाह्वयं चैव यः कुर्यात्कारयेत वा।**
तान्सर्वान्घातयेद्राजा शूद्रांश्च द्विजलिङ्गनीः॥ (मनु० ९-२२३)

जो स्वयं द्यूत या समाह्वय करे या दूसरे से कराये उन सभी को राजा कठोर ड दे।

पुनश्च- मनु० ९-२२५ में जुआरी और मदिरा बेचने वाले को राज्य से ाालने का विधान है।

तुला-वट खरे आदि की ठगी—

तुलमान प्रतीमान सर्व एव स्यात्सुरक्षितम्।
षट्सु षट्सु च मासेषु पुनरेवपरीक्षयेत्॥ (मनु० ८-४०२)

अर्थात सोना तौलने का तोला, मासा और रत्ती आदि तथा अनाज तौलने सेर, पसेरी आदि बटखरे वजन में पूरे हैं या नहीं, राजा प्रति छठे मास जाँच या करे।

वस्तुओं के भाव निश्चित करना—

पञ्चरात्रे पञ्चरात्रे पक्षे पक्षेऽथवा गते।
कुर्वीत चैषां प्रत्यक्षमर्घसंस्थापनं नृपः॥ (मनु० ८-४०१)

अर्थात पाँच-पाँच दिन पीछे या एक-एक पक्ष पर व्यापारियों की वस्तुओं दर का निश्चय किया करें। घूस, ठगी आदि की भी सनातनधर्म निन्दा करता उसे पाप मानता है—

उत्कोचकाश्चोपधिका पञ्चकाः कितवास्तथा।
मङ्गला देशवृत्ताश्च भद्राश्चेक्षणिकैः सह॥ (मनु० ९-२५७)

अर्थात घूस लेने वाले, डराकर धन लेने वाले, ठग, जुआरी, दूसरों के मगल कामना से तथा पाप को छिपाकर साधुवेष में जीविका वाले चोर ही हैं।

उपरोक्त कर्म करने वालों को प्रत्यक्ष चोर सनातनधर्म में माना गया है तथा चोरों को गुप्त चोर।

प्रकाशवञ्चकास्तेषां नाम पण्योपजीविनः।
प्रच्छन्नवञ्चकास्त्वेते ये स्तेनाऽटविकादयः ॥ (मनु० ९-२५६)

अर्थात जो बेचने की अनेक वस्तुओं के मूल्य या तौल आदि में ठगे वे प्रत्यक्ष वंचक हैं—और जो सेंध लगाकर चोरी करें अथवा जंगल में रहकर पराया धन हरें उन्हें गुप्त वंचक जानना चाहिये।

इस प्रकार बौद्धधर्म और सनातन हिन्दूधर्म में सम्यक आजीव पर समान रूप से विचार प्रकट किए गए हैं।

५. सम्यक व्यायाम

व्यायाम का अर्थ है प्रयत्न अर्थात सत्कर्मों को करने की भावना के लिये प्रयत्न करते रहना चाहिये। मन में बुरी भावनाओं को आने से रोकना चाहिये। इन्द्रियाँ मन को क्षुब्ध करती रहती हैं अतः इन पर अंकुश लगाकर इन्हें सत्कर्मों मे लगाना चाहिए।

सनातनधर्म में भी अच्छी भावनाओं को करने का प्रयत्न करते रहने का विधान है। तैत्तरीय उपनिषद में कहा गया है कि "मनुष्य मन से जो विचार करता है वही वाणी से बोलता है। जो वाणी से बोलता है वही कर्म करता है।"

अतः मन में निम्न बुरी भावनायें नहीं आने देना चाहिये—

परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसाऽनिष्टचिन्तनम्।
वितथाभिनिवेषश्च त्रिविधं कर्म मानसम् ॥ (मनु० १२-५)

अर्थात दूसरे का धन लेने की बात, मन में दूसरे के अनिष्ट का चिन्तन करना, मिथ्या अभिनिवेश (स्वर्ग नहीं है जो कुछ है वह शरीर ही है) करना यह तीन प्रकार के मानस भाव अशुभ फल देने वाले हैं अतः ऐसे भाव मन में नहीं आने देना चाहिये।

बुरी भावनायें इन्द्रियों के प्रसङ्ग से ही आती हैं—

इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन धर्मस्यावनेन च।
पापान संयान्ति संसारानविद्वांसो नराधमाः ॥ (मनु०१२-५२)

अर्थात इन्द्रियों के प्रसङ्ग से और धर्म का आचरण न करने से मूर्ख अधम मनुष्य इस संसार में पाप योनि को प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार सम्यक व्यायाम सम्बन्धी चारों प्रकार के सम्यक प्रयत्न यथा (१) ग्रहण की हुई बुरी आदत को छोड़ना, (२) न ग्रहण की हुई बुरी आदतों

को उत्पन्न न होने देना, (३) न ग्रहण की हुई अच्छी आदतों को ग्रहण करना, (४) ग्रहण की हुई अच्छी आदतों को कायम रखना सनातन हिन्दूधर्म को पूरी तरह स्वीकृत है। यह उसकी मुख्य शिक्षा भी है।

७. सम्यक स्मृति

इसका वर्णन दीर्घनिकाय के महासति पठान सुत्त में मिलता है (२/९)। स्मृति के चार भेद हैं—१. कायानुपश्यना, २. वेदनानुपश्यना, ३. चित्तानुपश्यना, ४ धर्मानुपश्यना।

अर्थात काया, वेदना, चित्त तथा धर्म के वास्तविक स्वरूप को जानना तथा उसकी स्मृति सदा बनाये रखना सम्यक स्मृति है।

सनातनधर्म में सम्यक स्मृति

कायानुपश्यना—

अस्थिस्थूणं स्नायुयुतं मांसशोणितलेपनम्।
चर्मावनद्धं दुर्गन्धिपूर्णं मूत्रपुरीषयोः ॥ (मनु० ६-७५)
जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम्।
रजस्वलमनित्यञ्चभूतावासमिमं त्यजेत् ॥ (मनु० ६-७६)

अर्थात हड्डी के खम्भे वाली, स्नायुओं (नसों से युक्त) मांस और रुधिर से लेपी हुई, चमड़े से ढकी हुई, मल-मूत्र की थैली (भरी हुई) दुर्गन्धयुक्त जरा और शोक से आक्रान्त, रोगों का घर, भूख-प्यास से व्याकुल, भोगाभिलाषी और क्षणभंगुर शरीर को जो पंचभूतों का निवासस्थान है, का मोह त्याग ही देना चाहिए क्योंकि बिना शरीर का मोह त्यागे हुए मुक्ति संभव नहीं है—

नदीकूलं यथा वृक्षो वृक्षं वा शकुनिर्यथा।
तथा त्यजन्निमं देहं कृच्छ्राद्ग्राहाद्विमुच्यते ॥ (मनु० ६-७७)

अर्थात जैसे वृक्ष नदी के किनारे को त्याग देता है। और जैसे पक्षी वृक्ष को त्याग देता है वैसे संन्यासी निवृत्ति मार्ग वाला मनुष्य (भिक्षु) इस देह को अर्थात इसके मोह का त्याग कर सांसारिक दुख रूप ग्राह से मुक्त हो जाता है।

सनातनधर्म में वेदानुपश्यना

चित्त की नाना अवस्थायें होती हैं। कभी वह सराग होता है कभी निराग, कभी सदोष कभी वीतद्वेषः; कभी समोह तथा कभी वीत मोह (बौ०द०मी०, पृ० ६८)। उपरोक्त को जानने वाला व्यक्ति वेदानुपश्यी कहलाता है। सनातनधर्म में भी मन की इन गतियों को जानते रहने अर्थात राग, विराग, सदोष, वीतद्वेष, समोह तथा विमोह को जान कर राग, द्वेष, मोह को त्याग कर विराग, वीतद्वेष, और निर्मोह धारणा को कहा गया है।

भगवान कृष्ण उद्धव से कहते हैं

इन्द्रियों और प्राणों को अपने वश में रक्खे और मन को एक क्षण भी स्वतन्त्र न छोड़े। उसकी एक-एक चाल एक-एक हरकत (गतिविधि) को देखता रहे। इस प्रकार सत्त्वसम्पन्न बुद्धि के द्वारा धीरे-धीरे मन को अपने वश मे कर लेना चाहिए। (श्रीमद्‌भागवत, ११-२०-२०)

भगवान गीता में भी राग-द्वेष और मोह का त्याग कर स्थितप्रज्ञ (शान्तचित्त वाला) बनने के लिये कहते हैं—

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ (गीता २-५६)
यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ (गीता २-५७)

अर्थात दुःखों की प्राप्ति में उद्वेग रहित है मन जिसका और सुखों की प्राप्ति में दूर हो गई हैं स्पृहा जिसकी तथा नष्ट हो गये हैं राग, भय और क्रोध जिसके ऐसा मुनि स्थिर बुद्धि वाला कहा जाता है।

सनातनधर्म में धर्मानुपश्यना

श्री बलदेव उपाध्याय जी लिखते हैं, धर्म भी नाना प्रकार के हैं नीवरण-कामच्छन्द = (कामुकता), व्यापाद (द्रोह) स्त्यानमृद्ध शरीर मन की अलसता, औद्धत्य-कौकृत्य (उद्वेग-खेद) तथा विक्तिसा (संशय) सृकन्ध ३ आयतन ४ वोध्यंगः ५ आर्य चतुसत्य। इनके स्वरूप को ठीक-ठीक जानकर उनको उसी रूप में जानने वाला पुरुष धर्म में धर्मानुपश्यी कहलाता है।

(बलदेव उपाध्याय, बौद्धदर्शन मीमांसा, पृ० ६८)

नीवरणा कामुमकता

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥ (गीता १६-२१)

अर्थात काम, क्रोध तथा लोभ यह तीन प्रकार के नरक के द्वार आत्मा का नाश करने वाले हैं इससे इन तीनों को त्याग देना चाहिये।

आलस्य—आलस्य को गीता में तामस गुण माना गया है-

विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते॥ (गीता १८-२८)

द्रोह पर द्रोह सनातनधर्म में खल का गुण बताया गया है उसे त्याज्य कहा गया है—

बहुरि वन्दि खल गन सति भायें।
जे बिनु काज दाहिने बायें॥
पर हित हानि लाभ जिन केरे।
उजरें हर्ष विषाद बसेरे॥

अर्थात तुलसीदासजी कहते हैं कि अब मैं दुष्टों (अधर्मियों) को प्रणाम करता हूँ जो बिना प्रयोजन के अपना हित करनेवाले के भी प्रतिकूल आचरण करते हैं। दूसरों के हित की हानि ही जिनकी दृष्टि में लाभ है जिनको दूसरों के उजड़ने में हर्ष और बसने में विषाद होता है।

सनातनधर्म में अकर्मण्यता और आलस्य की निन्दा की गई है।

अव्यवस्थित चित्त वाले की भी सनातनधर्म में निन्दा की गई है। उसकी प्रसन्नता को भी भयंकर कहा गया है—

अव्यवस्थित चितानाम् प्रसादोपि भयङ्कर॥

कौकृत्य का अर्थखेद या पश्चात्ताप है।

किये गये बुरे कर्म के प्रति पश्चात्ताप करने और फिर वैसा न करने की प्रतिज्ञा करना पश्चात्ताप कहलाता है।

पश्चाताप किए पुनि पापा। उपजत नहिं वासना प्रतापा॥

(रामचरितमानस)

विचिक्तिसा—संशय को सर्प दंश की उपमा दी गई है यह व्यक्ति का नाश कर देता है। रामचरितमानस में गरुड़जी कागभुसुंडी से इसे दूर करने की प्रार्थना करते हैं—

संशय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता।

उपरोक्त नीवरणों के नाश से समाधि का लाभ होता है। और समाधि के पाँच अङ्गों वितर्क, विचार, प्रीति, सुख और एकाग्रता का लाभ होता है। लगभग इसी प्रकार वर्णन योगसूत्र में भी है।

विर्तक विचारा नन्दास्भितानु गमात सम्प्रज्ञातः॥ १७॥

८. सम्यक समाधि

समाधि का अर्थ है चित्त की एकाग्रता अथवा एक आलम्बन पर चित्त और चैनसिक धर्मों की प्रतिष्ठा। समाधि के मुख्य रूप से दो भेद हैं—१. लौकिक समाधि, २. लोकोत्तर समाधि। इन्हीं उपरोक्त दोनों समाधियों को क्रमशः शमथ और विपश्यना कहते हैं।

समथ का अर्थ है चित्त की एकाग्रता समथाहि चित्तेक्रागता

परन्तु चित्त तब तक एकाग्र नहीं हो सकता जब तक पाँच नीवरणों अर्थात काम छन्द (विषयों में अनुराग), व्यापाद (द्रोह), स्त्यान मिद्ध (चित्त की अकर्मण्या, आलस्य), औद्धत्य कौकृत्य (अव्यवस्थित चित्त, पश्चात्ताप), विचिक्तिसा (संशय) का अभाव नहीं हो जाता।

उपरोक्त सभी समाधि के मार्ग में बाधक हैं अतः इनके निवारण पर ही समाधि लग सकती है। चित्त एक आलम्बन पर टिक सकता है। पाँचों नीवरणों

र विजय से विशिष्ट ज्ञान की प्राप्ति होती है कि सब अनित्य है सब दु ख है अनात्म है। ऐसी अवस्था में विपश्यना का प्रादुर्भाव होता है।

इस प्रकार जब साधक के राग-द्वेष और मोह रूप चित्त मल दूर हो जाते ैं, तब प्रज्ञा का उदय होता है। और तब मनुष्य को पिंड-ब्रह्माण्ड के यथार्थ रहस्य और अनित्य, दुःख, अनात्म का ज्ञान होता है। प्रज्ञा के उदय पर तृष्णा का मूलोच्छेदन हो जाता है और जरा, जन्म, मरण से साधक छुटकारा पा जाता है।

(बौद्धचर्या पद्धति)

सम्यक व्यायाम और सम्यक स्मृति का सेवन करना, भावना करना और बढ़ाना सम्यक समाधि है। (बौद्धों की हस्त पुस्तक, पृ० ६१)

धर्म के दस तत्व बौद्धधर्म में भी स्वीकृत

सनातन धर्म के दस लक्षण बौद्ध धर्म में भी स्वीकृत हैं—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमऽक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

उपरोक्त दसो अङ्गों में से सत्य और अस्तेय तो बौद्धधर्म के पंचशील में प्रतिष्ठित हैं शेष आठ भी अन्य स्थलों पर पाये जाते हैं—

१. धृति या धैर्य—

जिह्वोपस्थ जयो धृतिः (भागवत)

अर्थात जिह्वा और जनेन्द्रियों का संयम ही धैर्य है जो धैर्य को धारण करता है वह धीर कहलाता है।

बौद्धधर्म में धृति (धैर्य)

असुभानुपस्सि विहरन्तं इन्द्रियेसु सुसंव्रतं।
भोजनम्हि च मत्तञ्ञुं सद्धं आरद्धवीरियं।

(धम्मपद, यमकवग्गो, ८)

अर्थात अशुभ = रूप की कुरूपता या कायगता स्मृति रखने वाले, इन्द्रियों में संयत, भोजन में मात्रा जानने वाले, श्रद्धावान, और उद्योगी पुरुष को मार वैसे ही नहीं ठिगा सकता है, जैसे वायु हिमालय पर्वत को

पुनश्च **सेलो यथा एकधनो वातेन न समीरति।**
एवं निन्दापसंसासु न समिञ्जन्ति पण्डिता॥

(धम्मपद, पंडितवग्गो, ६)

अर्थात जैसे ठोस पहाड़ हवा से नहीं डिगता, वैसे ही पंडित निन्दा और प्रशसा से नहीं डिगते। अर्थात न निन्दा से दुखी न प्रशंसा से प्रफुल्लित होता है।

२. क्षमा—किसी के दुर्व्यवहार करने पर भी उसका बदला लेने की भावना न करना क्षमा है।

क्षमाशीलता को बौद्धधर्म में तप माना गया है अर्थात हृदय को पापरहित बनाने वाला—

खन्ती परमं तपो तितिक्खा। (धम्मपद, बुद्धवग्गो, ६)

अर्थात क्षमा शीलता परम तप है।

३. दम—इन्द्रियनिग्रह को दम कहते हैं।

इन्द्रियाणां जयो लोके दम इत्यभिधीयते।

अर्थात (इस लोक में) इन्द्रियों के ऊपर विजय प्राप्त करने को दम कहते हैं।

बौद्धधर्म में भी इस इन्द्रियदमन या दम का बड़ा महत्त्व बताया गया है। भगवान गौतम बुद्ध कहते हैं—

यस्सिन्द्रियानि समथं गतानि,
अस्सा यथा सारथिना सुदन्ता।
पहीनमानस्स अनासवस्स,
देवापि तस्स पिहयन्ति तादिनो।

(धम्मपद, अरहन्तवग्गो, ५)

अर्थात सारथी द्वारा दमन किये गये अश्व के समान जिसकी इन्द्रियाँ शान्त हो गई हैं, वैसे अहंकाररहित अनाश्रव सन्त (= अर्हंत) की देवता भी स्पृहा (चाह) करते हैं।

४. अस्तेय—बौद्धधर्म के पंचशील का तीसरा स्तम्भ है।

५. शौच—सनातनधर्म में शौच (स्वच्छता) दो प्रकार की मानी गई है—

१. शारीरिक, २. मानसिक

अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनःसत्येन शुद्ध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति॥ (मनु०, ५-११२)

अर्थात जल के द्वारा शरीर शुद्ध होता है। सत्य वचन से मन शुद्ध होता है ब्रह्मविद्या एवं तप के द्वारा जीवात्मा की शुद्धि होती है और ज्ञान के द्वारा बुद्धि शुद्ध होती है।

टिप्पणी—बौद्धधर्म में शरीर और मन (जीव) दोनों की सफाई पर ध्यान दिया जाता है।

शारीरिक शौच—भगवान बुद्ध स्वयं भी साधना काल में नित्य नैरंजना नदी में स्नान करते थे। (शरीर शुद्धि हेतु)

मानसिक शौच—

अनुपुब्बेन मेधावी थोकथोकं खणे खणे।
कम्मारो रजतस्सेव निद्धमे मलमत्तनो॥

(धम्मपद, मलवग्गो, ५)

अर्थात सोनार जैसे चाँदी के मैल को क्रमशः क्षण-क्षण थोड़ा-थोड़ा जलाकर साफ करता है, वैसे ही बुद्धिमान पुरुष अपने मल को क्रमशः दूर करे।

पुनश्च, स्त्री का मल दुराचार है, दानी का मल कंजूसी है। पाप इस लोक और परलोक दोनों का मैल है अतः स्त्री-पुरुष को सदाचार का पालन करके

दुराचार को हटाकर पवित्र और शुद्ध हो जाना चाहिये। कंजूसी छोड़ देने से दानी शुद्ध हो जाता है। पाप-कर्म छोड़ देने से मनुष्य इस लोक और परलोक दोनों स्थान पर पवित्र हो जाता है।

मलित्थिया दुच्चरितं मच्छेरं ददतो मलं।
मला वे पापका धम्मा अस्मिं लोके परम्हि च॥

(धम्मपद, मलवग्गो, ८)

भगवान गौतम बुद्ध की दृष्टि में सबसे बड़ा मल अविद्या है—

ततो मला मलतरं अविज्जा परमं मलं।
एतं मलं पहत्वान निम्मला होथ भिक्खवो ॥ (वही, ९)

अर्थात उससे भी बढ़कर अविद्या परम मल है। भिक्षुओ! इस मल को छोड़कर निर्मल बनो।

६. इन्द्रियनिग्रह—कुशल सारथी के समान इन्द्रियों को अपने वश में रखना इन्द्रिय निग्रह है—

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्व पहारिषु।
संयमे यत्नमातिष्ठेद्वि दान्यन्ते नैव वाजिनाम्॥ (मनु०)

अर्थात विषयों में विचरण करने वाली इन्द्रियों को कुशल सारथी के समान प्रयत्नपूर्वक अपने वश में रखे अर्थात जैसे कुशल सारथी रथ के घोड़ों को मार्ग नहीं छोडने देता है उसी प्रकार व्यक्ति अपनी इन्द्रियों को विषयों की ओर जाने से रोके, क्योंकि एक इन्द्रिय के विषय में आसक्त होने से मनुष्य की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है—

इन्द्रियाणां तु सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम्।
तेनास्य क्षरति प्रज्ञा दृतेः पादादिवोदकम्॥

अर्थात जैसे जल के बर्तन में छिद्र होने के कारण उसका जल बह जाता है, वैसे ही सब इन्द्रियों में से यदि एक इन्द्रिय भी विषय में आसक्त हुई तो मनुष्य की बुद्धि नष्ट हो जाती है।

यह कहना बहुत उपयुक्त है कि इन्द्रियाँ (मन को मथ कर) विद्वान के मन को भी हर लेती है।

इन्द्रियाणी प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः। (गीता, २-६०)

अतः धर्म-मार्ग पर चलने के लिये इन्द्रियनिग्रह (इन्द्रियों को काबू में रखना) आवश्यक है।

बौद्धधर्म में इन्द्रियनिग्रह—

बौद्धधर्म में इन्द्रियनिग्रह को सम्पूर्ण दुःखों से मुक्ति का साधन माना गया है—

कायेन सवरो साधु, साधु वाचाय संवरो
मनसा संवरो साधु, साधु सब्बत्थ संवरो।
सब्बत्थ संवुतो भिक्षु सब्ब दुक्खाण मुच्चति॥

(धम्मपद, भिक्खुवग्गो, २)

अर्थात शरीर का संयम भला है, वचन का संवर (संयम) भला है, मन का संयम भला है, भला है सर्वत्र इन्द्रियों का निग्रह (सर्वत्र अर्थात सभी इन्द्रियों का संयम) करने वाला भिक्षु दुःखों से मुक्त हो जाता है।

पुनश्च-**उट्ठानेनप्पमादेन संचमेन दमेन च।**
दीपं कयिराथ मेधावी यं ओघो नाभिकीरति॥

(धम्मपद, अप्पमादवग्गो, ५)

अर्थात मेधावी पुरुष उद्योग, अप्रमाद, संयम और दम (इन्द्रियदमन) द्वारा अपने लिये ऐसा द्वीप बनाये, जिसे बाढ़ नहीं डुबा सके।

७. धीर—मन में विकार का कारण उपस्थित होने पर जो विचलित नहीं होता उसे धीर कहा गया है—

विकार हेतौ सति विक्रियन्ते।
येषाम न चेतांसि त एव धीराः॥ (कुमारसम्भव, कालिदास)

अर्थात मन में कारण उपस्थित होने पर जो विचलित न हो वे धीर हैं।

बौद्धधर्म में भी धीर व्यक्ति की ऐसी ही परिभाषा दी गई है, उसे उत्तम और दुर्लभ बताया गया है—

दुल्लभो पुरिसाजञ्ञो न सो सब्बत्थ जायति।
यत्थ सो जायति धीरो तं कुलं सुखमेधति॥

(धम्मपद, बुद्धवग्गो, १५)

८. विद्या—जिससे पदार्थों के यथार्थ का ज्ञान हो वह विद्या कही जाती है और जिससे तत्स्वरूप न जान पड़े, अन्य में अन्य बुद्धि होवे वह अविद्या है।

विद्यां चाऽविद्यां च यस्त द्वेदो भयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते॥

(यजु० अ० ४०/मं १४)

अर्थात जो मनुष्य विद्या और अविद्या के स्वरूप को जानता है वह अविद्यारूपी मृत्यु को तर कर अमृत पद को प्राप्त करता है।

९. सत्य—सत्य बौद्धधर्म के 'शील' (पंचशील) का दूसरा स्तम्भ है।

१०. अक्रोध—उपनिषदों के साररूप भगवतगीता में काम और क्रोध को नरक का द्वार माना गया है।

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।

अतः व्यक्ति को क्रोध नहीं करना चाहिए, क्योंकि ये (काम और क्रोध) रजोगुण से उत्पन्न होते हैं।

बौद्धधर्म में अक्रोध—भगवान बुद्ध उसी को सच्चा धर्मात्मा या भिक्षु कहते हैं जो चढ़ते हुए क्रोध को रोक लेता है।

यो वे उप्पतितं क्रोधं रथ भन्तं व धारये।
तमहं सारथिं ब्रूमि, रस्मिग्गाहो इतरो जनो॥'

(धम्मपद, कोधवग्गो, २)

अर्थात जो चढ़े क्रोध को भ्रमण करते रथ की भाँति रोक लेता है, उसी को मैं सारथी कहता हूँ, दूसरे तो केवल लगाम पकड़ने वाले हैं।

वह अक्रोध से क्रोध को जीतने की शिक्षा देते हैं—

अक्कोधेन जिने कोधं असाधुं साधुना जिने।
जिने कदरियं दानेन सच्चेनालीक वादिन॥

(धम्मपद, कोधवग्गो, ३)

अर्थात अक्रोध से क्रोध को जीते, असाधु (बुरे को) भलाई (साधुता) से जीते, कंजूस को दान से जीते, झूठ बोलने वाले को सत्य से जीते।

✤

संस्कार

जिस प्रकार कोई अध्यापक श्यामपट्ट पर लिखे पुराने लेख का मिटाकर नया लेख लिखता है, उसी प्रकार पंडितजन बालकों के मन-पटल पर पड़े पुराने कुसस्कारों (पापों के छाप) को मिटाने और नये शुभ कर्मों की छाप डालने हेतु जो कर्मकाण्ड करते हैं उसे संस्कार कहते हैं।

संस्कार दो प्रकार के होते हैं—

(१) मलापनयन (२) अतिशयाधान

मलापनयन

किसी दर्पण या श्यामपट्ट आदि पर पड़ी हुई धूल या श्यामपट्ट पर लिखी हुई लिखावट आदि को कपड़े आदि से पोंछ कर स्वच्छ करना मलापनयन है।

अतिशयाधान

शीशे या श्यामपट्ट आदि को स्वच्छ करने के बाद उस पर कोई नया चमकदार रंग चढ़ाना या श्यामपट्ट पर पॉलिश लगाकर चमकाना अतिशयाधान है।

महर्षि व्यास ने अपनी स्मृति में सोलह संस्कारों का वर्णन किया है—

१. गर्भाधान, २. पुंसवन, ३. सीमन्तोन्नयन, ४. जातकर्म, ५. नामकरण ६ निष्क्रमण, ७. अन्नप्राशन, ८. चूर्णकरण, या ९. मुण्डन, १०. कर्णवेध, ११ व्रतादेश (उपनयन), १२. वेदारम्भ, १३. केशान्त (गोदान), १४. वेदस्नान या समावर्तन, १५. विवाह, विवाहग्नि परिग्रहण, १६. प्रेताग्नि संग्रह।

(व्यास स्मृति १/१३-१५)

गर्भाधान संस्कार—जिस प्रकार अच्छे बीज और अच्छे खेत के होने पर ही अच्छी फसल तैयार होती है, उसी प्रकार अच्छे स्त्री-पुरुष से ही अच्छी (धर्मात्मा) संतान पैदा होती है।

भगवान राम महान धर्मात्मा हुए क्योंकि उनके माता-पिता भी धर्मात्मा थे। वशिष्ठजी यही बात राजा दशरथ को समझाते हुए कहते हैं—

तुम गुरु बिप्र धेनु सुर सेवी। तस तुम्हार कौशल्या देवी॥

अतः व्यक्ति को चाहिये कि वह और उसकी स्त्री किसी सन्तान को पैदा करने के पूर्व स्वयं अपने को स्वस्थ और सदाचारी (धर्मात्मा) बनाने की चेष्टा करें। क्योंकि पुत्र उत्पन्न करने अर्थात गर्भाधान के समय उन स्त्री-पुरुषो का

ैसा आहार, व्यवहार तथा चेष्टा और भाव होंगे वैसी ही सन्तान होगी। महान ाल्य चिकित्सक सुश्रुत की यही सम्मति है—

आहाराचार चेष्टाभियादृशीभिः समन्वितौ।
स्त्री पुंसौ समुपेयातां तयोः पुत्रोऽपितादृशः॥

(सश्रुत संहिता, शरीर स्थान, २/४६/५०)

अर्थात स्त्री और पुरुष जैसे आहार, व्यवहार तथा चेष्टा से संयुक्त होकर परस्पर समागम करते हैं, उनका पुत्र भी वैसा ही स्वभाव का होता है।

सनातनधर्म के व्यक्ति जिस अनुष्ठान में उत्तम पुत्र पैदा करने की कामना से स्वस्थ और सदाचारी बनने का संकल्प लेते हैं उसे गर्भाधान संस्कार कहते हैं।

गर्भाधान से पूर्व स्त्री को गर्भधारण योग्य (पुष्ट) बनाने की प्रार्थना की जाती है—

गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि पृथुष्टुके।
गर्भंते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्कर स्त्रजौ॥

(वृहदारण्यकोपनिषद ६/४/२१)

पुंसवन संस्कार—इस संस्कार को पुंसवन इसलिये कहते हैं क्योंकि यह पुत्र की कामना से किया जाता है।

जब गर्भ तीन मास का हो जाय अथवा गर्भिणी में गर्भ के चिह्न स्पष्ट हो जायें (सुनिश्चित हो जाय) तब शुभ मुहूर्त में गणेश आदि पंच देवताओं का पूजन करके बरगद वक्ष के किसलयों, अङ्कुरों, तथा कुश की जड़ को जल के साथ पीस कर पिलायें। और पुत्र की भावना से निम्न मन्त्र का पाठ करे—

ॐ हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

(यजु० १३/४)

तत्पश्चात उसका पति उपस्थित बड़े-बूढ़ों का चरण छूकर आशीर्वाद ले। आचार्य उसे आशीर्वाद दें।

स्त्री को पुष्ट करने वाले पदार्थ खिलाये जायें ताकि गर्भस्थ शिशु स्वस्थ और योग्य हो।

सीमन्तोन्नयन संस्कार—जब गर्भस्थ शिशु के सब अङ्ग बन जाने के चिह्न प्रगट होने लगते हैं, उसमें चेतना आ जाती है तब यह संस्कार किया जाता है।

इस समय गर्भ शिक्षण के योग्य हो जाता है। उस समय बालक को जो शिक्षा दी जाती है उसका बालक पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। भक्त प्रह्लाद और वीर अभिमन्यु को क्रमशः भक्ति और चक्रव्यूह भेदन की शिक्षा ऐसी ही अवस्था में दी गई थी।

इस संस्कार में पति गूलर आदि शास्त्रवर्णित औषधि गर्भिणी की माग मे भर कर निम्न मन्त्र पढता है

ॐ भविर्विनयामि, ॐ भुवर्विनयामि, ॐ स्वर्विनयामि

पुत्र शब्द पू (नर्क) और त्र (त्राण करने वाला) से मिलकर बना है। अर्थात माता-पिता का नर्क से उद्धार करने वाला पुत्र कहलाता है।

येनादितेः सीमानं नयति प्रजा पतिर्महते सौभागाय।
तेनाहमस्यै सीमानं नयामि प्रजामस्यै जर दृष्टिं कृणोमि॥

तत्पश्चात वृद्धा ब्राह्मणियों द्वारा आशीर्वाद दिलाया जाता है।

गर्भिणी को खीर खिलायी जाती है। यह इस बात की ओर संकेत है कि उसे बच्चा पैदा होने तक ऐसा ही पौष्टिक आहार देना चाहिये।

जातकर्म संस्कार—बालक के जन्म होते ही इस संस्कार के करने का विधान है। नालछेदन (नाल काटने के पूर्व बालक को स्वर्ण की सलाका या चम्मच से या अनामिका अँगुली से मधु तथा घृत चटाया जाता है। स्वर्ण त्रिदोष नाशक होता है। घृत आयुवर्द्धक तथा वात, पित्तनाशक, मधु कफनाशक है।

तत्पश्चात बालक का पिता अथवा आचार्य निम्न मन्त्र का पाठ करते हैं—

अग्निशयुष्मात्स वनस्पतिभिरा युष्मान।
तेन त्वायुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि॥

(पारस्कर गृहसूत्र, १/१६/६)

ऐसे ८ आयुष्य-मन्त्रों को बालक के कान के पास पढ़कर उसके मन को उत्तम भावों से भावित करे। पुनः पिता पुत्र के दीर्घायु होने की कामना से ॐ दिवसपरि प्रथमं जज्ञे० (यजु० १२/१८-२८) इत्यादि ग्यारह मन्त्रों का पाठ करता है। मन्त्रों का पाठ करके बालक के हृदय आदि सभी अङ्गों का स्पर्श करता है। तत्पश्चात माँ के स्तनों को धोकर बालक को दूध पिलाने का विधान है। तत्पश्चात स्त्रियाँ सोहर आदि मंगल गीत गाती हैं।

नामकरण संस्कार—बालक का नामकरण संस्कार दसवें या बारहवें दिन शुभ तिथि मुहूर्त और नक्षत्र में करना चाहिये—

नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वाऽस्य कारयेत्।
पुण्ये तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते॥

(मनु०, २-३२)

ब्राह्मण बालक के नाम के आगे शर्मा, क्षत्री बालक के नाम के आगे वर्मा या सिंह, वैश्य बालक के नाम के आगे गुप्त तथा शूद्र बालक के आगे दास जोड़ना चाहिए।

शर्मवद् ब्राह्मणस्य स्याद्राज्ञो रक्षासमन्वितम्।
वैश्यस्य पुष्टिसंयुक्तं शूद्रस्य प्रेष्यसंयुतम्।

(मनु०, २-३४)

स्त्रियों का नाम मुख से उच्चारण करने योग्य सुन्दर अर्थ वाला, स्पष्ट तथा आनन्द को देने वाला, मङ्गलसूचक और अन्तिम अक्षर दीर्घ वर्ण वाला आशीर्वादात्मक रखना चाहिये।

निष्क्रमण संस्कार—इस संस्कार में जो कि ४ मास के बाद और ६ मास के अन्दर किया जाता है, बालक को घर से बाहर निकलने हेतु सूर्य, चन्द्र आदि देवताओं का पूजन करके बालक को उनका दर्शन कराया जाता है। मन्त्र निम्नलिखित है—

शिवे तेऽऽरत्तां द्यावा पृथिवी असंतापे अभिश्रयो, शंते सूर्य आ तपतु शं वातो वातु ते हृदे। शिवा अभिक्षरन्तु त्वापो दिव्याः पयस्वती॥ (अथर्व० सं०, ८/२/१४)

इस मन्त्र का अर्थ धर्मशास्त्र विशेषांक, गीताप्रेस, गोरखपुर में इस प्रकार लिखा है—

हे बालक! तेरे निष्क्रमण के समय द्युलोक तथा पृथिवीलोक कल्याणकारी सुखद एवं शोभाप्रद हों। सूर्य तेरे लिये कल्याणकारी प्रकाश करें। तेरे हृदय में स्वच्छ कल्याणकारी वायु का संचरण हो। दिव्य जलवाली गङ्गा, यमुना आदि नदियाँ तेरे लिये निर्मल स्वादिष्ट जल वहन करें।

अन्नप्राशन संस्कार—जब बालक ६, ७ माह का हो जाता है, दाँत निकलने लगते हैं, तब यह संस्कार किया जाता है।

शुभ मुहूर्त में देवताओं (पंचदेवों) की पूजा करके माता-पिता आदि चम्मच से निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर बालक को हविष्यान आदि (खीर आदि) पुष्टिकारक अन्न चटाते हैं—

शिवौते सतां व्रीहियवा ववला साव दोमधौ।
एतौयक्ष्मं विवाधेते एतौ मुञ्चतो अंहसः॥

(अथर्ववेद, ८/२/१८)

अर्थात हे बालक! जौ और चावल तुम्हारे लिये बलदायक तथा पुष्टिकारक हों, क्योंकि ये दोनों वस्तुयें यक्ष्मानाशक हैं तथा देवान्न होने से पापनाशक हैं। तत्पश्चात देवों को खाद्य पदार्थ निवेदित करके अन्न खिलाने का विधान बताया गया है।

टिप्पणी—देवताओं को निवेदित करके खिलाना इस बात का संकेत है कि भोजन भगवान का प्रसाद समझकर आदर और प्रसन्नता से ग्रहण करना चाहिये।

चूड़ाकरण संस्कार—सिर में मस्तक के ऊपर जहाँ बालों का भँवर होता है वहाँ सम्पूर्ण नाड़ियों और संधियों का मेल होता है, उसे अधिपवि नामका मर्म स्थान कहा जाता है। इस स्थान की सुरक्षा के लिये ऋषियों ने उस स्थान पर चोटी रखने का विधान कर रक्खा है यथा—

निवर्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्य्याय॥

(यजु०, ३/६३)

इसी चोटी रखने की प्रथा के कारण इस संस्कार को चूड़ाकरण संस्कार कहते हैं।

इस मन्त्र को बालक को सम्बोधित करके उसका मुण्डन किया जाता है। कटे बालों को आटे की लोई में गूँथ दिया जाता है। बालक के मुंडित सिर मे दही-घी लगाकर स्नान कराया जाता है तत्पश्चात मांगलिक क्रियायें की जाती हैं।

टिप्पणी—इस चोटी की महत्ता इसी बात से आँकी जा सकती है कि साफा और चोटी न रखने वाले पोप जान पाल आदि भी इस स्थान की रक्षा हेतु छोटी टोपी पहनते है ताकि उनके धर्मावलम्बी भी ऐसी टोपी पहनें।

कर्णवेध संस्कार—यह संस्कार ६ मास बाद किसी भी विषम मास अथवा वर्ष में किया जाता है।

पवित्र स्थान में शुभ समय में देवताओं का पूजन करके सूर्य के सम्मुख बालक या बालिका के कानों को निम्नलिखित मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित करना चाहिये—

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥

(यजु०, २५/२१)

फिर बालक के प्रथम दाहिने कान में तदन्तर बायें कान में सोई से छेद करे। बालिका के पहले बायें कान में तत्पश्चात दायें कान में छेद करे। इसके साथ ही बालिका के बायीं नासिका को भी छेदने का विधान है। इन वेधों में बालकों को कुण्डल आदि तथा बालिका को कर्णभूषण आदि तथा नाक में नाक का आभूषण पहिनाना चाहिये।

कर्णवेध से तीसरे नक्षत्र यानी तीसरे दिन कान, नाक आदि को ऊष्णजल से धोकर साफ कर लेना चाहिये।

निषेध—कर्णवेध के लिये जन्म नक्षत्र, रात्रि तथा दक्षिणायन निषिद्ध समय माना गया है। **लाभ**—सूर्य की किरणें बालक-बालिका के कानों के छिद्रों से होकर जब गुजरती हैं तो बालक-बालिका को पवित्र करती हैं तथा उसके विकास में सहायक होती हैं। एक प्रकार से यह एपीक्यून्चर पद्धति है जैसे मुसलमानों में मुसलमानी तथा यहूदियों में खतना।

सनातनधर्म में तो वृक्षों तक के दो पत्तों में (आमन-सामन) वेधने का विधान है ताकि उनका विकास उचित रूप से हो सके।

उपनयन संस्कार—गर्भ से आठवें वर्ष में ब्राह्मण का, ११वें वर्ष में क्षत्री का और १२वें वर्ष में वैश्य का उपनयन संस्कार करना चाहिये—

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्।
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः॥

(मनु०, २-३८)

गर्भ से आठवें वर्ष में ब्राह्मण का, गर्भ से ११वें वर्ष में क्षत्री का और गर्भ से १२वें वर्ष में वैश्य का उपनयन संस्कार करना चाहिये। परन्तु यदि बालक को अधिक तेजस्वी बनाना हो तो ब्राह्मण का गर्भ से ५वें, बलाभिलाषी क्षत्रिय का ६वे वर्ष में तथा धनाभिलाषी वैश्य का ८वें वर्ष में उपनयन करना चाहिये—

ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यो विप्रस्य पञ्चमे।
राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे॥

(मनु०, २-३९)

टिप्पणी—किन्तु यदि उपरोक्त समय के अन्दर न हो सके तो ब्राह्मण का १६वें वर्ष, क्षत्री का २२वें वर्ष और वैश्य का २४वें वर्ष तक अवश्य हो जाना चाहिये।

(मनु०, २-४०)

आ षोडशाद्ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते।
आ द्वाविंशात्क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः॥

(मनु०, २-४०)

अर्थात १६वें वर्ष तक ब्राह्मण का, बाइसवें वर्ष तक क्षत्रिय का और चौबीसवें वर्ष तक वैश्य की सावित्री का अतिक्रमण नहीं होता है अर्थात उस अवस्था तक उपनयन हो सकता है।

उपनयन-विधि—किसी शुभ लग्न और विधि को उपनयन करने का निश्चय किया जाता है।

घर में वेदी पर मण्डप बनाया जाता है। बालक का हरिद्रालेपन संस्कार होता है। निश्चित तिथि पर बालक के केशों का मुण्डन कराया जाता है। २-मेखला तथा कोपीन (मृग चर्म) और दण्ड धारण करा कर वेदी पर बैठाया जाता है।

यज्ञोपवीत पूजन होता है पंचदेव ब्रह्मा, विष्णु, महेश, यज्ञ और सूर्य की उपासना की जाती है। बालक को यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं कह कर यज्ञोपवीत पहनाया जाता है। सूर्य-दर्शन कराया जाता है। पुनः गायत्री-पूजन होता है। बालकों को गुरु त्रिपदा गायत्री मन्त्र की दीक्षा देता है।

साथ ही उसे शौच आचमन और आचार की शिक्षा दी जाती है यज्ञोपवीत धारण-विधि बताई जाती है। भिक्षा माँगने की विधि बताई जाती है।

इसके अतिरिक्त अंजलिपूरण, अश्मारोहण, दधिप्राशन, हस्तग्रहण आदि क्रियायें भी सम्मिलित हैं।

अंजलिपूरण—यह भाव प्रगट करता है कि बालक पढ़ने को उत्सुक है।

अश्मारोहण (पत्थर पर चढ़ना)—यह प्रकट करता है कि बालक शिक्षा ग्रहण करने के निश्चय पर दृढ़ है।

दधिप्राशन—मस्तिष्क को शुद्ध करने के लिए दही खाना हस्तग्रहण या उपनयन बालक का हाथ गुरु को पकड़वाना।

परिदान—माता-पिता द्वारा अपने पुत्र को गुरु को सौंपना।

स्वीकरण—शिष्य और गुरु का परस्पर एक-दूसरे को क्रमशः शिष्य और गुरु के रूप में स्वीकार करना।

इसके अतिरिक्त चार व्रत भी लेने का विधान है यथा—**पहला व्रत**—विचार और कर्म से ब्रह्मचर्य का पालन करना। **दूसरा व्रत**—भोजन और वस्त्र मे सादगी रखना। **तीसरा व्रत**—गुरु की आज्ञा-पालन का व्रत। **चौथा व्रत**—विद्या (आत्मज्ञान) को विधिवत प्राप्त करना। नित्य हवन करना और अन्तःकरण चतुष्टय को सत्कर्मों की ओर प्रेरित करने हेतु (गायत्री मन्त्र का जप) सूर्य से प्रार्थना करना (भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता संस्कार एवं यज्ञ, म०म० डॉ० प्रपन्न कुमार आचार्य)।

विवाह-संस्कार—सनातनधर्म में लड़की के माता-पिता लड़की के अनुरूप वर की खोज करते हैं। वर के पिता और उसकी (वर की) स्वीकृति पा जाने पर शुभ दिन व लग्न में वर-वरण का कार्य दोनों पक्षों के परिवारों, रिश्तेदारों, एवं इष्ट-मित्रों के समक्ष सम्पन्न किया जाता है।

वर-वरण की विधि—कन्या के भाई अथवा कन्या के पिता और भाई वर-वरण हेतु जाते हैं।

(१) इस कार्यक्रम को सम्पन्न करने हेतु मण्डप बनाया जाता है।

(२) मण्डप में पिता व भाई पश्चिम मुख तथा वर पूर्व मुख करके बैठता है।

(३) दोनों पक्ष (भाई या पिता व वर) केशवाय नमः, नारायणाय नमः माधवाय नमः करके आचमन करते हैं और प्राणायाम करते हैं।

(४) पुनः अपवित्रः पवित्रो वा पढ़ कर अपने तथा पूजन सामग्री पर जल छिड़कते हैं।

(५) पंडित स्वस्तिवाचन पढते हैं

(६) पुनः कन्या का भ्राता या पिता दाहिने हाथ में जल, अक्षत, पुष्प, सुपारी, द्रव्य लेकर वर-वरण मन्त्र पढ़कर संकल्प करता है।

कलश स्थापन एवं गौरी-गणेश पूजन होता है।

इसी प्रकार वर भी जल, अक्षत, पुष्प, सुपारी, आदि द्रव्य लेकर कलश-स्थापन एवं गौरी-गणेश के पूजन का संकल्प व पूजन करता है। तथा प्रार्थना करता है। तब पिता या भाई (लड़की का) वर के पैर धोता है तथा ओ३म युञ्जन्ति मन्त्र से वर के ललाट में चन्दन या रोरी लगाता है।

पुनः चन्दन के ऊपर अक्षत लगा देता है तत्पश्चात हाथ में माला लेकर ॐ यद्यशोऽप्सर सभिन्द्रः इस मन्त्र को पढ़कर वर के गले में माला पहिना देता है।

पुनः भाई या पिता वरण सामग्री का संकल्प करते हैं तथा वर के हाथ में दे देते हैं। वर उसे स्वीकार करता है (वृतोऽस्मित तथाघोस्त वा कह कर सामग्री का वरण करता है) पुनः ॐ व्रतेन दक्षिणामाप्नोति मन्त्र पढ़कर ब्राह्मणों को भूयसी (दक्षिणा) दी जाती है। आगत देवों को प्रणाम करके कार्यक्रम का विसर्जन होता है।

तत्पश्चात शुभ दिन व लग्न में दोनों पक्षों के घरों पर मण्डप-स्थापन व कलश पूजन का कार्यक्रम होता है। दोनों घरों में (वर व कन्या के) हरिद्रा लेप का कार्यक्रम होता है।

मण्डप में दोनों घरों में (वर व कन्या) निर्विघ्नता से कार्य सम्पन्न हेतु गौरी-गणेश का पूजन करते हैं। तत्पश्चात वर व कन्या के अपने-अपने घरों में चन्दन व अक्षत लगाया जाता है।

पुनः वर के दाहिने हाथ में व कन्या के बायें हाथ में क्रमशः कंकण अथवा मौली बाँधी जाती है। पुनः ब्राह्मणों को दक्षिणा और दस ब्राह्मण को भोजन कराने का संकल्प किया जाता है। मातृका पूजन एवं पञ्चाङ्ग पूजन होता है।

द्वारपूजा—निश्चित तिथि को बारात लड़की के घर आती है। लड़के के पिता, भाई व इष्ट-मित्र-सम्बन्धी मिलकर बारात का स्वागत करते हैं। उनके ठहरने की व्यवस्था व जलपान कराते हैं। तत्पश्चात वर द्वार पर आता है। लड़की का पिता या भाई आदि उसका स्वागत करते हैं। पंचदेवों की पूजा होती है। उसको आसन देते तथा चरण धोते हैं। वर के ललाट में तिलक व अक्षत लगाते हैं। गले में फूलों की माला पहिनाते हैं। वर मन्त्रों के साथ ब्राह्मणों को भूयसी (दक्षिणा) देता है। पुनः गणपति आदि देवताओं का विसर्जन होता है।

विवाह-विधान—कन्या को मण्डप में लाकर गौरी-गणेश पूजन कराना। वर पक्ष की ओर से वस्त्राभूषण आदि समस्त सामग्री मण्डप में लाकर उ

हे पतिदेव! व्रत, उद्यापन, दान आदि करना स्त्रियों का स्वाभाविक धर्म है। इस मेरे धर्मकृत्य में कभी भी विघ्न न डालेंगे। यह आपसे मैं याचना करती हूँ।

स्व कर्मणाऽर्जितं वित्तं पशु-धान्य धनागमम्।
सर्वं निवेद येन्मह्यं चत्वा रीति तथा वदेत्॥ ४॥

हे स्वामी, अपने पुरुषार्थ द्वारा आप जो भी धन कमा कर लायें तथा गाय-बैल आदि पशु अथवा अन्य द्रव्य सभी मुझे समर्पित करें।

गजऽश्वादि पशूनां च हेयो पादेय कारणम्।
अनापृच्छम् न कर्त्तव्यं पञ्च पश्चिति संवदेत्॥ ५॥

हे प्रभु! आज से आप हाथी, घोड़ा और पशुओं की खरीद तथा बिक्री मुझसे पूछे बिना न करेंगे।

भूषणानि विचित्राणि रत्नधातु मयानि च।
दयान्न प्रति गृहणीयात् षड ऋतावपि संवदेत्॥ ६॥

हे पतिदेव! विवाह उत्सव, सायंकालीन, भ्रमण में जाने के लिये हीरा, मोती तथा सोने, चाँदी के आभूषण, साड़ी आदि जो मुझे देवें उसे पुनः आप लेने की कृपा न करें।

गीत वादित माङ्गल्यं बन्धूनां च गृहे सदा।
अनाहूत! गमनमिच्यामि यदा मा प्रति पालयेत्॥ ७॥

हे प्राणनाथ! अपने भाई-बन्धु के घर जब माङ्गलिक कार्य होंगे और गाना-बजाना होगा, उस समय मैं बिना बुलाये ही चली जाऊँगी तब आप मुझे अपमानित नहीं करेंगे अर्थात जाने में रोक नहीं लगायेंगे।

तत्पश्चात वर कन्या से पाँच माँगें माँगता है।

वर की पाँच माँगें—

क्रीडा शरीर संस्कार समाजोत्सव दर्शनम्।
हास्यं परगृहे यानं त्यजेत् प्रोषित भर्तृका॥ १॥

अर्थ—वर ने कहा, हे प्रिये! मेरे घर में न रहने पर क्रीड़ा, हँसी-मजाक, शरीर संस्कार, सामाजिक उत्सव, हास-परिहास आदि दूसरे के घर जाना आदि पतिव्रतायें परित्याग कर देती हैं। इस प्रकार मैं तुम्हें आज्ञा प्रदान करता हूँ।

विष्णुर्वैश्वानरः साक्षी ब्राह्मणा ज्ञाति बान्धवाः।
पञ्चम ध्रुवमालोक्य स साक्षित्वं ममागताः॥ २॥

अर्थ—हे देवि! तुम्हारा विवाह जो मेरे साथ हुआ उसके साक्षीभूत विष्णु वैश्वानर, ब्राह्मणगण ज्ञाति समूह ध्रुव नक्षत्र हैं।

त्वम् चित्तम् मम चित्तम् वाचा वाच्यं न लोपयेत्।
व्रते मे सर्वदा हेयं हृदयस्थं वरानने॥ ३॥

अर्थ—हे वरानवे: तुम इस समय से अपना चित्त मेरे चित्त के अनुकूल रखना और हमारी उचित आज्ञा का उल्लंघन भी न करना। तथा मैं जो कुछ भी तुमसे कहूँ उसे अपने मन में ही रखना।

मम तुष्टिश्च कर्त्तव्या बन्धूनां भक्ति रादरात्।
ममाऽऽज्ञा परिपाल्यैषा पातिव्रत परायणो॥ ४॥

अर्थ—हे पतिव्रते! तुम्हारा परम कर्त्तव्य है कि जिस प्रकार मुझे संतोष हो उसी प्रकार कार्य करना और भाई-बन्धुओं के विषय में आदरपूर्वक भक्ति-भाव रखना तथा मेरे आदेश का पूर्णरूपेण पालन करना।

विना पत्नी कथं धर्म आश्रमाणां प्रवर्त्तते।
तस्मात् त्वं मम विश्वस्ता भव वामाङ्ग गामिनी॥ ५॥

अर्थ—हे सुमुखी! गृहस्थाश्रम धर्म का पालन पत्नी के बिना नहीं हो सकता अत: तुम मेरी विश्वास तथा वामाङ्गी बनो।

विवाहोपरान्त बारात को आदरपूर्वक भोजन कराया जाता है। पान खिलाया जाता है। ब्राह्मणों को गोदान तथा भूयसी (दक्षिणा) दी जाती है। मंगतों को दान दिया जाता है।

पुन: दूसरे या तीसरे दिन बारात विदा होती है। कन्या की विदायी हेतु वर सासु के पास जाता है। सासु द्वारा वर को आशीर्वाद व कन्या के कल्याण की कामना की जाती है।

बारात विदा करने के बाद मंगतों को दान दिया जाता है।

बारात लौट कर घर पहुँचती है। वर की माता अन्य स्त्रियों के साथ दूल्हा-दुल्हन की आरती उतारती है। आसन बिछाकर चरण धोती है। दान बाँटनी है। ब्राह्मण भोजन कराती है। देवघर में उन्हें पूजा कराने ले जाती है। पुन: चौथे दिन हवन करके दूल्हा व दूल्हन के कंगन-मौली खुलती है और तब दोनों स्त्री पुरुष के रूप में रहने लगते हैं।

अन्तिम संस्कार—सनातनधर्म में मृत्यु निकट आने पर व्यक्ति को दस वरना (जिसमें दस-दस की संख्या में दस चीजें होती हैं) दान कराया जाता है। गरीब आदमी गोदान व अन्न-दान ही करता है।

पुन: उसे धरती पर लेटा दिया जाता है। गीता आदि पवित्र पुस्तकों का पाठ सुनाया जाता है ताकि संसार से उसका मोह छूट जाय।

यदि गीता या पवित्र पुस्तक के पाठ सुनते-सुनते उसकी मृत्यु हो जाय तो अच्छा माना जाता है।

मृत्यु के उपरान्त उसका सिर उत्तर दिशा में कर देते हैं। तत्पश्चात भाई-बन्धुओं के दर्शनार्थ उसे वेदी पर लेटा देते हैं। वेदी पर लेटाने के पूर्व उसे स्नान

कराते और कफन पहिनाते हैं। शरीर में सुगन्धित द्रव्य लगाते हैं। पंडित आकर पिड पारते हैं। तत्पश्चात घर के द्वार पर टिखटी बना कर रक्खी जाती है। उस पर तृण बिछा देते हैं। मृतक को वेदी से लाकर द्वार पर टिखटी में रखते हैं। पंडित उस स्थल पर भी एक पिंड पारते हैं। तत्पश्चात भाई-बन्धु-पुरजन आदि के इकट्ठा हो जाने पर मृतक के पुत्र-भाई आदि उस अर्थी को लेकर प्रस्थान करते हैं। यदि मृतक व्यक्ति वृद्ध होता है तो गाजे-बाजे के साथ मिठाई, पैसा आदि लुटाते हुए चलते हैं। मार्ग में लोग **राम नाम सत्य है सत्य बोलो मुक्ति है** की ध्वनि करते हुए चलते हैं। जहाँ चौरस्ता मिलता है वहाँ पुनः शव को धरती पर रख कर पिंड पारते हैं। तत्पश्चात उसी प्रकार राम नाम सत्य है सत्य बोलो मुक्ति है की ध्वनि करते हुए आगे बढ़ते हैं।

अन्त में लोग श्मशान भूमि पर पहुँचते हैं। वहाँ पहुँच कर फिर एक पिंड पारा जाता है। तत्पश्चात चिता तैयार की जाती है। और शव को उस पर रक्खा जाता है। इस अवसर पर एक पिंड पुनः पारा जाता है। जब शव के ऊपर और अगल-बगल पर्याप्त मात्रा में लकड़ी बिछा देते हैं। तब मृतक का पुत्र अथवा उत्तराधिकारी उसे मुखाग्नि देता है। चिता जल उठने पर उसमें पुनः हवन सामग्री, धूप, गुग्गुल, कपूर, घी आदि सुगन्धित द्रव्य छोड़ते हैं। उपस्थित जन पाँच-पाँच लकड़ियाँ एकसाथ बाँध कर हाथ में लिये रहते हैं। चिता की चार परिक्रमा पूरी करने के बाद पाँचों लकड़ियाँ जो हाथ में लिये रहते हैं, चिता में छोड़ देते हैं, (पाँचवीं परिक्रमा के समय अन्त में) तत्पश्चात कपाल क्रिया करते हैं।

तत्पश्चात लोग प्रस्थान करते हैं तथा नदी या तालाब जो कि चिता के निकट ही होता है, स्नान करते हैं। नाई पहले से ही मृतक आत्मा के प्रतीक रूप मे कुश गाड़ देता है। स्नान करके लोग क्रम से उस कुश को (मृतक आत्मा) को तीन-तीन अंजुलि पानी देते हैं यथा—(प्रथम अंजलि तव प्रतिष्ठाम्, द्वितीय अंजलि तव प्रतिष्ठाम्, तृतीय अंजलि तव प्रतिष्ठाम्) पुनः स्नान करके लोग वापिस चलते हैं। मृतक के मुख में मुखाग्नि देने वाला किसी आम या पीपर या बरगद के वृक्ष में घंट टाँग देता है तथा नित्य उसमें जल छोड़ना होता है। स्नान के बाद। घंट में छेद रहता है (नीचे) और रोई लगी रहती है ताकि थोड़ा-थोड़ा पानी नीचे गिरता रहे।

तत्पश्चात सब घर लौटते हैं। वहाँ पर किसी बाल्टी वगैरह में मिर्चा या नीम पत्र पड़ा रहता है। लोग मिर्चा या नीम पत्र का कुछ भाग काट कर कुल्ला करते हैं, पैर धोते हैं तथा अपने-अपने घर वापिस जाते हैं। चौथे दिन चिता में अस्थियाँ इकट्ठी की जाती हैं। इस अवसर पर एक पिंड पारा जाता है। तत्पश्चात उन्हें गंगा में जाकर छोड़ा जाता है। दस दिन तक आग देने वाला नित्य स्नान

करके एक पिंड पारता है। तत्पश्चात स्नान करके घट में पानी छोड़ता है। शाम को भी पानी छोड़ता है। घर के लोग एक वक्त ही भोजन करते हैं। भोजन में से कुछ-कुछ भाग लेकर एक पत्तल में रखते हैं तथा उसे पुनः गाँव के बाहर पशु-पक्षियों को खाने हेतु रख देते हैं।

दसवें दिन परिवार के लोग बाल बनवाते हैं। गाँवों में प्रायः प्रत्येक परिवार का एक व्यक्ति बड़ा-बूढ़ा बाल बनवाता है। घर की सफाई-पोताई होती है। ग्यारहवें दिन महापात्र को भोजन कराते हैं। उसे वस्त्र व शय्या तथा गोदान देते है घट फोड़ा जाता है।

बारहवें दिन पट्टीदार लोग भोजन करते हैं। इस दिन प्रातःकाल पिंड पारने व कथा सुनने तथा जल छिड़कने का कार्यक्रम चलता है।

तेरहवें दिन ब्रह्मभोज होता है। १३ ब्राह्मण भोजन करते हैं, हवन होता है। ब्राह्मणों को उपानह (जूता या खड़ाऊँ), एक लोटा या गिलास, धोती, अँगोछा, कुर्ता, छाता आदि अपनी सामर्थ्य के अनुसार दान देते हैं। एक ब्राह्मण जो तिथि खाता है उसे भी खिलाते हैं। तत्पश्चात महीने पर उसी मृत्यु तिथि पर उस तिथि खाने वाले को खिलाते हैं और वर्ष पूरे होने पर वर्षी करते हैं। ब्राह्मणों, मित्रो और सम्बन्धियों को भोजन कराते हैं।

इस अवसर पर तिथि खाने वाले ब्राह्मण को सभी प्रकार के पहिनने के वस्त्र, बिछौना, ओढ़ना, चारपाई तथा आवश्यकता पूर्ति हेतु नाना प्रकार के बर्तन और आभूषण आदि दान देते हैं। इस अवसर पर पंडित स्वस्तिवाचन एवं पच-देवों की पूजा भी कराते हैं।

और इस प्रकार संस्कार समाप्त होता है।

बौद्धधर्म में संस्कार

सनातनधर्म की भाँति बौद्धधर्म में भी लगभग वही संस्कार किये जाते हैं जो सनातनधर्म को मान्य है—१. गर्भमंगल (पुंसवन) २. नामकरण, ३. अन्नाशन, ४. केशकम्पन, ५. कर्णवेधन, ६. विद्यारम्भ, ७. विवाह, ८. प्रवज्या, ९. उपसम्पदा और १०. मृतक संस्कार।

उद्देश्य

बौद्धधर्म में संस्कार करने का उद्देश्य बालक के मन पर पड़े पुराने पापों की छाप को मिटाना और पुण्य करने की प्रेरणा प्रदान करना है। अर्थात सनातन हिन्दूधर्म की भाँति बौद्धधर्म में भी संस्कार के दो पक्ष होते हैं (१) मलाप-नयन, (२) अतिशयाधान

मलापनयन—(मन पर लगे पुराने पापों के मल को धोना)

भगवान बुद्ध भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुए कहते हैं—भिक्षु को जानना चाहिये कि शरीर, वाणी और चित्त के कौन-कौन से कार्य अच्छे हैं और कौन से बुरे। जैसे चरवाहा अपनी भैंसों को रगड़-रगड़ कर नहलाता है, भिक्खु को अपने मन और शरीर को इच्छाओं राग, क्रोध और वितृष्णा के मैल से शुद्ध रखना चाहिये। (जहँ जहँ चरन परे गौतम के, पृ० २७)

पुनश्च—

अनुपुब्बेन मेधावी थोकथोकं खणे खणे।
कम्मारो रजतस्सेव निद्धमे मलमत्तनो॥

(धम्मपद, मल्लवग्गो, ५)

अर्थात सोनार जैसे चाँदी के मैल को क्रमशः क्षण-क्षण थोड़ा-थोड़ा जलाकर साफ करता है, वैसे ही बुद्धिमान पुरुष अपने मल को क्रमशः दूर करे। परन्तु मल (पाप) को धोना ही पर्याप्त नहीं है। यदि मन को पुण्य कार्यों के करने में नहीं लगाया जायगा तो उसका मन पुनः पाप में लग जायगा। अतिशयाधान (पुण्य से चमकाना) भी आवश्यक है—

अभित्थरेथ कल्याणे पापा चित्तं निवारये।
दन्धं हि करोतो पुञ्ञं पापस्मिं रमती मनो॥

(धम्मपद, पापवग्गो, १)

अर्थात पुण्य करने में शीघ्रता करें, पाप से चित्त को हटावें क्योंकि पुण्य कार्य को धीमी गति से करने वाले का मन पाप में लग जाता है।

गर्भाधान संस्कार—अर्थात वह संस्कार जिसमें स्त्री-पुरुष को स्वस्थ, सुन्दर और धर्मात्मा पुत्र पैदा करने के योग्य बनाने की शिक्षा दी जाती है।

बिना स्त्री-पुरुष के धर्मात्मा बने बालक का धर्मात्मा बनना सम्भव नहीं। यद्यपि बौद्धधर्म में यह संस्कार मनाया नहीं जाता है तथापि योग्य (धर्मात्मा) माता-पिता से ही धर्मात्मा पुत्र-पुत्रियाँ पैदा होती हैं। यह उसकी भी मान्यता है—

स्वयं भगवान बुद्ध भी धर्मात्मा माता-पिता से पैदा होने के कारण महान हुए।

बुद्ध के पिता शुद्धोदन कुलीन, पवित्र गोत्र के, धनसम्पन्न, गौरवयुक्त, सज्जन तथा धार्मिक हैं। (ललितविस्तर, कुलशुद्धिपरिर्वत, ३७)

इसी प्रकार उनकी माता मायावती भी अत्यन्त सुन्दर, सुशील और धर्माता थी।

न विद्यते कन्य मनुष्यलोके
गन्धर्वलोके थ च देवलोके।
मायाम देवीय समा कुतोन्तरी,
प्रतिरूप सा वै जननी महर्षेः।

(वही, ४५)

अर्थात मनुष्यलोक मे, गन्धर्वलोक में, तथा देवलोक मे मायादेवी के समान कन्या नहीं है, अन्तरी अर्थात उनसे अन्तर या विशेष (गुण) वाली (कन्या की बात ही) कहाँ। वह निश्चय से महर्षि की जन्म देने वाली माता होने योग्य है।

इस प्रकार बौद्धधर्म भी गर्भाधान संस्कार को मानता है किन्तु प्रायः इसे संस्कार का रूप नहीं देता है।

पुंसवन संस्कार—पुंसवन संस्कार को बौद्धधर्म में गर्भमंगल संस्कार कहते हैं। महास्थविर पूज्यपाद बोधानन्दजी ने अपनी पुस्तक बौद्धचर्यापद्धति मे इस संस्कार को करने की विधि निम्न प्रकार से बतायी है—

यह गर्भ स्थित के तीन मास पश्चात किया जाता है।

विधि—विद्वान बौद्ध भिक्षु गर्भ स्थित बालक के कल्याण के लिए उसकी माता को त्रिशरण सहित पंचशील प्रदान करते हैं। परित्राण सूत्रों का पाठ सुनाते हैं और गर्भवती स्त्री को गर्भ के अनुकूल पथ्य ग्रहण करने और गर्भवती को सद्भावना और सद्विचार से रहने का उपदेश देते हैं। बुद्धानुस्मृति, धर्मानुस्मृति तथा संघानुस्मृति करते रहने का उपदेश देते हैं। गर्भवती से कहते हैं कि वह अपने मन में चिन्तन करे कि हमारी सन्तान सुन्दर, सौम्य, यशस्वी, बलवीर्य-सम्पन्न, न्यायनिष्ठ, धार्मिक विद्वान और प्रज्ञावान हो।

तत्पश्चात गृहस्थ अपने परिवार और इष्टमित्रों के साथ भोजन करता है। स्त्रियाँ गुलगुले का भोजन करती हैं और गा-बजाकर आमोद-प्रमोद के साथ कार्यक्रम समाप्त होता है।

टिप्पणी—सनातन हिन्दूधर्म की भाँति बौद्धधर्म में स्त्री (गर्भवती स्त्री) को पुंसवन व्रत की भाँति उपोसथ व्रत रहने का भी विधान है।

यथा, गर्भ के सुनिश्चित हो जाने पर मायादेवी महाराज शुद्धोदन से इसी उपोसथ व्रत को रहने की याचना करती हैं।

टिप्पणी—इस पुंसवन संस्कार का उद्देश्य दोनों धर्मों में समान है। उसके मानने का ढंग भी समान है।

जातकर्म संस्कार—बौद्धधर्म में जातकर्म संस्कार का भी वर्णन है। बुद्ध चरित सर्ग १ (भगवान का जन्म) में महाबौद्ध पंडित अश्वघोष लिखते हैं—

नर पतिरपि पुत्र नज्म तुष्टो विषय गतानि विमुच्य बन्धनानि।
कुल सदृशम चीकर द्यथा वत्प्रियतनयस्तनयस्य जातकर्म॥

(बुद्धचरित, सर्ग १-८२)

अर्थात पुत्र जन्म से सन्तुष्ट होकर राजा ने भी देश के सभी कैदियों को छोड़ दिया और उस पुत्र स्नेही ने पुत्र का जातकर्म कुल के अनुकूल ही उचित रीति से कराया।

टिप्पणी—बौद्ध पंडित बुद्धचरित में जब जातकर्म संस्कार का वर्णन करता है तो बुद्ध भगवान के आदर्श को मानने वालों के लिये उसका मानना भी कर्त्तव्य हो जाता है।

अब जातकर्म मानने का विवरण ललितविस्तर जन्म परिवर्त २७ में देखिये—

हे भिक्षुओ! इस प्रकार उत्पन्न होते-होते बोधिसत्व का लुम्बनी वन में, देवलोक के तथा मनुष्यलोक के बाजे-गाजे के साथ सत्कार किया गया, गौरव किया गया, मान किया गया, पूजन किया गया। खाने के भोजन के, तथा स्वाद लेने के पदार्थ बाँटे गये। सब शाक्य गण के लोगों ने इकट्ठे हो आनन्द-ध्वनि की। दान दिये गये (९७) पुण्य किये गये, दिन-दिन बत्तीस लाख ब्राह्मणों को तृप्त किया गया, जिनका जिस वस्तु से प्रयोजन हुआ उन्हें वह वस्तु दी गई और देवताओं के अधिपति शक्र तथा ब्रह्मा ब्राह्मण ने बटु (ब्रह्मचारी) का रूप धर कर, अग्रासन पर बैठ मंगलमयी गाथायें पढ़ीं।

टिप्पणी—भगवान का जातकर्म संस्कार सभी बौद्धों के लिये एक आदर्श है।

नामकरण संस्कार—यह संस्कार जन्म के पाँचवें दिन होता है। उस दिन प्रसूता स्नान करती और प्रसवगृह साफ-सुथरा किया जाता है। विद्वान बौद्ध भिक्षु आकर प्रसूता एवं उनके उपस्थित कुटुम्बियों को त्रिशरण सहित पंचशील देते और परित्राण का पाठ सुनाते हैं।

(१) बच्चे का नाम ऐसा रखते हैं जो प्रज्ञा, प्रतिभा, ओज, वीर्य, करुणा, मैत्री, औदार्य आदि सद्‌गुणों का द्योतक हो।

(२) बच्चे का नाम जाति सूचक नहीं रखते यथा—शर्मा, वर्मा, गुप्ता या दास शब्द नाम के आगे नहीं जोड़ते।

(३) न अन्ध विश्वासी अल्पज्ञों की भाँति घसीटू, घुरहू आदि तुच्छता एवं घृणासूचक नाम रखते हैं ताकि बालक दीर्घजीवी हो।

तत्पश्चात प्रसूता को बच्चे के लालन-पालन की उचित शिक्षा देते हैं।

तत्पचात सेवा-सत्कार पूर्वक आचार्य के विदा हो जाने पर गृहस्थ अपने परिवार और इष्ट-मित्रों के साथ भोजन करते हैं, तथा स्त्रियाँ गीत, वाद्य के साथ आमोद-प्रमोद के द्वारा इस मांगलिक संस्कार का आनन्द मनाती हैं।

(बौद्धचर्या पद्धति, भदन्त बोधानन्द)

अन्नाशन—यह संस्कार जन्म के पाँचवें महीने में सुविधानुसार किया जाता है—

(१) बच्चे और उसकी माता नवीन वस्त्र धारण करके।

(२) अपने परिवारसहित त्रिशरण पंचशील ग्रहण करती और परित्राण सूत्रों का पाठ सुनते हैं।

(३) खीर से बुद्ध पूजा होती है।

(४) भिक्षु को भी खीर भोजन खिलाया जाता है

(५) तत्पश्चात आचार्य की आज्ञा से मांगलिक गीत वाद्य, (उलुध्वनि, शख ध्वनि, आदि प्रादेशिक संस्कृति के अनुसार) के साथ बच्चे का कोई गुरुजन धातु आदि की कटोरी में खीर रख कर नवीन चम्मच से नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मा सम्बुद्धस्स कहते हुए बच्चे को खीर चटाते हैं।

(६) तत्पश्चात परिवार के लोग प्रीतिभोज करते और गा-बजाकर आनन्द मनाते हैं।

(७) इसी दिन मध्याह्नोतर काल में बच्चे को किसी निकटवर्ती बुद्ध विहार में ले जाकर बुद्ध का दर्शन कराते और धूप-दीप आदि से बुद्ध की पूजा करते है।

टिप्पणी—इस संस्कार को मानने की विधि समान है। केवल पूजन में गौरी-गणेश के स्थान पर बौद्धधर्म में बुद्धधर्म और संघ अर्थात त्रिरत्नों की पूजा की जाती है।

केश कम्पन (मुण्डन)

(१) यह संस्कार तीन साल के भीतर सुविधानुसार किया जाता है।

(२) पहले बौद्ध भिक्षु दो-चार बाल काट देते हैं, तत्पश्चात बाल बनाने वाला सावधानी से बच्चे के सर का मुण्डन करता है।

(३) बालों को आटे की लोई में रखकर बच्चे का सिर पोंछ लिया जाता है और फिर उस लोई को किसी मैदान में गाड़ दिया जाता है अथवा किसी नदी मे प्रवाह कर दिया जाता है।

(४) मुण्डन हो जाने पर बच्चे को स्नान करा कर नवीन वस्त्र पहिनाते हैं।

(५) माता या पिता उसे गोद में लेकर त्रिशरण ग्रहण करते, परित्राण पाठ सुनते।

(६) और कुछ दान करते हैं।

(७) तथा भिक्षु की सेवा-सत्कार के बाद प्रीतिभोज और आनन्द-मगल मनाते हैं।

(८) सायंकाल को बुद्ध विहार में धूप-दीप द्वारा बुद्ध की पूजा करते हैं।

इस प्रकार दोनों धर्मों में इस संस्कार के करने की विधि लगभग समान है।

अन्तर

(१) सनातनधर्म में गौरी-गणेश व पंचदेवों की पूजा है। सत्यनारायण कथा होती है। हवन होता है जबकि बौद्धधर्म में बुद्धपूजा, त्रिशरण सहित पंच-शील ग्रहण होता है।

कर्णवेधन

(१) यह संस्कार जन्म के पाँचवें वर्ष होता है।

(२) यह भी त्रिशरण सहित पचशील, परित्राण पाठ श्रवण आर दानादि के द्वारा अन्य संस्कारों की भाँति सम्पन्न किया जाता है।

(३) चतुर कान छेदने वाला बच्चे के कान को छेदता है और वाली आदि पिन्हा देता है।

टिप्पणी—कोई इस संस्कार को (कर्णवेधन) केशकम्पन्न के साथ और कोई-कोइ विद्यारम्भ के साथ करते हैं।

विद्यारम्भ संस्कार

(१) जन्म के पाँचवें या सातवें वर्ष के बच्चों को विद्यारम्भ कराया जाता है।

(२) बच्चे को विहार में ले जाकर पहले बुद्ध-पूजन कराते हैं।

(३) फिर त्रिशरण सहित पंचशील दिया जाता है।

(४) बौद्ध भिक्षु पट्टी या स्लेट पर बच्चे के हाथ खरिया की बत्ती पकड़ा कर अपने हाथ के सहारे उससे अ, आ आदि स्वर एवं बुद्धं सरणं गच्छामि, धम्मं सरणं गच्छामि, संघं सरणं गच्छामि लिखवाते हैं।

(५) विद्यारम्भ हो जाने पर गृहस्थ अपने घर आकर पूर्ववत आनन्द उत्सव मनाते हैं।

(६) इसके पश्चात बालक अपनी सुविधानुसार किसी विद्यालय में पढ़ता लिखता है।

टिप्पणी—कोई-कोई प्राचीन प्रथानुसार सातवें वर्ष विद्यारम्भ के समय श्रामणेर दीक्षा देकर विहार में ही वास करके साधुओं की भाँति ब्रह्मचर्य का पालन कराते और विद्याध्यन कराते हैं।

(वही, संस्कार परिच्छेद)

टिप्पणी—इस संस्कार में तथा सनातनधर्म के विद्यारम्भ में इतना ही अन्तर है कि बौद्धधर्म में गौरी-गणेश या पंचदेवों की पूजा के स्थान पर बुद्ध पूजा करते हैं।

विवाह संस्कार—भदन्त महास्थविर बोधानन्दजी ने अपनी पुस्तक बौद्ध चर्या पद्धति में विवाह में निम्न बातों को अकरणीय बताया है—

(१) विवाह हेतु सम्बन्ध निर्धारण करते समय टीका, तिलक, फलदान तथा सगाई आदि के नाम से भी अनावश्यक व्यय का कोई काम नहीं करें।

(२) प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में मुद्रा या सामान का लेन-देन नहीं करें।

(३) बाल विवाह और बेमेल (बेजोड़) विवाह न करें।

(४) अबौद्धों द्वारा किये जाने वाले विवाह लग्नपत्र नहीं भेजें और न मँगायें।

(५) विवाह का दिन तय होने से विवाह सम्पन्न होने के मध्य कोई सामूहिक भोज नहीं करें।

(६) भात लेना व देना, तेल, चाक पूजन, मंठा या देवपूजन, पैर धोना व पेर पूजन, घुड़चड़ी, भाँवर, कंगन बाँधना, माँग में सिन्दूर भरना व भरवाना, कन्या दान, गोद भरना, टीका-तिलक, मिलाई ये सब नहीं करें।

(७) दहेज न लें न दें।

(८) विवाह स्थल पर कोई उपहार न लें और न दें।

(९) आतिशबाजी, बैंडबाजा, विशेष ट्यूब रोशनी आदि पर अनावश्यक व्यय न करें।

(१०) विवाहोपरान्त गौना व रौना नहीं करें।

उपरोक्त बातों की हिन्दूधर्म से तुलना

भदन्त महास्थविर बोधानन्दजी के उपरोक्त विचार संख्या १ से ३ व ७ से १० तक सभी सनातनधर्मियों को मान्य हैं। ये सभी बातें अकरणीय हैं क्योंकि ये शास्त्रसम्मत नहीं हैं। अब आप पूछ सकते हैं कि यदि बातें शास्त्रसम्मत नहीं हैं तो फिर ऐसा लोग करते क्यों है? तो मेरी समझ से इसके तीन कारण हैं—(१) सामाजिक परम्परा, (२) लड़कियों की संख्या अधिक होना (३) लड़कियों का स्वावलम्बी न होना। कहना अप्रासंगिक न होगा कि सिक्खों ने भी इन्हीं अकरणीय कर्मों को न छोड़ने के कारण अपना अलग पंथ बना लिया। विवाह का मुख्य मुद्दा लड़की-लड़के का एक-दूसरे की ओर खिंचाव और चाव है। माता-पिता व गुरु को बालक-बालिका को उनके कार्यों में सहायता देना मात्र है जब राम सीता की ओर और सीता राम की ओर आकर्षित होती हैं तो दोनों के माँ-बाप विवाह कर देते हैं न वरीच्छा करते हैं न तिलक भेजते हैं न भोज करते हैं।

इसी प्रकार सनातनधर्म में बाल विवाह या अनमेल विवाह की अनुमति नहीं है लेकिन लोग करते हैं। सुश्रुत ने भी इसका विरोध किया है—

ऊन षोडश वर्षायाम् प्राप्तः पञ्च विंशतिम्।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते॥ १॥
जातो व न चिरंजीवेज्जीवेद्धा दुर्वेन्द्रियः।
तस्मादत्यन्त वालायाम् गर्भाधानं न कारयेत्॥ २॥

(सुश्रुत शारीर स्थाने अ० १०-४७, ४८)

अर्थात यदि सोलह वर्ष से कम उम्र वाली स्त्री में पच्चीस वर्ष से कम आयु वाला पुरुष गर्भ स्थापन करे तो वह तो गर्भस्थ गर्भविपत्ति को प्राप्त होता है अर्थात उत्पन्न नहीं होता। और यदि उत्पन्न भी हो जाय तो चिरकाल तक जीवित नहीं रहता। यदि दीर्घकाल तक रह भी जाय तो दुर्बल इन्द्रिय होगा अतः कम आयु वाली स्त्री में गर्भ धारण न करें।

मनु महाराज ने भी तीन रजो दर्शन (अर्थात १४वें, १५वें, १६वें के बाद विवाह की अनुमति दी है—

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत् कुमार्यृतुमती सती।
ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम्॥

(मनु ९-८९)

अर्थात सतिकन्या ऋतुमती होने पर तीन वर्ष तक अच्छे पति की प्रतीक्षा करे। इसके बाद माता-पिता के सहयोग न मिलने पर स्वयं अपनी जाति और गुण वाले वर का वरण कर ले।

पुनश्च, अच्छे वर-वधू न मिलने पर लड़की-लड़के अनमेल विवाह कभी न करें चाहे जीवनभर अविवाहित रहें।

काममामरणात्तिष्ठेत् गृहे कन्यर्तुमत्यपि।
न चैवेनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित्॥

(मनु०, ९-८८)

अर्थात चाहे लड़का-लड़की मरणपर्यन्त कुमारे रहें परन्तु विपरीत गुण-स्वभाव वाले विवाह कभी न करें;

सनातनधर्म में शुभ लग्न में ही विवाह होता है क्योंकि लग्न पत्र मँगाने और भेजने का कारण वैज्ञानिक है। कोई भी ग्रह जन्म कुण्डली में जिस भाव में होता है, उस भाव का फल देने के साथ-साथ जिस भाव पर दृष्टि डालता है उस भाव का फल भी प्रदान करता है।

वर-वरण—सनातन हिन्दूधर्म में कन्या के भाई या पिता वर वरण करते हैं। बौद्धधर्म में यह प्रस्ताव किसी भी पक्ष से आ सकता है।

चयन प्रस्ताव की स्वीकृति—सनातनधर्म में प्रायः कन्या पक्ष के लोग वर के घर वर-वरण (चयन) करने जाते हैं जब कि बौद्धधर्म में चयन किसी के भी घर पर हो सकता है—"दोनों पक्ष भली-भाँति देखभाल एवं सन्तुष्टि करके अकरणीय कार्यों पर आपस में सहमति के पश्चात ही चयन की पुष्टि हेतु किसी भी पक्ष के निवासस्थान, सुविधाजनक स्थान या बुद्ध विहार में समाज के साथ इकट्ठे हों।" (बौद्ध चर्चा पद्धति)

सनातनधर्म में वर-वरण का कार्य कलश-स्थापन एवं पूजन तथा आचमन से प्रारम्भ होता है।

मन्त्र पढ़ कर वर-वरण करने वाला अपने तथा पूजन-सामग्री पर जल छिड़कता है। पंडित स्वस्तिवाचन पढ़ते हैं। बारी-बारी से पुनः दोनों पक्ष (वर और कन्या के पिता या बड़ा भाई) गौरी-गणेश का पूजन करते हैं। तत्पश्चात कन्या का पिता या भाई वर का पैर धोता है तथा ओ३म् भुञ्जन्ति मन्त्र से वर के ललाट में रोरी लगाता है तथा गले में पुष्पों की माला पहिनाता है।

(१) बौद्धधर्म में न कलश स्थापन वा पूजन होता है।

(२) न गौरी-गणेश पूजन होता है।

(३) न वर का पैर धोया जाता है न ललाट में चन्दन। रोली, अक्षत लगाया जाता है न गले में पुष्पों की माला पहिनाई जाती है

(४) न ब्राह्मणों को दान दिया जाता है।

(५) न कोई उपहार वर को दिया जाता है।

(६) गौरी-गणेश के स्थान पर बौद्धधर्म में बुद्ध की पूजा होती है। त्रिशरणा सहित पंचशील ग्रहण कराया जाता है। वर की स्वीकृति ली जाती है।

(७) वर का चरण भी नहीं धोया जाता है।

महास्थविर भदन्त बोधानन्द के अनुसार—बौद्ध समाज में त्रिशरण-पंच शील ग्रहण करके, दोनों पक्षों की संतुष्टि एवं अकरणीय कार्यों को नहीं करते हुए, विवाह सम्बन्ध किये जाने की घोषणा उपस्थित समाज में की जाय। चयन की स्वीकृति हो जाने पर उस पर कायम रहना अत्यन्त आवश्यक है।

तिथि-निर्धारण—किसी योग्य बौद्ध उपासक की सलाह से दोनों पक्ष दोनों पक्षों की सुविधा को ध्यान में रखते हुए विवाह-तिथि निश्चित करें। (वही)

स्थान-निर्धारण—विवाह का स्थान कन्या का निवास, समीपतम बुद्ध विहार, ऐतिहासिक या सामूहिक स्थान ही निश्चित करें। (वही)

टिप्पणी—स्थान-निर्धारण सनातनधर्म से भिन्न नहीं है।

आवश्यक सामग्री—विवाह के पूर्व कन्या पक्ष को एक बुद्ध प्रतिमा, पुष्प, पाँच मोमबत्तियाँ, धूपवत्ती, बोधिवृक्ष के पाँच पत्ते, काषाय या सफेद धागे, एक थाली, एक लोटा, दो फूलों के हार तथा अन्य फूल-मालायें व कुछ फूल मँगा कर रख लें।

टिप्पणी—उपरोक्त सभी सामग्री सनातनधर्म में भी प्रयोग की जाती हैं।

बुद्ध प्रतिमा के स्थान पर गणेश प्रतिमा या गौरी-गणेश का पूजन होता है। मोमबत्तियों के स्थान पर दीप और धूपबत्ती के स्थान पर हवन होता है। बुद्ध प्रतिमा का पूजन या गणेश का पूजन भिन्न लगते हुए भी समान लक्ष रखता है। अर्थात वीतराग पुरुषों का-सा आचरण अपनाना होता है। मोमबत्ती या दीपक दोनों का एक ही उद्देश्य प्रकाश करना है, आरती उतारना है धूपबत्ती या धूप के जलाने का भी समान उद्देश्य यानी सुगन्ध बिखेर कर वातावरण को शुद्ध करना है।

बारात की संख्या—बारात की संख्या कम से कम हो जिसमें अधिक से अधिक बौद्ध हों।

टिप्पणी—सनातनधर्म में भी दोनों बातें पाई जाती हैं। संख्या बारात की कम से कम हो यह सनातनधर्मी भी चाहता है।

वह भी अपनी बारात में ज्यादातर ऐसे लोगों को चाहता है जो शाकाहारी हों और जिनके स्वागत-सत्कार में परेशानी न हो।

विवाह का समय—बौद्धधर्म में विवाह दिन में होता है—"किसी भी समय दिन में करें।" (वही)

टिप्पणी—सनातनधर्म में विवाह दिन और रात दोनों में हो सकता है। फिर भी विवाह प्रायः रात के समय में होता है कारण रात में—

(१) लोगों को फुरसत रहती है।

(२) बिना शामियाना वगैरह के भी खुले आकाश में विवाह सम्पन्न हो सकता है।

विवाह-स्थल—कहीं भी हो सकता है। हाँ, वहाँ ऊँचे स्थान पर बुद्ध की मूर्ति या चित्र कर दिया जाता है। बारात सीधे उसी स्थल पर पहुँचती है।

टिप्पणी—सनातन धर्म में विवाह-स्थल कन्या का घर होता है। बुद्ध के स्थान पर गणेश का पूजन होता है। धर्म व संघ का भी यही अर्थ है दोनों (वर व कन्या) बुद्ध धर्म व संघ की शिक्षाओं का पालन करें। सनातनधर्म में गौरी जैसी पतिव्रता व गणेश जैसा मातृभक्त बालक हेतु बार-बार गौरी-गणेश की पूजा होती है। ताकि लोग उनका आदर्श अपनायें।

विवाह-विधि—पूज्य भिक्षु या योग्य बौद्ध उपासक को चाहिये कि वह वर-कन्या को उनके अभिभावकों सहित सफेद वस्त्रों में बुलाये। विशेष परिस्थिति में कन्या अन्य रंग का वस्त्र धारण कर सकती है। उनके आने पर अभिभावकों सहित वर कन्या नमो तस्स भगवतो कहलवाकर तीन बार पंचांग प्रणाम कराके त्रिशरण तथा पंचशील ग्रहण कराने के बाद वर-कन्या से अगरबत्तियाँ (धूपबत्ती) या मोमबत्ती जलवायें और पुष्प अर्पण करवा कर बुद्ध-पूजा करायें।

समर्पण-विधि—इसके बाद बौद्ध भिक्षु या उपासक वर के पिता का दाहिना हाथ सीधी अवस्था में (चित्त) और उसके ऊपर वर का दाहिना हाथ इसी अवस्था में रखवायें। वर के हाथ के ऊपर कन्या का दाहिना हाथ उल्टी अवस्था में रखवायें। कन्या के पिता का हाथ उसी अवस्था में रखवायें। यदि वर की माँ उपस्थित हो तो उसका दाहिना हाथ वर के पिता के हाथ के ऊपर और यदि कन्या की माँ उपस्थित हो तो उसका दाहिना हाथ कन्या के हाथ के ऊपर रखवायें। हाथों के नीचे एक थाल रखवायें।

टिप्पणी—ऐसी परम्परा सनातनधर्म में भी है।

कन्या के माँ-बाप द्वारा समर्पण-विधि—त्रिरत्न (बुद्ध, धर्म और संघ) की पावन स्मृति या भावना पर उपस्थित समाज को साक्षी मानकर अपनी प्रिय पुत्री को आपकी पुत्रवधू के रूप में समर्पित करते हैं। आज से इसके सुख-दुख एवं सभी प्रकार माता-पिता तुल्य संरक्षण का उत्तरदायित्व आप को सौंपते हैं।

हमे आशा और विश्वास है कि हमारा यह सम्बन्ध मधुर और दोनों परिवारों की सुख-समृद्धि में सहायक होगा।

साधु...........साधु...........साधु

टिप्पणी—उक्त समर्पण की प्रथा सनातनधर्म में भी है।

वर के माँ-बाप द्वारा अनुमोदन—त्रिरत्न (बुद्ध, धर्म, संघ) की पावन स्मृति व भावना को कर, उपस्थित समाज को साक्षी मानकर आपके द्वारा सौंपे गये उत्तरदायित्व को सहर्ष स्वीकार करते हैं और वचन देते हैं कि अपनी इस पुत्रवधू के सुख संरक्षण का पूरा ध्यान रखेंगे। हमें भी आशा और विश्वास है कि हमारा यह सम्बन्ध मधुर और दोनों परिवारों की सुख-समृद्धि में सहायक होगा।

साधु...........साधु...........साधु

टिप्पणी—सनातन धर्म में कन्या वर को सौंपी जाती है अत: वही संरक्षण का आश्वासन देता है।

कन्या द्वारा समर्पण—त्रिरत्न की पावन स्मृति के साथ उपस्थित समाज को साक्षी मानकर मैं अपने को श्री....जी की पत्नी के रूप में स्वीकार करके जीवनभर इनके साथ रहने की प्रतिज्ञा करती हूँ।

साधु...........साधु...........साधु

टिप्पणी—यह वर और कन्या द्वारा एक-दूसरे को समर्पण की विधि सनातन-धर्म में भी है।

वर द्वारा अनुमोदन—त्रिरत्न की पावन स्मृति व भावना के साथ, उपस्थित समाज को साक्षी मानकर मैं, अपने को श्रीमती......... जी को पति रूप में समर्पित करता हूँ तथा इन्हें पत्नी के रूप में स्वीकार करके, जीवनभर इनके साथ रहने की प्रतिज्ञा करता हूँ।

साधु...........साधु...........साधु

टिप्पणी—यह प्रथा भी सनातनधर्म में है।

आशीर्वादात्मक गाथाओं का पाठ—तत्पश्चात भिक्षु या उपासक निम्न गाथाओं का सस्वर पाठ करते हुये लोटे का जल एत्रित हाथों पर इस तरह से डालता रहे कि जल थाल में इकट्ठा होता रहे—

इच्छित पत्थितं तुय्हं खिप्पमेव समिज्झतु।
सव्वे पूरेन्तु संकप्पा, चन्दो परसो यथा॥

सव्वीतियो विवज्जन्तु सव्व रोगो विनस्सतु।
माते भवत्वन्तरायो सुखी दीघायुको भव॥

भवतु सव्व मगलं रखन्तु सव्व देवता।
सव बुद्धानु भावेन सदा सोत्थि भवन्तु ते॥

भवतु सब्ब मंगलं रखन्तु सब्ब देवता।
सब्ब संघानु भावेन सदा सोत्थि भवन्तु ते॥

(१) अर्थात तुम्हारी चाही हुई सभी वस्तुएँ तुम्हें शीघ्र प्राप्त हों। तुम्हारे चित्त के सभी संकल्प पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान पूरे हों।

(२) सभी आपदायें दूर हो जायँ, सभी रोग नष्ट होवें। तुम्हारा कोई विघ्न न हो, तुम सुखी व दीर्घायु होवो।

(३) तुम्हारा सब तरह मंगल हो, सब देव तुम्हारी रक्षा करें, सब बुद्ध, धर्म, संघ के अनुभाव से सदा तुम्हारा कल्याण हो। इसके पश्चात सभी अपने हाथ अलग कर लें।

टिप्पणी—सनातनधर्म में भी आचार्य तथा बड़े-बूढ़े आशीर्वाद देते हैं।

वर-वधू की प्रतिज्ञायें—

वर की प्रतिज्ञायें—त्रिरत्न की पावन स्मृति व उपस्थित समाज को साक्षी मान कर मैं प्रतिज्ञा करता हूँ।

(१) तव सम्मानाय पटिजानामि = मैं आपका (अपनी पत्नी का) सम्मान करने की प्रतिज्ञा करता हूँ।

(२) अनवमानाय पटिजानामि = मैं आपका (अपनी पत्नी का) अपमान नहीं करने की प्रतिज्ञा करता हूँ।

(३) अनतिचरियाय पटिजानामि = मैं मिथ्या आचरण नहीं करने की प्रतिज्ञा करता हूँ।

(४) इस्सरिय वोस्सगेन तव सन्तुट्ठिकातुम पटिजानामि = मैं आपको सम्यक आजीविका द्वारा कमाए धन-दौलत से सन्तुष्ट रखने की प्रतिज्ञा करता हूँ।

(५) अलंकारानु पादानेन तव सन्तुट्ठिका तुम पटिजानामि = मैं आपको अलंकार आदि देकर संतुष्ट रखने की प्रतिज्ञा करता हूँ।

मैं इन पाँचों प्रतिज्ञाओं का पालन करूँगा।

साधु…… …………साधु…………………साधु

टिप्पणी—उपरोक्त सनातनधर्म में वर द्वारा की जाने वाली प्रतिज्ञाओं का सार है।

वधू की प्रतिज्ञायें—त्रिरत्न की पावन स्मृति व भावना कर उपस्थित समाज को साक्षी मानकर मैं प्रतिज्ञा करती हूँ

(१) सुसंविहिता कम्मन्ता भविस्मामि = मैं अपने घर के सभी कार्यों को भली-भाँति करने की प्रतिज्ञा करती हूँ।

(२) संगहित परिजना भविस्मामि = मैं परिवार के लोगों की भली-भाँति देख-रेख करने की प्रतिज्ञा करती हूँ।

(३) अनतिचारिणी भविस्मामि = मैं मिथ्याचार से विरत रहकर अपने पति की विश्वासपात्र रहने की प्रतिज्ञा करती हूँ।

(४) सम्मतं अनुरक्खनं करिस्सामि = मैं आपके उपर्जित धन-दौलत की रक्षा करने की प्रतिज्ञा करती हूँ।

(५) दक्खा च अनलसा च सव्व किच्चेसु भविस्मामि = मैं घर के सभी कार्यों में दक्ष (निपुण) और आलस्यरहित रहने की प्रतिज्ञा करती हूँ।

मैं इन पाँच प्रतिज्ञाओं का पूर्णा रूप से पालन करूँगी।

साधु .... साधु .... साधु

टिप्पणी—ये प्रतिज्ञायें सनातनधर्म में भी वधू करती है।

तत्पश्चात वधू से वर के गले में और वर से वधू के गले में फूलों के हार पहनवायें। माल्यार्पण के साथ ही विवाह पूर्णरूप से सम्पन्न हो जाता है।

टिप्पणी—सनातनधर्म में सात प्रतिज्ञायें पत्नी से पति करता है और पति से पत्नी पॉच प्रतिज्ञायें करती है जबकि बौद्धधर्म में दोनों पाँच-पाँच प्रतिज्ञायें ही करते हैं। प्रतिज्ञाओं की संख्या में अन्तर होते हुए भी उनके तथ्यों में अन्तर नहीं है।

अन्तर

(१) सनातनधर्म में संरक्षण का भार वर का ज्येष्ठ भ्राता चुनरी ओढ़ा कर (प्रतीक रूप में) लेता है जबकि बौद्धधर्म में वर का पिता

(२) बौद्धधर्म में वर-वधू पत्थर पर पैर रख कर यह घोषणा करते हैं कि हमारे सम्बन्धों का आधार दृढ़ है।

(३) बौद्धधर्म में ध्रुव का दर्शन करा कर उन्हें ध्रुव के समान अपनी-अपनी प्रतिज्ञाओं पर अचल रहने की शिक्षा नहीं दी जाती है।

(४) बौद्धधर्म में ब्राह्मणों और अनाथों की जगह भिक्षुओं को दान दिया जाता है।

(५) बौद्धधर्म में वर सिन्दूर दान देकर यह घोषणा नहीं करता है कि मै इस कन्या से प्यार करता हूँ।

विवाहोपरान्त के आवश्यक-व्यवहार—विवाह सम्पन्न हो जाने पर वर और वधू हाथ जोड़कर उपस्थित जन-समूह को नमोबुद्धाय या प्रणाम करें।

संस्कार करने वाला बौद्धाचार्य "जय मंगल अट्ठगाथा" कहते समय प्रत्येक बार तं तेजस भवतु ते जय मंगलानि, कहते कहते वर-वधू पर भूलों की वर्षा कराते रहें और अन्त में सभी से तीन बार वर-वधू सुखी होन्तु कहलवायें।

साधु .... साधु .... साधु

तदुपरान्त बौद्धाचार्य वर-वधू के दाहिने हाथ में परित्राण सूत्र बाँधें अथवा वर-वधू एक-दूसरे के हाथों में सूत्र बाँधें। परित्राण सूत्र बाँधते समय निम्न गाथा बोलें।

सब्बे बुद्धा बलप्पत्ता पच्चेकानञ्च यं बलं।
अरहन्तानञ्च तेजेन रक्खं बन्धामि सब्ब सो॥

(बौद्धचर्या पद्धति, भदन्त बोधानन्द महास्थविर)

अर्थ—सभी प्रकार बल प्राप्त बुद्ध, प्रत्येक बुद्धों के बल से और सबी अरहतों के तेज से सभी प्रकार आरक्षता बाँधता हूँ।

टिप्पणी—यह प्रथा सनातनधर्म में भी है वहाँ भी आचार्य आशीर्वाद देता व स्वास्तिवाचन पढ़ता है।

वर-वधू का वर के घर पहुँचना—जब वर-वधू वर पक्ष के घर पहुँचे तो उससे भगवान बुद्ध की प्रतिमा को पंचांग प्रणाम कराके अगरबत्ती, मोमबत्ती, व पुष्पों से पूजा करायें। इससे वे स्वयं अथवा योग्य बौद्ध उपासक से त्रिशरण, पंच शील ग्रहण करें तथा उपस्थित ज्येष्ठ ज्ञाति बन्धुओं को प्रणाम कर आशीर्वाद लें।

इसके बाद आशीर्वाद देते हैं। सब प्रकार से तुम लोगों का मंगल हो, सब देवतागण तुम लोगों की रक्षा करें। सब बुद्धों के अनुभाव से, धर्म तथा संघ के अनुभाव से तुम लोगों का सदा कल्याण हो॥ १, २॥

जो कुछ दुर्निमित, अमंगल, अपशकुन, पशु-पक्षियों का शब्द, पाप-ग्रह और भयानक दु:स्वप्न हैं, वे सब भगवान बुद्ध के अनुभाव से विनाश को प्राप्त हों॥ ३॥

धर्म के अनुभाव से विनाश को प्राप्त हों और संघ के अनुभाव से विनाश को प्राप्त हों॥ ४॥

आयु, आरोग्य, स्वर्ग और परम सुख निर्वाण तुम्हें प्राप्त हों॥ ५॥

तुम सब प्रकार के रोग, संताप और वैरों से मुक्त होकर परम सुख और शान्ति लाभ करो॥ ६॥

महा दिव्यशक्तिसम्पन्न आकाशवासी एवं भूमिवासी देवगण और नागगण तुम लोगों को निरुज और सुखी रहने में सहायता करें॥ ७॥

शाक्यों (समर्थों) के आनन्दवर्धक भगवान शाक्य सिंह बुदध ने जिस प्रकार बोधि वृक्ष के नीचे जय लाभ किया है, उसके आनुभाव से तुम लोगों का जय मंगल हो॥ ८॥

बुद्ध बल प्राप्त सम्यक् सम्बुद्धों तथा प्रत्येक बुद्धों का जो बल है एवं अर्हन्त अर्थात बुद्ध श्रावकों का जो तेज है, उनके प्रभाव से तुम लोगों का सदा कल्याण हो॥ ९॥

तुम्हारी इच्छित और प्रार्थित सब वस्तुएँ तुम्हें जल्दी प्राप्त हों। चित्त के सकल्प पूर्णमासी के चन्द्रमा की तरह पूर्ण हों॥ १०॥

(बौद्धचर्या पद्धति से उद्धरित विवाह संस्कार)

लौकिक रीति—भदन्त बोधानन्दजी आगे लिखते हैं—विवाह आदि मांगलिक कार्यो के अवसर पर मकान और मण्डप की सजावट उत्तमोत्तम व्यंजनों से कुटुम्बियों व इष्ट-मित्रों का प्रति भोजन, गाना बजाना, आनन्द-उत्सव इत्यादि लौकिक कृत्य भी करना चाहिये किन्तु यह स्मरण रहे कि आनन्दोसव मनाते समय बेहोश न हो जाना चाहिये कि मर्यादा का अतिक्रमण हो जाय। जैसे कि रूढ़िवादी उपासक और अन्ध परम्परा के भक्तों के यहाँ इस अवसर पर गन्दी गालियों का गाना, नशे का पीना, भाँड़ वेश्या का नचाना और आतिशबाजी आदि में धन नष्ट किया जाता है। (वही)

टिप्पणी—(१) सनातनधर्म में परित्राण सूत्र व पुष्प हार आदि पहिनाने का कार्यक्रम विवाह के पूर्व होता है जबकि बौद्धधर्म में विवाह के बाद।

(२) आचार्य का आशीर्वाद दोनों में होता है।

(३) बौद्धधर्म में घर पहुँचने पर बुद्ध पूजा होती है। जबकि सनातनधर्म में गौरी-गणेश, दुर्गा, सूर्य, आदि की पूजा होती है।

(४) लौकिक रीति दोनों में होती है।

(५) गाना, बजाना आदि दोनों में होता है।

(६) सनातनधर्म में ब्राह्मणों को और बौद्धधर्म में भिक्षुओं को दान दिया जाता है।

(७) सनातनधर्म में कन्या वर से सात माँगें माँगती है और वर कन्या से पाँच माँगें माँगता है जबकि बौद्धधर्म में दोनों (कन्या व वर) पाँच-पाँच माँगें माँगते हैं।

(८) माँगे समान—दोनों धर्मों की माँगों में भी समानता है।

बौद्धधर्म में रीति-रिवाजों को सरलता और सादापन प्रदान करने का प्रयत्न किया गया है। सनातनधर्म भी इसी ओर अग्रसर है। प्राचीन धर्म होने के नाते इसमें विषमताएँ आना स्वाभाविक था।

बौद्धधर्म नवीन होने के कारण अवांछित चीजों को छोड़ सका परन्तु जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त सभी संस्कार सनातनधर्म में निहित हैं।

मृतक संस्कार—

परित्राण सुनाना—मरणासन्न व्यक्ति को बौद्ध भिक्षु परित्राण सुनाते और यथाशक्ति चीवर दान कराते हैं। यदि परित्राण पाठ सुनते-सुनते उस व्यक्ति की मृत्यु हो जाय तो यह उसके लिये शुभ समझा जाता है।

बौद्ध भी मृतक को श्मशान ले जाने के पूर्व हिन्दुओं की तरह नहलाते, सुगंधित द्रव्य लगाते और कफन देते हैं तब भिक्षु को बुलाते हैं। भिक्षु उपस्थित व्यक्तियों को त्रिशरण, पंचशील प्रदान करते हैं निम्नोक्त गाथाओं के उच्चारण के साथ कुछ श्वेत वस्त्र दान कराते हैं। इसे मृतक वस्त्र कहते हैं।

जिस प्रकार हिन्दू दान करते समय गडुआ से थाली में शनैः-शनैः जल गिराता है उसी प्रकार बौद्ध भी जल थाली में गिराता है और भिक्षु गाथा पढ़ते हैं। सनातनी हिन्दुओं की भाँति बौद्ध भी संकल्प पढ़ते हैं—

संसाररूपी दुःख-चक्र से छूटने के लिये हम पंचशील ग्रहणकर अपने परलोक गत पिता (माता, मामा, भ्राता, भागिनी इत्यादि जिसके उद्देश्य से दान करना हो उसका यहाँ नाम लेना चाहिये) के उद्देश्य से मृतक वस्त्र भिक्षु (एक से अधिक होने पर भिक्षु संघस्स कहना चाहिये) को दान करते हैं। (बौद्धधर्म पद्धति संस्कार परिच्छेद)

इस दान का फल हमारे ज्ञातियों को प्राप्त हो और वे सुखी हों। जैसे कोई ऊँचे स्थान पर टिका हुआ मेघ का बरसा हुआ पानी नीचे की ओर गिरता है वैसे ही इस दान का फल भी हमारे पितरों को प्राप्त हो।

जिस प्रकार जल पूर्ण नदियों का प्रवाह समुद्र को परिपूर्ण करता है उसी प्रकार इस दान का फल भी हमारे उस पुण्य का अनुमोदन करे।

आकाश और पृथ्वी स्थित महा ऋद्धि-सम्पन्न देवगण और नाग गण हमारे इस पुण्य का अनुमोदन करके भगवान बुद्ध के शासन धर्म और देशना की रक्षा करें।

टिप्पणी—सनातनधर्मी नवीन वस्त्र का दान कर मृतक के वस्त्र व खटिया नाई को दान करते हैं।

इस पुण्य कर्म के द्वारा सब प्राणी सुखी हों। इस प्रकार दान हो जाने पर भिक्षु उपस्थित व्यक्तियों को गाथाओं द्वारा अनित्य भावना का उपदेश करते हैं—

समस्त संस्कार (वस्तु मात्र) अनित्य है। उत्पन्न होना और नाश होना उसका स्वभाव है। उत्पाद एवं निरोध निरन्तर होता रहता है।

इस परिवर्तनशील संसार से मुक्त (निर्वाण) होना ही परम सुख है।

इस लोक में चक्षु-इन्द्रिय, दुःख का कारण या दुःख सत्य है। लाभ अलाभ, यश, अयश, निन्दा, प्रशंसा और सुख-दुःख ये सब (अष्ट लोकधर्म) अनित्य, अनात्म और परिणाम धर्म वाले हैं। इससे प्रिय रूप और सात (सुख) रूप, तृष्णा मन में उत्पन्न (पुनर्जन्म का कारण) होती है। इस तृष्णा का निरोध करने से निर्वाण होता है। बाकी ग्यारहों का भी इसी प्रकार अर्थ है। केवल चक्षु की जगह दूसरे ग्यारह आयतनों के नाम क्रमशः हो जायेंगे। यथा श्रोत, घ्राण, जिह्वा, काय, रूप, शब्द, गंध, रस, स्पर्श, मन, और धर्म (मन के विषय दुःख सुखादि)। (वही)

इस अनित्य देशना के बाद मृतक की अर्थी श्मशान ले जाते हैं। अर्थी के साथ चलने वाले लोग अनित्य भावना की गाथाओं के उच्चारण और अर्थों का चिन्तन करते हुए जाते हैं। वे सब बडे सावधान और गम्भीरता के साथ चलते है

श्मशान पहुँच कर चिता लगाते और उस पर शव को रखते हैं। शव के सम्मानार्थ यहाँ जो उपस्थित होते हैं बौद्ध भिक्षु उन्हें त्रिशरण सहित पंचशील प्रदान करते हैं। तथा अनित्य भावना का उपदेश करते हैं।

टिप्पणी—यदि घर पर मृतक-वस्त्र दान नहीं किया गया तो यहाँ पर किया जाता है।

तत्पश्चात कर्पूर, अगर, चन्दनादि कुछ सुगन्धित वस्तुओं के साथ चिता मे आग लगाई जाती है। बौद्धधर्म में जलाने अथवा गाड़ने की दोनों प्रथायें प्रचलित हैं जिसको जो सुविधा हो वह करे। सनातनधर्म में भी जलाने, गाड़ने और जल प्रवाह की विधियाँ हैं परन्तु वह वैज्ञानिकता लिये हैं जैसे साँप काटे व्यक्ति को जल प्रवाह (जल में टाँग देते हैं) या गाड़ते हैं ताकि विष दूर हो जाय और व्यक्ति जो विष से मृतक-सा लगता है जीवित हो जाय। जल और मिट्टी दोनो विष नाशक हैं। सनातनधर्म में मरने के बाद दसवें दिन शुद्ध होता है ग्यारहवें दिन महाब्राह्मण को खिलाया जाता है। बारहवें दिन जाति भाइयों का भोज होता है, तेरहवें दिन ब्राह्मण भोजन होता है पुनः मसवारा, छमाही और वर्ष भर पूरे होने पर वर्षी होती है जबकि बौद्धधर्म में मरने के सातवें दिन साप्ताहिक क्रिया होती है। इसके अतिरिक्त मासिक, छःमासिक और वार्षिक सनातनधर्म के समान क्रियाएँ भी की जाती हैं। केवल ब्राह्मणों की जगह इसमें बौद्ध भिक्षुओं को खिलाया जाता है। इन क्रियाओं की विधि यह है कि उपासक (गृहस्थ) बौद्ध भिक्षुओं को भोजन कराते हैं और चीवर आदि परिधानों का दान करते हैं तथा भोजन के सब व्यंजनों में से थोड़ा-थोड़ा अंश निकाल कर एक पत्तल में रख, किसी मैदान में पशु-पक्षियों के लिये रख देते हैं। फिर जिस मृत व्यक्ति के उद्देश्य से यह क्रिया की जाती है, उसके लिये इस पुण्य का निम्नोकत गाथाओं द्वारा उत्सर्ग करते हैं और अनुमोदन एवं सद्भावना करते हैं बौद्ध भिक्षु मन्त्र पढ़ते जाते हैं और दायक गड़वे में जल लेकर किसी पात्र में छोड़ता जाता है।

टिप्पणी—इस दिन यथाशक्ति असहाय, असमर्थ, दुःखी, अनाथों को दान किया जाता है तथा कुटुम्ब भोजन होता है। ये सारी क्रियायें सनातनधर्म से मिलती हैं।

उत्सर्ग मन्त्र—

संसार कान्तारो दुक्खतो मुंचित्वा निव्वागं सच्छिकरणात्थाय इमानि पंच शीलानि समादयित्वा मम परलोक गतस्स पितुस्स उद्देस्सेन पंचशीलानि समादयित्वा मम परलोक गतस्स पितुस्स उद्देस्सेन एतानि दानवत्थूनिसद्धि पिडदानंदेम॥ १ ॥

इदं में ज्ञातीनं होतु सुखिता होन्तु ज्ञातयो॥ २ ॥ तीन बार

उन्नमे उदकं वट्टं यथा निन्नं पवंत्तति॥ ३ ॥

एवमेव इत्तो दिन्नं पेतानं उपकप्पति ॥ तीनबार

यथा वारि वहा पुरा परिपूरेन्ति सागरं।

एवमेव इत्तो दिन्नं पेतानं उप कप्पति ॥ ४ ॥ तीन बार

संसाररूपी दुर्गम वन के दुःखों से मुक्त होकर निर्वाण साक्षात्कार करने के लिये पंचशील आदि ग्रहण पूर्वक अपने पर लोकगत पिता के उद्देश्य से (माता भ्राता इत्यादि जिसके उद्देश्य से दान करना हो, उसका नाम यहाँ लेना चाहिये) इन दानीय वस्तुओं के साथ भिक्षुओं को भोजन दान करते हैं।

इस दान का फल हमारी जाति को प्राप्त हो और वे सुखी हों। जैसे ऊँचे स्थान पर टिका हुआ जल या मेघ का बरसा हुआ पानी नीचे की ओर गिरता है, वैसे ही इस दान का फल भी हमारे पितरों का उपकार करेगा।

जिस प्रकार जल पूर्ण नद-नदियों का प्रवाह सागर को परिपूर्ण करता है, उसी प्रकार इस दान का फल भी हमारे पितरों का उपकार करेगा।

पुण्यानुमोदन और सद्भावना

किसी विशेष दान पुण्यादि सत्कर्म करने के बाद पुण्यानुमोदन और पुण्य वितरण पूर्वक सबके हित और सुख की कामना नीचे लिखी गाथाओं द्वारा करनी चाहिये।

इस पुण्य कर्म के प्रभाव से जब तक निर्वाण प्राप्त हो, तब तक हमें दुष्ट पुरुषों का संग न हो। सत्पुरुषों का सत्संग लाभ हो।

हमने जो कुछ पुण्य-कर्म किया है उसके प्रभाव से श्रेष्ठ गुण सम्पन्न हमारे उपाध्याय, आचार्य, उपकारी, व्यक्ति, माता, पिता, प्रिय बन्धु-बांधव, मित्र-शत्रु, मध्यस्थ और गुणवान व्यक्तिगण, ब्रह्मा, मार (कामदेव) इन्द्र, लोक पाल और सब देवगण, भवाग्र से लेकर अवीचि तक के मध्य में जितने भी प्राणी हैं वे सब सुखी हों और निर्वाण लाभ करें। उचित समय पर मेघ जल बरसायें, धान्य और सम्पत्तियोंसे धरती परिपूर्ण हो, सब प्रकार से जगत स्मृद्धिशाली हो और राजा लोग धार्मिक हों। (वही, पृ० १२८-२९)

इसके बाद बौद्धाचार्य निम्न गाथाओं से पुण्यानु मोदन करते और आशिर्वाद देते हैं—

सो ञातिधम्मो च अयं निदस्सितो,
पेतानं पूजा च कता उलारा।
वलञ्च भिक्खूनं अनुपदिन्नं,
तुम्हे हि पुञ्ञं पसुतं अनप्पकं।
इच्छितं पत्थितं तुम्हं खिप्पमेव समिज्झतु।
सब्बे पूरेन्तु संकप्पा चन्दो पन्नरसो यथा

आयु आरोग्य सम्पत्ति, सग्गसम्पत्ति मेव च।
ततो निव्वान सम्पत्ति, इमिना ते समिज्झतु॥

पुण्यानुमोदन और सद्भावना—हमारे द्वारा अब तक जो पुण्य-संपत्ति संचित हुई है, सब देवगण, प्राणीगण और भूतगण, सर्वसम्पत्ति साधक हमारे उस पुण्य का अनुमोदन करें।

आकाश और पृथ्वी स्थित महा रिद्धि-सिद्धि सम्पन्न देवगण और नागगण हमारे इस पुण्य का अनुमोदन करके भगवान बुद्ध के शासन धर्म की सदा रक्षा करें। हमारे और दूसरे सब प्राणियों की भी रक्षा करें।

आचार्य द्वारा अनुमोदन एवं आशीर्वाद—इस पुण्य कार्य द्वारा जाति धर्म का पालन हुआ है। परलोक गत पितरों का खूब पूजा-सत्कार हुआ, भिक्षुओं की सहायता करना हुआ और अपने स्वयं भी पुण्य का संयम किया।

तुम्हारी इच्छित और प्रार्थित सब वस्तुएँ तुम्हें जल्दी ही प्राप्त हों। चित्त के सब संकल्प पूर्णमाशी की चन्द्रमा की तरह पूर्ण हों।

आयु, आरोग्य-सम्पत्ति, तथा स्वर्ग-सम्पत्ति और परम सुख निर्वाण तुम्हें प्राप्त हों।

टिप्पणी—मृत व्यक्ति की स्मृति व सत्कार के उद्देश्य से श्रद्धापूर्वक कुछ दान पुण्यादि सत्कर्म करना श्राद्ध अर्थात श्रद्धादान कहलाता है। (बौद्धचर्या पद्धति, परिच्छेद संस्कार से उद्धरित)

यज्ञ

यज्ञ एक धार्मिक प्रशिक्षण विधि है जिसमें स्वर्ग-सुख की कामना पूर्ति कराने के बहाने व्यक्ति से बहुउद्देशीय पुण्य कार्य कराये जाते हैं। पुण्य कार्यों (या परोपकार) के करने से व्यक्ति के रागद्वेष नष्ट हो जाते हैं। जब सब अपने बन जाते हैं तभी व्यक्ति परोपकार कर पाता है और सबको अपना मान लेने पर रागद्वेष के लिये अवकाश ही कहाँ रह जाता है?

रागद्वेष के नाश अथवा भवसागर पार कराने वाला होने से यज्ञ को नाव भी कहा है।

उपनिषद् काल में जन कल्याणकारी कार्यों को कम महत्त्व देने के कारण यज्ञ को फूटी नाव की संज्ञा दी जाने लगी थी—

प्लवा ह्येते अदृढ़ा यज्ञ रूपा।

कोई प्रश्न कर सकता है यदि परोपकार के कार्य व्यक्ति न करें तो क्या हानि होगी? उत्तर स्पष्ट है कि व्यक्ति और पशु को अलग करने वाली वस्तु परोपकार (धर्म) ही है। यदि व्यक्ति परोपकार करना छोड़ दे तो वह पशु बन जायगा। और फिर जिस तरह पशु भोजन करने, सोने, बलवानों को देखकर डरने तथा मैथुन करने और बच्चे पैदा करने में लगा रहता है मनुष्य भी लगा रहेगा। सभ्यतारूपी महल की सारी ईटें भहरा जायँगी। धर्म (परोपकार) विद्या, कला, विज्ञान, कृषि, व्यापार आदि सभी का नाश हो जायगा। समाज में अराजकता फैल जायगी।

यज्ञ को विश्व की नाभि भी इसीलिये कहा गया है क्योंकि इसके नष्ट हो जाने से (यज्ञीय परम्परा नष्ट होने से) समाज की वही दशा हो जायगी जो धुरे के टूटने से बैलगाड़ी की होती है।

यज्ञ का अर्थ बलिदान भी है। अपने स्वार्थों की समाज हित के लिये बलि चढ़ा देना ही सच्चा बलिदान है, यज्ञ है।

साधन साध्य की प्राप्ति कराता है लेकिन यज्ञ सनातनधर्मियों के लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति नहीं कराता है। मोक्ष की प्राप्ति पूत कर्मों के करने से होती है। यज्ञ व्यक्ति को पूत कर्म करने के योग्य बनाता है अत: उसे प्रशिक्षण की संज्ञा देना ही न्यायसंगत होगा। क्योंकि यज्ञ तो निवृत्त मार्ग में प्रवेश कराने का साधन मात्र है।

सुखाभ्युदयिकं चैव नैश्रेयसिकमेव च।
प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम्॥

(मनु० १२-८९)

अर्थात सुख और अभ्युदय को करने वाला तथा मुक्ति को देने वाला प्रवृत्ति (यज्ञ, दान, तप आदि) और निवृत्त (निष्काम भाव से जन कल्याण हेतु कूप, बावली, पोखरा, जलाशय. उद्यान, गोचर भूमि आदि का निर्माण व दान आदि) दो प्रकार के मार्ग होते हैं।

इह चामुत्र वा काम्यं प्रवृत्तं कर्म कीर्त्यते।
निष्कामं ज्ञानपूर्वं तु निवृत्तमुपदिश्यते॥

(मनु०, १२-९०)

अर्थात इस संसार में (सुखादि के लिये) स्वर्गादि प्राप्ति के लिये जो काम (शारीरिक अभिलाषा पूर्ति हेतु कर्म) किये जाते हैं उसे प्रवृत्ति और ज्ञानपूर्वक जो निष्काम कर्म किया जाता है उसे निवृत्त कहते हैं।

लघु शंख स्मृति में इसे और स्पष्ट किया गया है।

अग्निहोत्रं तपः सत्यम् वेदानाम् चैव धारणाम्।
आतिथ्य वैश्व देवं च इष्टमित्यभिधीयते॥

(लघु शंख स्मृति श्लोक, १)

अर्थात अग्नि होत्र, तप, सत्य, वेदाध्ययन आतिथ्य और वैश्व देव को इष्ट कहा गया है। इष्टेन लभते स्वर्गं मोक्षम् पूर्वे न विन्दति

निघण्टु में यज्ञ का अर्थ अनुकूलता (प्रकृति के साथ सहयोग) दान और देव पूजन कहा गया है। प्रकृति के साथ अनुकूलता का अर्थ है प्राकृतिक वस्तुओ, नदी, पहाड़, वन, उपवन, पशु पक्षी और सभी प्राकृतिक सम्पदा की रक्षा और संवर्द्धन। वायु, जल, पृथ्वी, आकाश आदि की सुरक्षा में यज्ञ सहायक है। वह वर्षा कराती है। वर्षा प्राकृतिक वस्तु की सुरक्षा और संवर्द्धन में सहायता करती है। मनुजी कहते हैं—

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्वयमु पतिष्ठते।
आदित्या जायते वृष्टि वृष्टे रन्नं ततः प्रजाः॥

अर्थात अग्नि में दी हुई आहुति सूर्य को प्राप्त होती है। सूर्य से मेघ द्वारा वर्षा होती है। वर्षा होने से अन्न पैदा होता है। अन्न से प्रजा उत्पन्न होती है।

ऐसा ही विचार भगवान कृष्ण ने गीता में प्रकट किया है—

अन्नाद भवन्ति भूतानि पर्जन्याद अन्नसम्भवः।
यज्ञाद भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्म समुद्भवम्॥

अर्थात यज्ञ क्रिया से होता है। यज्ञ से वर्षा होती है। वर्षा से अन्न उत्पन्न होता है। अन्न से प्रजा उत्पन्न होती है।

सनातन हिन्दूधर्म यज्ञ के अवसर पर पशु-पक्षियों का दर्शन शुभ बताकर उनकी सुरक्षा और संवर्द्धन की प्रेरणा प्रदान करता है। उन्हें भूल से भी देख ले तो उसको नमस्कार करे। ऐसा करने से (दर्शन से) सैकडों ब्रह्महत्या जनित पाप

नष्ट हो जाते हैं। उनके पोषण से कीर्ति मिलती है और दर्शन से धन तथा आयु बढ़ती है। इसलिये प्रयत्न पूर्वक इनका पोषण करना चाहिये।

(संक्षिप्त भविष्यपुराण, विशेषांक १-२)

पुनश्च—भविष्यपुराण में सूतजी कहते हैं—वट, अश्वस्थ, धव और बिल्व वृक्ष के पल्लवों को कलश के ऊपर रखे। आज भी प्रचलित परम्परानुसार आम, पीपल, बरगद, प्लक्ष (पाकड़) तथा गूलर ये पंच पल्लव कलश में छोड़े जाते हैं। (वही, अ०, ३-५)

यज्ञ में (इष्ट कर्मों में तो जीव जन्तुओं, वनों जलाशयों आदि की सुरक्षा का कार्य अप्रत्यक्ष रूप से कराया जाता है किन्तु पूर्त कर्मों (जन कल्याण सम्बन्धी कार्यों) में उनकी सुरक्षा और संवर्द्धन का प्रत्यक्ष रूप से कार्य कराया जाता है। वास्तव में यज्ञ कर्म तो पूर्व कर्म तक पहुँचाने वाला मार्ग है। सनातनधर्म का अन्तिम लक्ष्य अर्थात मोक्ष पूत कर्मों के करने से ही प्राप्त होता है।

वृक्ष प्रतिष्ठा यज्ञ

"वृक्ष पुत्र के समान नर्क से उद्धार करने वाले"। सूतजी कहते हैं, "ब्राह्मणो! जो व्यक्ति छाया, फूल और फल देने वाले वृक्षों का रोपण करता है या मार्ग में तथा देवालय में वृक्षों को लगाता है, वह अपने पितरों को बड़े-बड़े पापों से तारता है और रोपण कर्त्ता इस मनुष्य लोक में महती-कीर्ति तथा शुभ परिणाम को प्राप्त करता है। अतीत और अनागत पितरों को स्वर्ग में जाकर भी तारता है।" × × × × जिसके पुत्र नहीं है, उसके लिये वृक्ष ही पुत्र हैं। वृक्षारोपण कर्त्ता के लौकिक पारलौकिक कर्म श्राद्ध आदि वृक्ष ही करते हैं तथा स्वर्ग प्रदान करते हैं।

यदि कोई अस्वस्थ वृक्ष का आरोपण करता है तो वही उसके लिये एक लाख पुत्रों से बढ़कर है। (भविष्य पुराण अ०, १०-११ संक्षिप्त भविष्य पुराण विशेषांक पृ० २०५ से उद्धरित)

उद्यान प्रतिष्ठा यज्ञ—उद्यान प्रतिष्ठा यज्ञ में उद्यान लगाने के साथ-साथ उनकी सुरक्षा हेतु चारों ओर तथा बीच में मेड़ उठायी जाती है जिसे धर्म सेतु कहते हैं।

गोचर भूमि प्रतिष्ठा यज्ञ (पशु संवर्द्धन)

गोचर भूमि के महत्त्व का वर्णन करते हुए भविष्य पुराण कहता है—

शिव लोकस्तथा गावः सर्वदेव सुपूजिताः।
गोम्य एषा मया भूमिः सम्प्रदत्ता शुभार्थिना।

(संक्षिप्त भविष्यपुराण मध्यम पर्व ३/२ १३ १३)

अर्थात शिव लोक स्वरूप यह गोचर भूमि गोलोक तथा गौयें सभी देवताओं द्वारा पूजित हैं। इसलिये कल्याण की कामना से मैंने यह भूमि गौओं के लिये प्रदान कर दी है।

गोचर भूमि की रक्षा की भी व्यवस्था करनी चाहिए। उस भूमि की रक्षा के लिये पूर्व में वृक्षों का रोपण करे। दक्षिण में सेत (मेड़ बनाये) बनाये। पश्चिम मे कटीले वृक्ष लगाये और उत्तर में कूप का निर्माण करे × × × उस भूमि को जलधारा और घास से परिपूर्ण करे। (वही)

गोचर भूमि का दान ही काफी नहीं है उसका पुनः पुनः जीर्णोद्धार भी करता रहे—गोजर भूमि के नष्ट हो जाने पर, घास जीर्ण हो जाने पर तथा पुनः घास उगाने के लिये पूर्ववत प्रतिष्ठा करनी चाहिये। जिस से गोचर भूमि अक्षय बनी रहे। (भविष्य पुराण अं० २-३, संक्षिप्त भविष्य पुराण विशेषांक पृ० २२६)

जल जन्तुओं की सुरक्षा एवं संवर्द्धन 'जलाशय प्रतिष्ठा यज्ञ'

जलाशय प्रतिष्ठा यज्ञ द्वारा जल जन्तुओं की सुरक्षा और सम्वर्द्धन की व्यवस्था की जाती है—

जलाशय में मकर, ग्राह, मीन, कूर्म एवं अन्य जलचर प्राणी तथा कमल, शैवाल आदि भी छोड़े। (वही अं०, ९-११)

पुनश्च, अपने निर्मित जलाशय में जीव जन्तुओं को जल पीते और कमल आदि पुष्प को पुष्पित पल्लवित देखने वाला व्यक्ति सफल होता है—

''जो व्यक्ति हंस आदि पक्षी को कुवलय आदि पुष्पों से युक्त अपने तालाब में जल पीता हुआ देखता है और जिसके तालाब में घट, अञ्जलि, मुख तथा चंचु आदि से अनेक जीव-जन्तु जल पीते हैं, उसी व्यक्ति का जीवन सफल है।'' (वही अं०, १२७-२९)

वृषोत्सर्ग यज्ञ

सनातनधर्म पितरों के उद्धार हेतु पशु (गाय-बैलों) का संवर्द्धन कराता है—

भविष्य पुराण में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज कार्तिक और माघ की पूर्णिमा तथा तृतीया और वैसाख की पूर्णिमा एवं द्वादशी में शुभ लक्षणों से सम्पन्न वृषभ को चार गायों के साथ छोड़ने से अनन्त पुण्य प्राप्त होता है।

पुनश्च, जो वृषोत्सर्ग करता है उसके दस पीढ़ी पहिले के और दस पीढ़ी आगे के भी सत्गति को प्राप्त होते हैं।

पुनश्च, जो व्यक्ति अपने पितरों के लिये (उद्धार के लिये) वृषभ छोड़ता है वह स्वयं भी स्वर्ग को प्राप्त होता है। (भविष्यपुराण अं० १३१)

यज्ञ पूर्त कर्मों का प्रेरणास्रोत

यज्ञ में नाना प्रकार के फल, फूल, पत्तियाँ, लकड़ियाँ और द्रव्य लगते हैं जिनके उत्पादन की आवश्यकता समाज को अनुभव होती है और वह उनकी पूर्ति हेतु उनके उत्पादन, संवर्द्धन और सुरक्षा में प्रयत्नशील रहता है। यज्ञ में नाना तीर्थों के जल की आवश्यकता पड़ती है विशेष करके पुरानी नदियों, कुण्डों और जलाशय की इसलिये पुराने जलाशयों कुण्डो, कूपों आदि का जीर्णोद्धार करते रहना पड़ता है।

दूध, दही, गोमूत्र, गोबर आदि की पूर्ति हेतु गायों का पालन करना पडता है।

दान

दान धर्म का चौथा चरण है। कलियुग में तो केवल दान का ही महत्त्व है। दान लोभ को समाप्त कर देता है। भविष्यपुराण में भगवान सूर्य आरुणि को दान का महत्त्व बताते हुए कहते हैं, "हे खग श्रेष्ठ, जो दान प्राणियों को करुणा पूर्वक दिया जाता है, वह कर्मों में उत्तम है। दीन, अन्ध, कृपण, बाल, वृद्ध तथा आगन्तुकों को दिया गया दान का फल अनन्त होता है।"

दान प्रेमपूर्वक देना चाहिए

भगवान कहते हैं, याचक को प्रेमपूर्वक आधा ग्रास दिया जाय तो वह श्रेष्ठ है, किन्तु बिना प्रेम का दिया हुआ बहुत सा दान व्यर्थ है, ऐसा मनीषियों ने कहा है इसलिये अनन्त पुण्य चाहने वाले को सत्कारपूर्वक दान देना चाहिये।

पुनश्च—उदारता स्वागत, मैत्री, अनुकम्पा, अमत्सर इन पाँच प्रकार से दिया गया दान महान फल देना वाला होता है। (वही, पृ० १८१, पैरा २-३)

दान यज्ञ का एक महत्त्वपूर्ण अंग है

सभी यज्ञों में ब्राह्मणों (धर्म प्रचारकों) याचकों, असहाय, अन्धों, अपङ्गों आदि को दान देने का विधान है। महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भी दान दिया गया था—

महाराज युधिष्ठिर ने यज्ञान्त स्नान के बाद आदर के साथ लोगों को दान दिया फिर ऋत्विज सदस्य, ब्राह्मण आदि को वस्त्राभूषण दे देकर उनकी पूजा की। उन्होंने भाई, बन्धु, कुटुम्बी, नरपति, इष्ट मित्र, हितैषी और सभी लोगों की बार-बार पूजा की (संतुष्ट किया)। (वही, १०-७५-२२, २३)

इसी प्रकार पूर्त कर्मों (मन्दिर, जलाशय, उद्यान, गोचर भूमि, वृषोत्सर्ग आदि प्रतिष्ठा यज्ञों में भी दान का विधान है।

यज्ञ के अन्त में ब्राह्मणों की आज्ञा लेकर यजमान घर में प्रवेश करे अनन्तर ब्राह्मण भोजन कराये। दीन, अन्ध और कृपणों का अपनी शक्ति के अनुसार सम्मान करे (दान दे) फिर अपने बन्धु बान्धवों के साथ स्वय भोजन करे। (भविष्य पुराण, मध्यम पर्व द्वितीय भाग अं० १०)

इसी प्रकार तड़ाग यज्ञ, गोचर भूमि दान प्रतिष्ठा यज्ञ आदि में भी दान का विधान है।

तड़ाग याग—अन्त में ब्राह्मण, दीनों, कृपणों तथा कुमारिकाओं को भोजन करा कर संतुष्ट करे। (वही, अं० १९-२१)

गोचर भूमिदान प्रतिष्ठा याग—यज्ञ के अन्त में आचार्य को दक्षिणा दे। मण्डप में ब्राह्मणों को भोजन कराये। दीन, अन्ध एवं कृपणों को संतुष्ट करे। (वही अं० २, ३)

इसी प्रकार कुआ, तालाब, पोखर, नलनी (गहरे तालाब) पोशाला आदि प्रतिष्ठा याग में दान का विधान है।

देव पूजन

देव शब्द के अनेक अर्थ हैं। वेद में देव के लिये आर्य शब्द तथा असुर या खल के लिये, दस्यु शब्द का प्रयोग हुआ है। सन्तों ने देव के लिये सन्त या साधु और खल के लिये असुर या असाधु, असन्त आदि शब्दों का प्रयोग किया है।

यास्क मुनि के अनुसार परमात्मा के विभिन्न रूप ही देवता हैं—

महाभाग्याद देवताया एक एव आत्मा बहुधा स्तूयते।
एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति॥

भगवद्गीता में देव शब्द का यज्ञ के संदर्भ में प्रयोग हुआ है—

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयःपरमावाप्स्यथ॥ (३-११)

अर्थात तुम लोग इस यज्ञ द्वारा देवताओं की उन्नति करो (और) वे देवता लोग तुम लोगों की उन्नति करें। इस प्रकार आपस में कर्त्तव्य समझकर उन्नति करते हुए परम कल्याण को प्राप्त होवोगे। (भगवद्गीता, ३-११)

अब प्रश्न उठता है कि जिन देवताओं की उन्नति में हमें सहायता करने को (पूजा करने को) कहा गया है उनकी पहचान क्या है। उनके लक्षण क्या हैं? इस का उत्तर भगवान ने गीता के सोलहवें अध्याय में दिया है। ऐसे देवता का लक्षण बताते हुए वह कहते हैं—

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥ (भगवद्गीता, १६-१)

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहोनातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत॥

जो डर से रहित हैं, दानशील हैं, जिनमें न माया है, न अभिमान है. जो ज्ञानी और संयमी हैं, जो तेजस्वी हैं, शक्तिमान हैं, क्रोध रहित है, क्षमाशील हैं इत्यादि।

उपरोक्त की तुलना हम यदि धर्म के दस लक्षणों से करें तो दोनों में बहुत साम्य दिखाई देता है।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेय शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमऽक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

उपरोक्त देव शब्द की व्याख्या में भगवान कृष्ण ने बताया है कि देव में दैवी सम्पदा और उसके साथ ही सात उस दैवी सम्पदा का दूसरे में प्रवेश कराने या प्रेरणा देने की शक्ति (तेज) भी हो।

कहना अप्रासंगिक न होगा कि ऐसे देव की पूजा करने के लिये (यज्ञ में) भगवान बुद्ध भी कहते हैं—"जो ब्राह्मण पुण्य की कामना से दान देता है, उसे चाहिये कि समयानुसार उन्हें हव्य का दान करे जो कि अनासक्त हो लोक में विचरण करते हैं तथा जो अकिंचन, ज्ञानी तथा संयमी हैं।

जो कि दान्त, विमुक्त, निष्पाप, तृष्णा रहित तथा सारे सांसारिक बन्धनों से रहित हैं।

जो कि राग, द्वेष और मोह को त्याग कर क्षीणाश्रव हो गये हैं तथा जिन्होंने ब्रह्मचर्य वास को पूर्ण कर लिया है।

जिनमें न माया है न अभिमान है, जो लोभ रहित, नमता रहित, और तृष्णा रहित हैं।

जो कि तृष्णा में पँसे हुए नहीं है और जो संसार रूपी बाढ़ को पार कर आसक्ति रहित हो विचरण करते हैं। आदि आदि"

ऐसे तथागत ही यज्ञ में पूड़ी चिवरा खाने के योग्य हैं। (सुत्तनिपाव (सुन्दरिक भारद्वाज) सुत्त, ९-२४ तक)

लोगों कि यह धारण भी भ्रान्तिपूर्ण है कि यज्ञ में हिंसा होती है। महाभारत में इस बात को स्पष्ट किया गया है कि हिंसा वैदिक नहीं है। यह धूर्त्तों द्वारा प्रक्षिप्त किया गया अंश है—

सुरा मत्स्याः परोर्मांसं द्विजातीनां बलिस्तथा।
धूर्तै प्रवर्तितं यज्ञे नेतद वेदेषु कथ्यते॥ (महाभारत)

भगवद्‌गीता में भगवान ने जिन यज्ञों का वर्णन किया है उनमें (देव यज्ञ, ज्ञान यज्ञ, संयम यज्ञ, इन्द्रिय यज्ञ (विषय हवन रूप यज्ञ) द्रव्य यज्ञ, तप यज्ञ, योग यज्ञ, स्वाध्याय रूप ज्ञान यज्ञ, प्राणायाम यज्ञ में भी कहीं हिंसा नहीं दिखाई पड़ती है। वे शरीर, मन और इन्द्रियों की क्रिया द्वारा ही सम्पन्न होते हैं।

स्वयं भगवान कृष्ण यही बात बताते हुए कहते हैं—

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे।
कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ॥ (गीता, ४-३२)

अर्थात ऐसे बहुत प्रकार के यज्ञ वेद की वाणी में विस्तार किये गये हैं उन सब को शरीर, मन और इन्द्रियों की क्रिया द्वारा ही उत्पन्न होने वाले जान।

आगे के श्लोक में इसे और भी स्पष्ट करके बताया गया है कि द्रव्य यज्ञ से ज्ञान यज्ञ श्रेष्ठ है—

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते॥

(गीता, अं० ४-३३)

अर्थात हे अर्जुन सांसारिक वस्तुओं से सिद्ध होने वाले यज्ञ से ज्ञान रूप यज्ञ सब प्रकार से श्रेष्ठ है क्योंकि सम्पूर्ण यावन्यमात्र कर्म ज्ञान में शेष होते हैं अर्थात ज्ञान उनकी पराकाष्ठा है। यही बात भगवान बुद्ध भी तो कहते हैं।

इस प्रकार हम दृढ़ता से कह सकते हैं कि मन, वाणी और इन्द्रियो से सम्बन्ध रखने वाले (संयम सम्बन्धी) यज्ञों का बौद्ध धर्म से कोई विरोध नहीं हो सकता है। भगवान बुद्ध ने भी इनके संयम (रूपी यज्ञ) का समर्थन किया है।

यस्सिन्द्रियानि समथं गतानि, अस्सा यथा सारथिना सुदन्ता।
पहीनमानस्स अनासवस्स, देवापि तस्स पिहयन्ति तादिनो॥

(धम्मपद, अरहन्तवग्गो, ५)

अर्थात सारथी द्वारा दमन किये गये अश्व के समान जिसकी इन्द्रियाँ शान्त हो गई हैं, वैसे अहंकार रहित अनाश्व सन्त की देवता भी स्पृहा करते हैं।

विषय हवनरूपी यज्ञ—इन्द्रियों के विषय (रूप, रस, गन्ध, रस और स्पर्श प्राणियों को मोहित कर लेते हैं अतः भगवान भिक्षुओं को सलाह देते हैं कि इनसे राग न करो—

रुपा च सद्दा च रसा च गन्धा, फस्सा च ये संमद यन्ति सत्ते।
एतेसुधम्मे सु विनेय्य छन्दं, कालेन सो पविसे पात रासं॥

(सुत्त निवात धमिक सुत्त, १४-१२)

अर्थात रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श जो प्राणियों को मोहित कर लेते हैं, इन बातों में राग त्याग कर समय-समय पर प्रात राश (प्रातः का भोजन) के लिये गाँव में प्रवेश करे।

अन्त:करण संयम रूप यज्ञ (मन का संयम)

जो चित्त का संयम न कर पायेंगे उनकी प्रज्ञा भी पूर्ण नहीं हो सकती—

अनवट्ठितचित्तस्सि सद्धम्मं अविजानतो।

परिप्लवपसादस्स पञ्ञा न परिपूरति ॥ (धम्मपद, चित्तवग्गो, ६)

अर्थात जिसका चित्त अस्थिर है, जो सद्धर्म को नहीं जानता, जिसकी श्रद्धा चचल है, उसकी प्रज्ञा पूर्ण नहीं हो सकती।

द्रव्य यज्ञ

पूर्व काल में ब्राह्मणों द्वारा किये जाने वाले द्रव्य यज्ञों की प्रशंसा करते हुये भगवान बुद्ध कहते हैं—

तण्डुलं सयनं वत्थं, सप्पि तेलं च याचिय।
धम्मेन समुदानेत्वा, ततो यञ्ञ मकप्पयुं।
उपट्ठितस्मि यञ्ञस्मि, नास्सुगावो हनिंसुते॥

(सुत्तनिपात ब्राह्मण धम्मिक सुत्त २, ७-१२, पृ० ७४)

अर्थात तब उन्होंने धार्मिक रीति से चावल, शयन, वस्त्र, घी और तेल की याचना कर, उन्हें एकत्र कर यज्ञ का संविधान किया है। उन्होंने उस उपस्थित यज्ञ में गौवों की हत्या नहीं की। (ब्राह्मण धम्मिक सुत्त २७, १२, पृ० ७५)

तप यज्ञ

"गीता में मन, वाणी और इन्द्रियों के संयम को तप कहा गया है।" बुद्ध भगवान भी उसे मानते हैं—

खन्ती परमं तपो तितिक्खा, निब्बानं परम बदन्ति बुद्धा।

(धम्मपद, बुद्धवग्गो, ६)

सहनशीलता और क्षमाशीलता परम तप है, बुद्ध लोग निर्वाण को परम (उत्तम) तप बताते हैं।

योग यज्ञ

बौद्धधर्म की उत्पत्ति ही योग से हुई है। सेनार्त का कथन है कि, "बौद्ध धर्म का उदगम स्थान योग है। इसमें यम नियम, ध्यान, धारणा समाधि और ऋद्धि सिद्धि का समावेश है।" (बौद्ध दर्शन, आचार्य नरेन्द्र देव)

ज्ञान यज्ञ (पवित्र पुस्तकों का पारायण)

बुद्धधर्म में भी सभी धार्मिक और सामाजिक कार्यों में परित्राण सूत्रों का पाठ सुनाते है। यह भी कहा गया है कि यदि मरणासन्वन व्यक्ति इन्हें सुनते-सुनते मर जाय तो उसे बड़ा लाभ प्राप्त होता है। (बौद्धचर्या पद्धति)

गायाम यज्ञ

प्राणायाम का बौद्धधर्म में भी महत्त्व है। बौद्ध आगमों में से इसे आना-पान स्मृति कर्म स्थान कहा है। आचार्य नरेन्द्रदेवजी अपनी पुस्तक **बौद्ध दर्शन** के पंचम अध्याय में विशुद्ध मग्गो नामक ग्रन्थ का उद्धरण देकर कहते है— "प्राणायाम योग का एक उत्कृष्ट साधन है। बौद्धागम में इसे आना पान स्मृति-कर्म स्थान कहा है। 'आन' का अर्थ है साँस लेना और अपान का अर्थ है साँस छोड़ना। इन्हें आश्वास प्रश्वास भी कहते हैं। स्मृतिपूर्वक आश्वास-प्रश्वास की क्रिया द्वारा जो समाधि में निष्पन्न की जाती है, वह आनापान स्मृति कहलाती है।"

(बौद्ध धर्म दर्शन आचार्य नरेन्द्रदेव, अध्याय ५, आनापान स्मृति)

पंच यज्ञ और बौद्धधर्म

सनातनधर्म ने गृहस्थों के लिये पंच यज्ञों का विधान किया है—

अध्यापनं ब्रह्म यज्ञं पितृ यज्ञस्तु तर्पणाम्।
होमो दैवो बलि भोतैं नृयज्ञोऽतिथि पूजनम्॥

अर्थात पढ़ना-पढ़ाना (गीता, रामायण, भागवत, वेद, उपनिषद आदि का) ब्रह्म यज्ञ है। तर्पण पितृ यज्ञ है। देवताओं का पूजन और हवन देव यज्ञ है। बलिवैश्व देव तथा पञ्च बलि भूत यज्ञ है और अतिथि सत्कार मनुष्य यज्ञ है। स्वाध्याय अर्थात धार्मिक पुस्तकों और सूत्रों का पठन पाठन बौद्ध धर्म में भी महत्त्व रखता है—

परित्राण सूत्रों का पाठ-भदन्त बोधानन्दजी अपनी पुस्तक **बौद्ध चर्चा पद्धति** में लिखते हैं—"परित्राण उन मांगलिक और कल्याणकारी वचनों का पाठ है जिनके विषय में एक दीर्घकालीन परम्परा से यह विश्वास किया जाता है कि उनके पाठ से विघ्न-बाधायें दूर होती हैं। ये कल्याणकारी वचन बहुत ही मधुर शिक्षाओं से पूर्ण हैं। गृहस्थों के विवाहादि मांगलिक कार्यों के अवसर पर तथा श्राद्ध (स्मृति दिवस) इत्यादि के समय एवं रोगादि बाधाओं की शान्ति के निमित्त बौद्ध आचार्य परित्राण देशना करते हैं।" (पृ० २०)

ललित विस्तर नामक ग्रन्थ में निगम परिवर्त (अध्याय २७) में उसके पढ़ने से अनेक लौकिक और आलौकिक लाभ बताये गये हैं। यथा—हे मार्षो (सुहृदों), जो कोई इस ललित विस्तर धर्म पर्याय को अंजलि बाँधकर आदर करेगा, उसे आठ उत्कृष्ट धर्मों का लाभ होगा किन आठ धर्मों का? उत्कृष्ट रूप का लाभ होगा? उत्कृष्ट बल का लाभ होगा, उत्कृष्ट परिवार का लाभ होगा, उत्कृष्ट प्रतिभा का लाभ होगा उत्कृष्ट नैष्क्रम्य लोक के प्रति निष्कामना का लाभ

होगा, उत्कृष्ट चित्त परिशुद्धि का लाभ होगा, उत्कृष्ट समाधि पद का लाभ होगा, उत्कृष्ट प्रज्ञा प्रति भास का लाभ होगा। (ललित विस्तर २७, निगम परिवर्त)

इतना ही नहीं जहाँ यह धर्म पुस्तक रहती है वहाँ (उस घर में) तथागत सर्वदा विराज मान रहते हैं—

राजा ह्यं सर्व सुभाषितानां
योऽभ्युदगतः सर्व तथागतानां
गृहे स्थित स्तस्य तथा गतः सदा
तिष्ठे दिदं यत्र हि सूत्र रत्नं (वही, ५०२)

अर्थात यह सब सुभाषितों का राजा है, जो सब तथागतों द्वारा प्रगट हुआ है। जिसके यहाँ यह सूत्र रत्न रहता है उसके घर में तथागत सर्वदा विराजमान रहते हैं।

इसी प्रकार सद्धर्म पुण्डरीक नामक ग्रन्थ के पढ़ने सुनने का लाभ बताया गया है।

भगवान गौतम बुद्ध सतत समितामियुक्त से बोले, "जो कोई इस धर्म पर्याय को धारण करेगा, पढ़ेगा, लिखेगा या उसकी देशना करेगा, वह कुल पुत्र या कुल कन्या आठ सौ चक्षुर्गुणों को प्राप्त करेगी, बारह सौ क्षेत्र गुणों को प्राप्त कहेगी, आठ सौ घ्राण गुणों को प्राप्त करेगी, बारह सौ जिह्वा गुणों को प्राप्त करेगी, आठ सौ काय गुणों को प्राप्त करेगी तथा बारह सौ मनो गुणों को प्राप्त करेगी। इन अनेक शत गुणों से उस की छहों इन्द्रियाँ परिशुद्ध एवं सुपरिशुद्ध हो जायगी। वह इस प्रकार परिशुद्ध को प्राप्त, माता-पिता से उत्पन्न इस प्राकृत मांस चक्षु के द्वारा पर्वतों एवं वनखण्डों से सम्पन्न त्रिसाहस्त्र महा साहस्त्र लोक धातु को बाहर, भीतर नीचे, अवीचि (नामक) महा नरक तक और ऊपर भवाग्र तक पूर्ण रूप से देखेगा।"

अब यदि कोई यह प्रश्न करे कि सनातन हिन्दूधर्म में जिन पुस्तकों के पढ़ने से पुण्य प्राप्त होता है उन्हें पढ़ने से बौद्ध धर्म पुण्य नहीं बताता है फिर सदृश्यता कैसे स्थापित हो सकती है तो उस का उत्तर यही है कि यद्यपि किताबें भिन्न-भिन्न हैं उनकी शैली भी भिन्न-भिन्न हैं परन्तु पाप से दूर कराने और सदाचार पालन में लगाने सम्बन्धी उनके उद्देश्यों में भिन्नता नहीं है। दोनों कामना पूर्ति होने का लालच देकर कामनाहीन बनाने का उपाय बताते हैं।

पितृ-तर्पण

माता-पिता, पितामह-पितामही, नाना-नानी आदि (मातृ पक्ष और पितृ पक्ष के मृतक आत्माओं) को तृप्त करना तर्पण कहलाता है। उनके नाम पर

भोजन, वस्त्र आदि दान करना श्राद्ध कहलाता है। यद्यपि तर्पण की प्रथा सभी धर्मों में नहीं है लेकिन श्राद्ध की प्रथा किसी न किसी रूप में सभी धर्मों में है।

भदन्त बोधानन्दजी महा स्थिवर अपनी पुस्थक बौद्ध चर्या पद्धति मे लिखते हैं—''मृत व्यक्ति की स्मृति व सत्कार के उद्देश्य से श्रद्धापूर्वक कुछ दान पुण्यादि सत्कर्म करना श्राद्ध अर्थात श्रद्धा दान कहलाता है। यों तो जीवित अवस्था में सर्वत्र ही एक दूसरे के प्रति प्रेम-व्यवहार प्रदर्शित करते हैं, परन्तु मरने के बाद भी अपने पूज्य, स्वजन, सम्बन्धियों के स्मरण तथा सम्मानार्थ कुछ दान पुण्यादि सत्कर्म करना सभ्य और शिष्ट समाज का कर्त्तव्य होता है।''

(बौद्ध चर्या पद्धति संस्कार परिच्छेद)

वास्तव में मृत अथवा जीवित माता-पिता को तृप्त करना संतुष्ट करना ही तर्पण है। इस सम्बन्ध में मौ दगल्यायन को बुद्ध द्वारा दिया गया उपदेश मनन करने योग्य है—''चाहे माता पिता जीवित हो या मृत्यु को प्राप्त हो गये हो। सतान के प्रेम पूर्ण कार्यों से उन्हें प्रसन्नता होती है, वे तृप्त होते हैं। उनके अच्छे गुणों को जीवन में अपनाना चाहिये। गरीबों और विकलांगों की सहायता करना, असहाय लोगों से मिलना, बन्दियों को मुक्त करना, बधिकों के हाथों मरने वाले पशुओं को मुक्त कराना, वृक्षादि लगाना, ये सब करुणापूर्ण कार्य हैं, जो वर्तमान स्थिति में परिवर्त्तन ला सकते हैं और अपने माता-पिता की आत्मा को सुख पहुँचा सकते हैं।'' (Old Path & While Clouds, अं० ६६ जहँ जहँ चरण परे गौतम के पृ० ४३९-४०)

वृक्षारोपण से पितरों का उद्धार होता है यह बात भगवान बुद्ध भी कहते हैं और सनातन धर्म भी कहता है। भविष्य पुराण में सूतजी कहते हैं, ''ब्राह्मणों। जो व्यक्ति छाया, फूल और फल देन वाले वृक्षों को रोपण करता है या मार्ग मे या देवालय में वृक्षों को लगाता है, वह अपने पितरों को बड़े-बड़े पापों से तारता है।''

(भविष्यपुराण, अं० १०-११)

पुनश्च—जिसके पुत्र नहीं है उसके लिये वृक्ष ही पुत्र हैं।　　(वही)

देव पूजन और हवन (अग्नि होत्र)

देव पूजन—भदन्त बोधानन्द महास्थविर अपनी पुस्तक बौद्धचर्या पद्धति में लिखते हैं—''बुद्ध धर्म के उपासकों को चाहिये कि प्रतिदिन प्रातःकाल और सायं काल शौचादि से छुट्टी पाकर घर में अथवा निकट के किसी बौद्ध विहार अथवा बाहर किसी उपयुक्त एकान्त स्थान में बैठकर अपने और जगत के कल्याण के लिये इस पुस्तक में लिखे हुए पूजा मन्त्रों को पढ़ते हुए भगवान बुद्ध का पुष्प धूप आदि से पूजन करे।''

हवन (अग्निहोत्र)—अग्निहोत्र को भगवान बुद्ध अच्छी चीज मानते हैं। वह गायत्री मन्त्र के जप को भी पुण्यदायक मानते हैं। यज्ञों में मुख अग्नि होत्र है, छन्दों में, वेदों में मुख (मुख्य) सावित्री है। (गायत्री मन्त्र है) हाँ भगवान गौतम बुद्ध मध्यम मार्गी है वह अधिक धूप या चन्दन और अन्न आदि यज्ञ में छोड़ने के समर्थक नहीं हैं। फिर भी धूप जलाना क्या यज्ञ का लघु रूप नहीं है ?

टिप्पणी—सनातन हिन्दूधर्म वीतराग विषयं वा चित्तं का सिद्धान्त मानता है। वह किसी भी वीतराग की पूजा-अर्चना या ध्यान द्वारा बीत राग वन जाने के सिद्धान्त में विश्वास करता है भगवान बुद्ध को तो वह भगवान विष्णु (यज्ञो वै विष्णुः) का एक अवतार ही मानता है।

अतः बुद्ध की पूजा को हम भी भगवान की पूजा मानते हैं। देव पूजन मानते हैं।

बलि

बौद्धधर्म में पशु-पक्षियों के लिये रोज बलि नहीं निकाली जाती है लेकिन मृतक संस्कार के साप्ताहिक, मासिक, छः मासिक और वार्षिक क्रिया के अवसर पर बलि निकाली जाती है। उपरोक्त क्रियाओं की विधि बताते हुये भदन्त बोधानन्दजी कहते हैं, ''उपासक बौद्ध भिक्षुओं को भोजन कराते हैं और चीवर आदि परिष्कारों का दान करते हैं तथा भोजन के सब व्यंजनों में से थोड़ा-थोड़ा अंश निकाल कर एक पत्तल में रख किसी मैदान में पशु-पक्षियों के लिये रख देते हैं।'' (बौद्धचर्या पद्धति—संस्कार परिच्छेद)

अतिथि-सत्कार

सनातन हिन्दूधर्म की भाँति बौद्धधर्म में भी अतिथि का सत्कार न करने वाले को नीच कहा गया है। भगवान अग्निक भारद्वाज ब्राह्मण को यही समझाते हुए कहते हैं—''जो भोजन के समय आये हुए ब्राह्मण या श्रमण से क्रोध से बोलता है और उसे कुछ नहीं देता उसे वृषल।'' (नीच जाने माने, १५)

पुनश्च—जो ब्राह्मण अथवा किसी भी अन्य भिखारी को झूठ बोल कर धोखा देता है, उसे वृषल जानें। १४

पुनश्च—जो दूसरे के घर जाकर स्वादिष्ट भोजन करता है और उसके आने पर आदर सत्कार नहीं करता, उसे वृषल जाने। १३

(सुत्त निपात, बसल सुत्त, १७-१५, १४, १३)

यही नहीं, अतिथि सत्कार काल दान के अन्तर्गत (बौद्धधर्म में) आता है। काल दान पाँच प्रकार के होते हैं—

(१) आये हुए साधुजन का यथोचित सेवा-सत्कार करना।

(२) धर्म-प्रचार के लिये किसी दूसरे देश में गमन करने वाले भिक्षुओ की यथासम्भव सहायता करना।

(३) रोग से पीड़ित भिक्षुओं की सेवा सुश्रूषा करना।

(४) दुर्भिक्ष के समय भिक्षुओं की भोजन आदि द्वारा रक्षा करना।

(५) फसल के उत्पन्न होने पर नये फल-अन्न आदि को पहले भिक्षुओं को दान देना (बौद्ध चर्या पद्धति दान परिच्छेद महन्त बोधानन्द महास्थविर द्वारा लिखित)

टिप्पणी—नयी फसल तैयार होने पर सनातनधर्म भी नवान्न यज्ञ या दार्श पूर्णमास यज्ञ का विधान है। इसी का बिगड़ा रूप होली है। नवान्न यज्ञ में पहले तैयार अन्न को हवन करते हैं। ब्राह्मणों, अन्धों, असहायों, निर्धनों, कृपणों को भोजन करा कर तब खाते हैं।

क्या यज्ञों में अनेक देवता पूजे जाते हैं ?

यज्ञों में अनेक देवता नहीं पूजे जाते हैं। वास्तव में देवताओं की उपासना भी ब्रह्म की उपासना है। यास्क मुनि ने इसे स्पष्ट किया है—

महाभाग्याद देवताया एक एव आत्मा बहुधा स्तूयते।
एक स्यात्म भनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति॥

(निरुक्त दैवत काण्ड, अं० ७)

अर्थात परमात्मा के विभिन्न रूप ही देवता हैं। वेद में भी एक ही ब्रह्म के अनेक नाम बताये गये हैं।

भविष्यपुराण, उत्तर पर्व में यही बात भगवान कृष्ण राजा युधिष्ठिर को भी बताते हैं—

यो ब्रह्मा स हरिः यो हरिः स महेश्वरः।
महेश्वरः स्मृतः सूर्यः सूर्यः पावकः उच्यते॥
पावकः कार्तिकेयोऽसौ कार्तिकेयो विनायकः।
गौरी लक्ष्मी सावित्री शक्तिः भेदाः प्रकीर्तितः॥
देव देवीं समुद्दिश्य य करोति व्रतं नरः।
न मेस्तत्र मन्तव्यः शिव शक्ति मयं जगत्॥

(भविष्यपुराण, उत्तर पर्व, २०५-११, १२, १३)

अर्थात मैंने व्रतों में अनेक देवताओं का पूजन आदि किया परन्तु वास्तव में इन देवों में कोई भेद नहीं जो ब्रह्म वही विष्णु, जो विष्णु वही शिव, जो शिव वही सूर्य, जो सूर्य वही अग्नि, जो अग्नि वही कार्तिकेय, जो कार्तिकेय

वही गणपति अर्थात इन देवताओं में कोई भेद नहीं ये सब उसी एक ब्रह्म के अनेक नाम है।

इसी प्रकार गौरी, लक्ष्मी, सावित्री, आदि शक्तियों में भी कोई भेद नहीं है। चाहे जिस देवी देवता के उद्देश्य से व्रत करे पर भेद बुद्धि न रखे क्योंकि सब जगत शिवशक्तिमय है।

टिप्पणी—सभी अवतार भी भगवान के भिन्न-भिन्न रूप हैं। अतः उनकी पूजा एक ही परमात्मा की पूजा है।

यज्ञ केवल कामनापूर्ति का साधन नहीं। क्योंकि क्रोध, ईर्ष्या, कामना, कदाचार असत्य और शोषण को दूर करके यज्ञ करने पर सफलता मिलती है—

अताहि मन्मुष विर्णा सुधुवां समु पारणो इतं रातं सुतं दिन।

(ऋ० ८-३२-२१)

अर्थात क्रोध, ईष्या, यश चाहने वाले, कदाचारी, कटुभाषी और दूसरों के अधिकार का अपहरण करने वाले को यज्ञ का लाभ नहीं होता अतः उन्हें छोड़कर ही यज्ञ करना चाहिये।

कामनारहित होकर संसार (विष्णु के विराट या साकार रूप) की सेवा (यज्ञ) अर्थात भगवान के निमित्त (भगवान की आज्ञा पालन के रूप में) परोपकार रूप यज्ञ करने से लाभ होता है कामना पूर्ति हेतु यज्ञ तो व्यक्ति को आवागमन चक्र में बाँधता है—

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर॥

(भगवद्गीता, ३-९)

अर्थात विष्णु के निमित्त किये हुये कार्य के सिवाय अन्य कर्म में (लगा हुआ ही) यह मनुष्य कर्मों द्वारा बँधता है इसलिये हे अर्जुन आसक्ति से रहित हुआ उस परमेश्वर के निमित्त कर्म का (उसकी आज्ञा पालन के रूप में) भली प्रकार आचरण कर।

कामनारहित होकर संसार के कल्याण के लिये परोपकार करना ही वास्तविक यज्ञ है। कामनापूर्ति हेतु यज्ञ व्यक्ति को आवागमन के चक्र में बाँधता है।

भगवान बुद्ध के शिष्य अग्निक भरद्वाज ने इसी कारण यज्ञ करना छोड़ दिया था क्योंकि वे यज्ञ कामना पूर्ति और विषय योग स्वर्ग के भोग हेतु किये जाते थे। अग्नि की पूजा करने और उसमें आहुति देने का फल है संसार चक्र में प्रवृति एवं विविध मानसिक आधियों की संगति इसीलिये मैंने अग्नि पूजा छोडी।

यज्ञ श्रमिकों को जीविका प्रदान करती है

(१) यज्ञ में नाना प्रकार के कुण्ड खोदे जाते हैं।

(२) चन्दन आदि विभिन्न पेड़ों की लकड़ियाँ जलाई जाती हैं।

(३) नाना प्रकार के पुष्प, पल्लव और औषधियाँ मँगाई जाती हैं।

(४) माली नाना प्रकार के पुष्प हार बनाते हैं।

(५) नाना प्रकार के कलशों एवं दीपों की आवश्यकता पड़ती है। (पूजन हेतु) सोने के कलशों हेतु सुनार की, मिट्टी के कलशों हेतु कुम्हार की।

(६) पूजन हेतु पंडितों की।

(७) आसन हेतु कुशों की।

(८) धूप के लिये पेड़ों की।

(९) पवित्र नदियों एवं कुण्डों का जल भी लाया जाता है। साथ ही पूर्त कर्मों में वृक्षारोपण, उद्यान लगाना, गोचर भूमि छोड़ने, जलाशय बनवाने, कूप बावली, पौशाला धर्मशाला आदि बनवाने में बहुत मनुष्यों की आवश्यकता पड़ती है। और इन उपरोक्त कार्यों का पारिश्रमिक तथा दक्षिणा भी निर्धारित होती है। अतः इनके लिये पारिश्रमिक और दक्षिणा समुचित रूप से देनी पड़ती है। इस प्रकार बहुतों को उनकी योग्यतानुसार जीविका मिलती है।

अब प्रश्न उठता है कि यदि यज्ञ का इतना महत्त्व है और यहाँ तक कि उसे भवसागर में पार करने वाली नाव कहा गया है तो फिर भगवान बुद्ध ने (जिनके बाप दादे यज्ञ को महान पुण्य कर्म मानते थे) यज्ञ की प्रशंसा क्यों नहीं की उसे संसारचक्र में बाँधने वाला क्यों कहा? उस काल में यज्ञ ने अपने तीनों उद्देश्यों (प्राकृति वस्तुओं, वन उपवन, पशु-पक्षी, नदी सरोवर व मानव की सुरक्षा और संवर्द्धन दान और देव पूजन) को भुला दिया था। इसी कारण भगवान बुद्ध ने उस का विरोध किया। वास्तव में वह यज्ञ नहीं यज्ञ में व्याप्त बुराइयों के विरोधी थे। यज्ञों में पशु हिंसा, पेड़ों की अन्धाधुंध कटान ने अनुकूलन के उद्देश्य पर पानी फेर दिया था। नामधारी लोभी मांसाहारी ब्राह्मणों के आदर सत्कार और दान ने यज्ञों को पापकर्म में बदल दिया था।

अयोग्य ब्राह्मणों के आदर सत्कार ने यज्ञों को असफल बना दिया था तभी तो भगवान बुद्ध को यज्ञ के योग्य ब्राह्मणों के गुणों को (पहचान को) बताना पडा ताकि यज्ञ सफल हो जाय—

''जिनमें हिंसा भाव नहीं है, जिनका चित्त राग रहित परिशुद्ध है, जो काम भोगों से मुक्त है स्त्यानान जिनसे दूर हो गया है।''

जो वासनाओं को नाश करने वाले हैं, जन्म और मृत्यु के जानकार हैं, जो मौनेय व्रत से युक्त मुनि हैं, वैसे के यज्ञ में आने पर—

"आँखें नीची करके, दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार करो। अन्न और पेय से उनकी पूजा करो इस प्रकार दक्षिणा सफल होती है।"

सुत्तनिपात सुन्दरिक भरद्वाज सुत्त (३,४, २९, ३०, ३१)

अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यदि यज्ञ बुरी चीज होती तो भगवान बुद्ध उसकी सफलता हेतु उपाय क्यों बताते? भगवान तो यज्ञों में आई तत्कालीन बुराइयों को दूर करना चाहते थे ताकि यज्ञ अपना खोया हुआ पहला स्वरूप प्राप्त कर सके।

व्रत और उपवास

व्रत का अर्थ है संकल्प करना, दृढ़ निश्चय करना। किसी चीज का सकल्प करना या दृढ़ निश्चय करना? किसी को दुःख न देने का, झूठ न बोलने क, कटु वचन न कहने का, पीठ पीछे बुराई न करने का, कुछ कहके बदल न जाने का, चोरी न करने का, चोरी करने हेतु न उकसाने का, मैथुन न करने का, शराब आदि नशीली चीजें न पीने का, जुआ न खेलने का, भोजन न करने का अर्थात मन से, वचन से, कर्म से (या शरीर से) किसी को कष्ट न पहुँचाने का (पाप न करने का) संकल्प करना व्रत है।

वाराह पुराण में भी व्रत को मानसिक, वाचिक और कायिक तीन वर्गों में बाँटा गया है।

व्रत परिचय के लेखक स्वर्गीय श्री हनुमानप्रसाद शर्मा वाराह पुराण का उद्धरण देते हुये लिखते हैं, ''वाराह पुराण में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, और सरलता को मानसिक व्रत कहा गया है, एक भुक्त, नक्त व्रत, निराहारादि को कायिक व्रत तथा मौन एवं हित, मित, सत्य, मृदु भाषण को वाचिक व्रत कहा गया है।''

उपरोक्त उद्धरण को यदि ध्यान से देखें तो पता लगेगा कि कायिक व्रत (जिसमें केवल एक समय, या केवल रात में भोजन करने का व्रत किया जाता है) या बिल्कुल आहार नहीं किया जाता है, को ही उपवास नहीं कहा जाता है।

केवल भोजन न करना अथवा एक समय ही (भोजन करना) या मुसलमानों की तरह केवल रात में ही भोजन करना काफी नहीं है। वास्तव में किसी भी इन्द्रिय को उसका भोजन न देना सच्चा उपवास है। आँख से बुरी चीज (निषिद्ध वस्तु जैसे स्नान करती हुई स्त्री) न देखना, कान से निषिद्ध बात न सुनना, नाक से निषिद्ध वस्तु न सूँघना, त्वचा से निषिद्ध वस्तु न स्पर्श करना, जिह्वा से निषिद्ध वस्तु (मांस-मदिरा आदि) का रस न लेना, हाथ से निषिद्ध कर्म (मार-पीट या जीव हत्या) न करना पैर से निषिद्ध स्थान (जुआ या शराब गृह या वैश्यालय आदि) को न जाना, गुप्त इन्द्रियों (गुदा, मूतेन्द्रिय) से निषिद्ध कर्म (मैथुन आदि) न करना, मन से निषिद्ध बात (हिंसा, झूठ, चोरी आदि करने को न सोचना) ही सच्चा उपवास है।

इन्द्रियों के प्रसंग से ही मनुष्य निषिद्ध (वेद या धर्म द्वारा निषिद्ध) कर्मों को करता है अतः दुष्कर्मों से बचने और सत्कर्मों को करने के लिये इन्द्रियो को नियन्त्रित करके लक्ष्य की पूर्ति में लगाना अर्थात शुभ कर्मों में लगाना तथा अशुभ कर्मों से दूर रखना आवश्यक है।

व्रत के दिन यही संकल्प किया जाता है।

ऐसे व्रत के रहने का कौन अधिकारी है?

इस की व्याख्या स्कन्दपुराण में दी गई है—

निज वर्णाश्रमाचार निरतः शुद्ध मानसः।
अलुब्धा सत्यवादी च सर्व भूत हिते रतः॥
पूर्वं निश्चमाश्रित्य यथाव कर्म कारकः।
अवेद निन्द को धीमान धिकारी व्रतादिषु॥

अर्थात व्रत रहने के वही व्यक्ति अधिकारी है जो अपने कर्त्तव्य-पालन (वर्णाश्रम) के आचार-विचार में रत रहते हों, निष्कपट, निर्लोभ, सत्यवादी, सम्पूर्ण प्राणियों का हित चाहने वाले, वेद के अनुयायी, बुद्धिमान तथा पहले से निश्चय करके यथावत कर्म करने वाले हों। (गरुड़ पुराण)

उपरोक्त नियमों का उल्लङ्घन होने से व्रत भङ्ग हो जाता है—

क्रोधात् प्रमादाल्लो भाद वा व्रत भङ्गो भवेद यदि।
दिन त्रयं न भुञ्जीत पुनरेव व्रती भवेत्॥

अर्थात व्रत आरम्भ करने के बाद यदि क्रोध, लोभ, मोह के वशीभूत हो जा तो व्रत छोड़ दे पुनः तीन दिन बाद प्रारम्भ करे।

क्षमा सत्यं दया दानं शौचं इन्द्रिय निग्रहः।
देव पूजा अग्नि हवनं संतोषः स्तेय वर्जनम्॥

अर्थात व्रत के दिनों में चोरी आदि से वर्जित रह कर क्षमा, दया, दान, शौच, इन्द्रियनिग्रह, देव पूजा अग्निहोत्र (हवन) और संतोष के काम करने उचित हैं।

सदाचार के नियम का पालन न करने अथवा निषिद्ध वस्तुओं के सेवन से व्रत भङ्ग हो जाता है—

असकृज्जलपानाञ्च सकृत्ताम्बूल भक्षणात्।
उपवासः प्रणश्येत दिवा स्वापाद्य मैथुनात्॥

(विष्णुपुराण)

अर्थात व्रत के समय बार-बार जल पीने से, दिन में सोने से, ताम्बूल चबाने से और स्त्री-सहवास से व्रत भङ्ग हो जाता है।

व्रत करते समय व्यक्ति को अपने वर्ण के गुण व कर्म का भी ध्यान रखना चाहिए यथा ब्राह्मण को व्रत रखते समय ब्राह्मण के निम्न गुण का भी ध्यान रखना चाहिये—

शान्तः सन्तः सुशीलञ्च सर्वभूते हिते रतः।
क्रोध कर्त्तु न जानाति स वै ब्राह्मण उच्यते॥

अर्थात ब्राह्मण उसे कहते हैं जो शान्त, भला, सुशील सभी जीवों के हित मे लगा रहने वाला और क्रोध करना न जानता हो।

उसे गृहस्थ धर्म के कर्त्तव्यों का भी ध्यान रखना चाहिये। उसे अग्निहोत्र, तप, सत्य, वेदाभ्यास, अतिथि-सत्कार व बलि वैश्वदेव भी करते रहना चाहिये।

अग्निहोत्रं तपः सत्यम् वेदानां चैव पालनम्।
आतिथ्यं वैश्व देवञ्च इष्टमित्याभिधीयते॥

व्रत और उपवास को देवल ने शरीर को तपा कर शुद्ध करने वाला (तप) कहा है—

वेदोक्तेन प्रकारेण कृच्छ चान्द्रायणादिभिः।
शरीर शोषणं यत् तत् तप इत्युच्यते बुधैः॥

अर्थात व्रत और उपवास के नियम पालन से शरीर को तपाना ही तप है। (व्रत परिचय पं० हनोमान शर्मा)

यद्यपि व्रत और उपवास एक-दूसरे का पूरक होने के कारण एक ही हैं तथापि व्यवहार में वे दो माने जाते हैं। उनमें अन्तर यह है कि व्रत में भोजन किया जा सकता है लेकिन उपवास में निराहार रहना पड़ता है।

सनातनधर्म में व्रत के प्रकार

सनातनधर्म में प्रायः व्रत के निम्न प्रकार हैं—

(१) पुण्य संचय वाले व्रत—जैसे एकादशी आदि

(२) पाप क्षय वाले—चान्द्रायण, प्राजापात्य व्रत, अति कृच्छ पराक व्रत आदि।

(३) सौभाग्यादि के लिये—वट सावित्री आदि।

उपवास के भी अनेक भेद हैं—

(१) एक भुक्त व्रत—इसमें केवल एक बार भोजन किया जाता है।

(२) नक्त व्रत—रात में किया जाता है। इसमें भी गृहस्थ रात्रि होने पर तथा संन्यासी और विधवा सूर्य रहते हुए।

(३) अयाचित व्रत—इसमें बिना माँगे जो कुछ मिले उसी को निषेध काल बचाकर दिन या रात में जब अवसर हो तभी (केवल एक बार) भोजन करे

(४) मित भुक में प्रतिदिन दस ग्रास (या एक नियत प्रमाण का) भोजन करें।

व्रतों में तिथ्यादि का निर्णय

स्वर्गीय पंडित हनुमानप्रसाद शर्मा ने इस विषय में निम्न निर्णय दिया है—

तिथि—सूर्योदय की तिथि यदि दोपहर तक न रहे तो वह खण्ड होती है, उसमें व्रत का आरम्भ और समाप्ति दोनों वर्जित है। इस सम्बन्ध में उन्होंने 'हेमाद्रि व्रत खण्ड सत्य व्रत से' एक प्रमाण भी दिया है—

उदयस्था तिथियां हि न भवेद् हिन मध्यगा।
सा खण्डा न व्रतानां स्यादारम्भश्च समापनम्॥
खखण्ड व्यापि मार्तण्डा यद्यखण्डा भवेत् तिथिः।
व्रत प्रारम्भणं तस्यामनस्तगुरु शुक्र युक्॥

(हेमाद्रि वृद्ध वशिष्ट)

अर्थात सूर्योदय से सूर्यास्त तक रहने वाली तिथि अखण्डा होती है यदि गुरु और शुक्र अस्त न हुए हों तो उसमें व्रत का आरम्भ अच्छा है।

इसी प्रकार व्रत सम्बन्धी कर्मों के लिये भी उन्होंने वृद्ध याज्ञवल्क्य से निम्न श्लोक उद्धृत किया है—

कर्मणो यस्य यः कालस्तत्काल व्यापिनी तिथिः।
तया कर्माणि कुर्वीत ह्रास वृद्धो न कारणाम्॥

अर्थात जिस व्रत सम्बन्धी कर्म के लिये शास्त्रों में जो समय नियत है, उस समय यदि व्रत की तिथि मौजूद हो तो उसी दिन उस तिथि के द्वारा व्रत सम्बन्धी कार्य ठीक समय पर करना चाहिये। व्रत का क्षय और वृद्धि व्रत का निश्चय करने में कारण नहीं है।

व्रत आवश्यक नक्षत्र और योग से युक्त होना चाहिये इस सम्बन्ध में वह निम्न श्लोक लिखते हैं—

या तिथिर्ऋक्ष संयुक्ता या च योगेन नारद।
मुहूर्त्त त्रय मात्रापि सापि सर्वा प्रशस्यते॥ (गोभिल)

अर्थात जो तिथि व्रत के लिये आवश्यक नक्षत्र और योग से युक्त हो तो वह ही श्रेष्ठ होती है। अपनी पुस्तक में वह यह भी लिखते हैं—

यां तिथिं समनुप्राप्य उदयं याति भास्करः।
सा तिथिं सकला गेया स्नान दान जपादिषु॥

(नारदीय)

अर्थात जिस तिथि में सूर्य उदय या अस्त हो, वह तिथि स्नान, दान, जपादि हेतु सम्पूर्ण उपयोगी होती है।

यदि उपरोक्त बातों पर मनन किया जाय तो यही निष्कर्ष निकलेगा कि व्रत की साधना संन्यास जीवन का पूर्वाभ्यास है। अहिंसा, भूमिशयन, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य का पालन, केवल एक समय अथवा बिलकुल भोजन न करना, क्रोध न करना, मन की, वचन की शरीर की दुष्कर्मों से रक्षा करना सभी उसी एक वांछित लक्ष्य मोक्ष की ओर संकेत करते हैं; क्योंकि सनातनधर्म के अनुसार मनुष्य के जीवन का लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना है। आवागमन से छुटकारा पाना है।

मम दर्शन फल परम अनूपा। जीव पावनिज सहज सरूपा॥

व्यक्ति अपनी इच्छा को प्रभु की इच्छा में (प्रभु के विराट रूप) जीव-मात्र के कल्याण में विलीन कर दे। जगत के कल्याण को ही वह अपना कल्याण समझे। अपने स्वार्थ को जगत और जगत पति के स्वार्थ में हवन कर दे। यही कारण है कि सनातनधर्म व्रत और उपवास भी जगतपति की पूजा से प्रारम्भ करता है और उन्हीं की पूजा से उसका उद्यापन भी करता है।

वह व्रत के आरम्भ में गणपति, मातृका, और पंचदेव (सूर्य, गणेश, शक्ति, शिव और विष्णु) पूजा करके नान्दी श्राद्ध करता है और व्रत देवता की मूर्ति की षोडशोपकार, दशोपचार या पंचोपचार में पूजन करता है।

प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया के क्रमशः अग्नि, ब्रह्मा, गौरी आदि और अश्विनी, भरणी, कृतिका के अश्विनी कुमार, यम, अग्नि आदि तथा वारों के सूर्य, सोम, भौमादि अधिष्ठाता हैं।

(देवल, शातातप, पृथ्वी चन्द्रोदय के आधार पर व्रत परिचय, पृ० ९)

बौद्धधर्म में व्रत और उपवास

जिस प्रकार सनातनधर्म के लोग संन्यास जीवन का (चिन्ताओं से मुक्त जीवन) आनन्द लेने के लिये व्रत और उपवास रहते हैं उसी प्रकार बौद्ध भिक्षु जीवन का आनन्द लेने हेतु उपोसथ व्रत रहते हैं।

इस उपोसथ व्रत की जानकारी के लिये सुदत्त नामक सेठ की पत्नी पद्मलक्षणा और भगवान बुद्ध का वार्तालाप अत्यन्त उपयोगी है।

सुदत्त की पत्नी पद्मलक्षणा भगवान बुद्ध से पूछती है, ''जब हम भिक्षु को घर-परिवार की चिन्ताओं से मुक्त और एक भिक्षा पात्र एवं कुछ वस्त्रों का ही स्वामी देखते हैं तो हमारी आकांक्षा होती है कि हम सादा और चिन्तामुक्त जीवन बितायें। हम आरामदायक जीवन भी बिताना चाहेंगे किन्तु हम बहुत से दायित्वों से बँधे हुए हैं। बताइये हम करें तो क्या करें?''

उपरोक्त के उत्तर में अर्थात सादा और चिन्तामुक्त जीवन का उपासक (या गृहस्थ) रहते हुए भी कैसे अनुभव किया जा सकता है? भगवान ने कहा, "उपासकों, तथागत एक उपाय सुझाना चाहते हैं जिससे आप भी मास में दो बार भिक्षु जीवन का आनन्द प्राप्त कर सकें। महीने में दो बार आप लोग मन्दिर में आ सकते हैं और अष्टाङ्गिक साधनाओं को एक दिन तथा एक रात करके देख सकते हैं।"

जब पद्मलक्षणा ने पूछा कि प्रभु यह अष्टाङ्गिक साधना क्या है तो भगवान ने बताया—

(१) जीव हिंसा न करना।

(२) चोरी न करना।

(३) संभोग से विरत रहना।

(४) असत्य भाषण न करना।

(५) मद्यपान न करना।

(६) आभूषण रत्नादि धारण न करना।

(७) बढ़िया आरामदायक बिस्तर पर न लेटना और न सोना।

(८) पराये धन का प्रयोग न करना।

इसी साधना को भगवान ने धार्मिक उपासक को और विस्तार के साथ बताया है—

(१) संसार में जो स्थावर और जंगम प्राणी हैं, न उनके प्राण की हत्या करे, न मरवाये, और न उन्हें मारने की आज्ञा दे, सभी प्राणियों के प्रति दण्ड त्यागी हो।

(२) चोरी—तब दूसरे की समझी जाने वाली चीज का चुराना त्याग दे, न चुराये। और न चुराने वाले को अनुमति ही दे। सब प्रकार की चोरी का त्याग कर दे।

(३) अब्रह्मचर्य का त्याग—विज्ञ पुरुष जलते हुए आग के गड्ढे की भाँति अब्रह्मचर्य को छोड़ दें, ब्रह्मचर्य का पालन न कर सकते हुए भी दूसरे की स्त्री का सेवन न करे।

(४) झूठ का त्याग—सभा या परिषद में जाकर एख दूसरे के लिये झूठ न बोले, न तो स्वयं झूठ बोले और न बोलने वाले को अनुमति दे, सब प्रकार के असत्य भाषण को त्याग दे।

(५) शराब का त्याग—वह शराब का पान न करे, न पिलावे, और न पीने वाले को पीने की अनुमति दे। यह जानकर कि शराब उन्मादक है।

(६) रात्रि में भोजन का त्याग-रात्रि में विकाल भोजन न करे।

(७) माला धारण न करे, न गंध का सेवन करे।

(८) चौकी, भूमि या जमीन पर सोये।

साथ ही गृहस्थ धर्म का भी पालन (सुत्तनिपात धम्मिक सुत्त १९ से २६ तक) करता रहे। इसके साथ ही धर्म से माता-पिता का पोषण करे, और किसी धार्मिक व्यापार में अपने को लगाये। (वही) भिक्षु संघ को अन्न और पेय का दान दे।

व्रत रहने की विधि

भगवान बुद्ध उपासिका पद्मलक्षणा को व्रत रहने की विधि बताते हुए कहते हैं—

(१) उस दिन भिक्षु के समान दिन में एक बार ही भोजन करेंगे।

(२) आप चलते फिरते अथवा बैठकर ध्यान कर सकते हैं।

(३) चौबीस घंटों तक सदाचार पूर्वक सचेतन ध्यानस्थ किन्तु तनावरहित शान्त और आनन्दपूर्ण जीवन बिता सकते हैं जैसे भिक्खुनियाँ अपना जीवन बिताती हैं।

पूर्ण दिन रात बीत जाने पर आप अपने घर जाकर अपना सामाजिक जीवन बिता सकते हैं, जिसमें आप त्रिरत्नों और पंचशीलों का पालन करते रहें।

टिप्पणी—यह व्रत किसी भिक्षु के निर्देशन पर घर में भी हो सकता है।

(Old Path & While Clouds, तिकन्यात जहँ जहँ चरण परे गौतम के, पृ० ४९४)

व्रत की तिथि

भगवान ने धार्मिक उपासक पद्म लक्षणा को महीने में चार बार तथा अन्य स्थान पर आठ दिन बताये हैं।

यथा भगवान धार्मिक उपासक को बताते हैं कि, "प्रत्येक पक्ष की चतुर्दशी, पूर्णिमा, अष्टमी और प्रति हार्य पक्ष (तेरस, प्रतिपदा, सप्तमी, और नवमी) को प्रसन्न मन से अष्टाङ्ग उपोसथ का पूर्ण रूप से पालन करना चाहिये।" (सुत्त निपात धम्मिक सुत्त १४-२७)

सनातनधर्म और बौद्धधर्म के व्रतों की तुलना

समानता—दोनों धर्मों के लोग व्रत रहते समय अहिंसा, सत्य अस्तेय, अपरिग्रह (दान) ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। नशे से (शराब, गाँजा, भाँग तम्बाकू आदि से) दूर रहते हैं। दोनों धर्मों के लोग इस दिन भूमि या चौकी पर लेटते, बैठते हैं। मुलायम शैय्या का त्याग करते हैं। व्रत के समय सोते नहीं हैं। एक समय ही भोजन करते हैं। श्रृंगार उबटन नहीं लगाते हैं। दोनों व्रत के

प्रारम्भ और अन्त में (प्रारम्भ और उद्यापन में) अपने-अपने इष्ट देव की पूजा करते हैं।

अन्तर—बौद्धधर्म

(१) नक्षत्र और सूर्य के उदया या अस्त तिथि का विचार व्रत रहने के समय नहीं करता है।

(२) वह केवल बुद्ध भगवान की पूजा करता है। सनातनधर्म की भाँति विभिन्न अवसरों पर विभिन्न अधिष्ठाता देवताओं की पूजा नहीं करता है।

(३) वह मध्याह्न के बाद भोजन नहीं करता है जब कि सनातनधर्मी इसका विचार नहीं करते।

(४) वह हव्य पदार्थों (फल, फूल, मूल, दूध, दही आदि) को व्रत के समय महत्त्व नहीं देता है।

✤

तीर्थयात्रा

तीर्थ शब्द तीर से बना है। तीर का अर्थ तट या किनारा है। तीर्थयात्रा के सदर्भ में तीर का अर्थ सागर का तट है। यह यात्रा भव से पार पहुँचाने वाली है। यह बार-बार जन्म से छुटकारा दिलाने वाली है।

इस प्रकार जो साधन, वस्तु या स्थान व्यक्ति को बार-बार जन्म लेने से मुक्ति दिला दे वह तीर्थ है।

सबसे पहले माता, पिता और आचार्य इस कार्य में व्यक्ति की सहायता करते हैं अतः इन तीनों को तीर्थ कहा गया है—

माता—सर्वतीर्थ मयी माता

पुनश्च— **नास्ति मातुः परंतीर्थं पुत्राणां च पितुस्तथा।**
नारायण समावेता विह चैव परत्र च॥

अर्थात पुत्रों के लिये माता तथा पिता से बढ़कर दूसरा कोई भी तीर्थ नहीं है। माता-पिता ये दोनों इस लोक में और परलोक में भी निःसंदेह नारायण के समान हैं। (पद्मपुराण, भूमि खण्ड, ६३-१३)

गुरु को भी तीर्थ कहा गया है। एक गुरु के यहाँ साथ-साथ पढ़ने वालों को समान तीर्थवासी कहा गया है। (अष्टा० अं० ४, पा० ४, सूत्र १०८)

इसी प्रकार एक गुरु को छोड़कर दूसरे के यहाँ पढ़ने वाले को काकतीर्थ कहा गया है।

रागद्वेषरहित सन्तजनों को भी तीर्थ कह कर नमस्कार किया गया है।

नमस्तीर्थ्याय च (यजु अं० १६, म० ४२)

भागवत में भी रागद्वेषरहित सन्त को तीर्थ कहा गया है। यजु अं० १६, म० ४२ में गुरु को भवसागर के पार पहुँचा कर मोक्ष प्राप्त कराने (आवागमन से मुक्ति दिलाने) हेतु पिता या तीर्थ कहा गया है।

सन्त तुलसीदास ने भी सन्त को तीर्थ और सन्तों के समाज को चलता फिरता तीर्थराज प्रयाग कहा है।

मुद मंगल मय सन्त समाजू। जो जग जंगम तीरथ राजू॥

रागद्वेषरहित भक्ति, ज्ञान, कर्म योग की शिक्षायें देने वाले व्यक्तियों को चलता फिरता तीर्थराज तथा जहाँ ठहर कर वे भक्ति, ज्ञान, कर्म की शिक्षायें लेते

है, भगवान विष्णु और शंकरजी की कथायें सुनाते हैं, धर्म की व्यावाहिक शिक्षा लेते हैं वह तीर्थ राज कहा गया है।

राम भक्ति जहँ सुरसरि धारा। सरसइ ब्रह्म बिचार प्रचारा॥

प्रयाग में स्नान करते समय भरतजी को भी यही रहस्य मालूम हुआ था कि त्रिवेणी में स्नान करने का अर्थ भगवान के प्रेम में (उसके विराट रूप अर्थात जीव-मात्र के प्रेम में मग्न हो जाना है। जीव-मात्र से प्रेम करने पर व्यक्ति के रागद्वेष नष्ट हो जाते हैं उस को फिर जन्म नहीं लेना पड़ता।

इसी प्रकार ज्ञान होने पर (कि जो ब्रह्म आत्म रूप से हमारे अन्दर विद्यमान है वही सब में है) व्यक्ति सब से प्रेम करने लगता है। उसके विषय नष्ट हो जाते हैं। धरनीदासजी ने इस ज्ञान प्राप्ति की अवस्था का वर्णन करते हुए लिखा है कि ज्ञान प्राप्त होते ही व्यक्ति के विषय छूट जाते हैं। और जीव मात्र के प्रति प्रेम पैदा हो जाता है।

ज्ञान को वान लग्यो धरनी, जन सोवत चौंकि अचानक जाग्यो।
छूटि गयो विषया विष बन्धन पूरन प्रेम सुधा रस पाग्यो॥

इसी प्रकार जमुनाजी में स्नान का अर्थ निष्काम कर्म (बिना किसी फल की आशा के यज्ञ, दान और तप) करने में मग्न होना है।

इस निष्काम कर्म से व्यक्ति का हृदय शुद्ध होता है और वह शान्ति प्राप्त करता है। गीता में भगवान कहते हैं—

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते॥

अर्थात निष्काम कर्मयोगी कर्मों के फल को परमेश्वर को अर्पित करके भगवत प्राप्ति रूप शान्ति को प्राप्त होता है और सकामी पुरुष फल में आसक्त हुआ कामना के द्वारा बंधता है।

अतः यह बात निर्विवाद है कि निष्काम कर्म व्यक्ति के हृदय को शुद्ध करके शान्ति प्रदान करता है आवागमन से मुक्ति दिलाता है।

इसी प्रकार अक्षय वट धर्म में विश्वास का प्रतीक है।

वट विश्वास अचल निज धर्मा।

तीर्थ का सबसे बड़ा लाभ सत्संग होता है। सत्संग से ही व्यक्ति बुद्धि, कीर्ति, सदगति, ऐश्वर्य भलाई आदि करने के जितने गुण हैं सब को प्राप्त करता है—

मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहि जतन जहाँ जेहि पाई॥
सो जानव सत्संग प्रभाऊ। लोकहुँ वेद न आन उपाऊ॥

(तुलसीदास)

यहां उपरोक्त बात भगवान कृष्ण भी उद्धव को समझाते हुए कहते हैं—

"प्रिय उद्धव, जगत में जितनी आसक्तियाँ हैं, उन्हें सत्संग नष्ट कर देता है।" (श्रीमद्भागवत ११-१२-१)

वास्तव में आसक्ति के नाश का उपाय व्यक्ति तभी करता है जब वह आसक्ति रहित सन्त द्वारा (राग द्वेष रहित व्यक्ति द्वारा) भक्ति, ज्ञान और निष्काम कर्म योग की शिक्षा ग्रहण करता है। और ये संकल्प रहित साधु तीर्थों में मिलते हैं।

महाभारत में भवसागर पार करने वाले (आवागमन से मुक्ति दिलाने वाले कर्मों को तीर्थ बताया गया है—

सत्यम् तीर्थं क्षमा तीर्थमिन्द्रय निग्रह।
सर्वभूत दया तीर्थ तीर्थ मार्जमेव च॥
दान तीर्थं दमस्तीर्थं संतोष तीर्थमुच्यते।
ब्रह्मचर्यं परं तीर्थं तीर्थं च प्रियवादिता॥
ज्ञानं तीर्थं धृतिस्तीर्थं तपस्तीर्थं मुदा ह्रतम्।
तीर्थानामपि तत्तीर्थं विशुद्धिर्मनसः परा॥

अर्थात सत्य तीर्थ है, क्षमा तीर्थ है। इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना भी तीर्थ है, सब प्राणियों पर दया करना तीर्थ है और सरलता भी तीर्थ है। दान तीर्थ है, मन का संयम तीर्थ है। संतोष भी तीर्थ है। ब्रह्मचर्य परम तीर्थ है। मधुर वचन बोलना भी तीर्थ है। ज्ञान तीर्थ है, धैर्य तीर्थ है तप को भी तीर्थ कहा जाता है। तीर्थों में भी सब से श्रेष्ठ है अन्त:करण की आत्यन्तिक विशुद्धि।

उपरोक्त में अन्तः करण की विशुद्धि को सबसे अधिक महत्त्व दिया गया है। कृष्ण कहते हैं—

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते॥

(भगवद्गीता, २-६५)

अर्थ—हृदय के शुद्ध होने (निर्मल होने) पर इसके सम्पूर्ण दु:खों का अभाव हो जाता है और उस प्रसन्न चित्त वाले पुरुष की बुद्धि शीघ्र ही अच्छी प्रकार स्थिर हो जाती है। आवागमन से मुक्ति पा जाता है।

वास्तव में उपरोक्त सभी साधन गुण किसी न किसी प्रकार हृदय को शुद्ध ही करने वाले हैं—

अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति॥ (मनु० ५-११२)

अर्थात शरीर जल से, मन सत्य से, जीवात्मा विद्या और तप से, बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है।

पुनश्च—

क्षान्त्या शुद्ध्यन्ति विद्वांसो दानेनाकार्यकारिणः।
प्रच्छन्नपापा जप्येन तपसा वेदवित्तमाः॥

(मनु० ५-११०)

अर्थात क्षमा से विद्वान, दान से अकर्म करने वाले, जप से गुप्त पातक और तप से वेद जानने वाले शुद्ध होते हैं।

इसी प्रकार इन्द्रियनिग्रह से भी मनुष्य शुद्ध हो जाता है (पापों से छूट कर पवित्रात्मा बन जाता है) क्योंकि इन्द्रियों के वशीभूत होकर मनुष्य अधर्म करता है—

इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन धर्मस्यासवनेन च।
पापान्संयान्ति संसारानविद्वांसो नराधमाः॥ (मनु० १२-५३)

अर्थात इन्द्रियों के प्रसङ्ग से विद्वान व्यक्ति भी अधर्म करता है और पाप योनि को प्राप्त करता है।

इसी प्रकार सब जीवों पर दया करने से भी व्यक्ति के रागद्वेष नष्ट हो जाते हैं। तुलसीदासजी ने सत्य कहा है कि क्षमा से दया, समता (सब को बिना भेद भाव के स्नेह करने) और संतोष (तृष्णा क्षय) से व्यक्ति मोक्ष पाता है। आवागमन से छूट जाता है।

क्षमा दया समता संतोषा। इनसे प्राण पाइहैं मोषा॥

इस प्रकार तीर्थ यात्रा का उद्देश्य शरीर और मन को शुद्ध करना ही है। पद्म पुराण का निम्न श्लोक भी यही सिद्ध करता है—

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।
विद्या तपश्च कीतिश्च स तीर्थ फलमश्नुते॥

अर्थात जिसके दोनों हाथ, दोनों पैर, तथा मन वश में होते हैं और जिसमें (अध्यात्म) विद्या, तपस्या, तथा कीर्ति होती है, वह तीर्थ के फल को प्राप्त करता है। (पद्मपुराण, पाताल खण्ड, १९/२२)

तीर्थयात्रा कैसे प्रारम्भ करनी चाहिये? इस बात से भी सिद्ध होता है कि तीर्थयात्रा व्यक्ति को कामनाहीन (तृष्णा क्षय) बनाने हेतु होती है—

विरांगजन येत कलत्रादि कुटुम्बके।
असत्यं भूतं तज्ञात्वा हरिं तू मनसा स्मरेत्॥

अर्थात तीर्थयात्रा का निश्चय करके सबसे पहले कुटुम्ब, घर, पदार्थ आदि को असत्य जानकर उनमें जरा भी आसक्ति न रहने दे और मन से श्री भगवान का स्मरण करे।

हृदय को शुद्ध करने वाली पुस्तकों का पाठ

उन पुस्तकों को भी तीर्थ कहा गया है जो व्यक्ति को जहाज के समान भवसागर पार लगाती हैं—

वन्दहुँ चारिउ वेद भव वारिधि बोहित सरिस

वे स्थान भी तीर्थ कहे गये हैं जहाँ इन पुस्तकों का अध्ययन-अध्यापन होता है।

भागवत में सनकादि ऋषि नारदजी से कहते हैं—"जिस घर मे श्रीमद्भागवत की कथा होती है वह तीर्थरूप हो जाता है और जो लोग उसमे रहते हैं उनके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं।" (भागवत ३-२९-१७)

उपरोक्त तथ्यों से यही निष्कर्ष निकलता है कि नदी, सरोवर वन, पर्वत और समुद्र के पास स्थित रमणीक स्थान जहाँ भगवान शंकर और विष्णु की कथाओं के माध्यम से भक्ति, ज्ञान और कर्म की शिक्षायें गंगा, सरस्वती और जमुना आदि नदियों की भाँति निरन्तर प्रवाहित होती रहती हैं। (लोगों को बराबर दी जाती है) धर्म के प्रति अटल विश्वास पैदा किया जाता है तीर्थ हैं। इसी प्रकार भगवान के अवतार स्थल और ऋषियों के आश्रम भी इन्हीं उपरोक्त शिक्षाओं और प्रेरणा के स्रोत होने के कारण तीर्थ बन गये, भव सागर को पार कराने वाले हो गये।

नारदजी ने राजा युधिष्ठिर को जिन तीर्थ योग्य स्थानों को बताया उनसे भी इन्हीं बातों की पुष्टि होती है।

नारदजी राजा युधिष्ठिर से कहते हैं, "युधिष्ठिर अब मैं उन स्थानों का वर्णन करता हूँ जो धर्म आदि श्रेय की प्राप्ति कराने वाले हैं। सबसे पवित्र देश वह है जिसमें सत्पात्र मिलते हैं। जिनमें यह सारा चर-अचर जगत स्थित है, उन भगवान की प्रतिमा जिस देश में हो, जहाँ तप, विद्या एवं दया आदि गुणों से युक्त ब्राह्मणों (धर्म प्रचारकों) के परिवार निवास करते हों, तथा जहाँ भगवान की पूजा होती हो, वे सभी स्थान परम कल्याणकारी हैं। पुष्कर आदि सरोवर, सिद्ध पुरुषों द्वारा सेवित क्षेत्र, गया, प्रयाग, पुलहाश्रम (शालग्राम क्षेत्र) नैमिषारण्य, फाल्गुन क्षेत्र सेतु बन्ध, प्रभास, द्वारिका, काशी, मथुरा, पम्पासर, बिन्दु सरोवर, बद्रिकाश्रम, अलकनन्दा, भगवान सीता-राम के आश्रम, अयोध्या चित्रकूटादि, महेन्द्र और मलय आदि समस्त कुल पर्वत और जहाँ जहाँ भगवान के अर्चावतार हैं। ये सब के सब देश अत्यन्त पवित्र हैं। कल्याणकारी पुरुषों को बार-बार इन देशों का सेवन करना चाहिए।" (श्रीमद्भागवत, ७-१४-२७ से ३३ तक)

परन्तु इन तीर्थों के विषय में परस्परविरोधी बातें कही जाती हैं। ऊपर हमने जिन तथ्यों का उदघाटन किया उनमें तीर्थों को भवसागर पार कराने वाले

साधन के रूप में चित्रित किया गया है। पर ऐसे स्थल भी हैं, पुराण आदि पुस्तकों में, जहाँ तीर्थों को धन, पुत्र, राज्य आदि कामनापूर्ति के साधन के रूप में सेवन हेतु कहा गया है।

रामचरितमानस में तुलसीदासजी कहते हैं—

बहुरि राम जानकिहि देखाई। जमुना कलिमल हरनि सुहाई॥
पुनि देखी सुरसरी पुनीता। राम कहा प्रनाम करु सीता॥

अर्थात श्रीरामजी ने जानकीजी को कलियुग के पापों का हरण करने वाली सुहावनी यमुनाजी के दर्शन कराये। फिर पवित्र गङ्गाजी के दर्शन किये। श्री रामजी ने कहा, हे सीते इन्हें प्रणाम करो।

पुनश्च—

तीरथपति पुनि देखु प्रयागा। निरखत जन्म कोटि अघ भागा॥
देखु परम पावनि पुनि बेनी। हरनि सोक हरि लोक निसेनी॥
पुनि देखु अवधपुरी अति पावनि। त्रिविध ताप भव रोग नसावनि॥

पुनश्च—

तब सीताँ पूजी सुरसरी। बहु प्रकार पुनि चरनन्हि परी॥
दीन्हि असीस हरषि मन गंगा। सुन्दरि तव अहिवात अभंगा॥

(रामचरितमानस, लङ्काकाण्ड)

उपरोक्त जमुना, गंगा और त्रिवेणी का लक्षणा से अर्थ लगना चाहिये अर्थात जमुना, गंगा और त्रिवेणी के तट पर रहने वाले सन्त पुरुषों का दर्शन और सत्संग मनुष्य की अज्ञानता छुड़ाने वाले (पापों का नाश कराने वाले हैं क्योंकि अज्ञानता वश ही मनुष्य अधर्म को धर्म समझ कर) पाप करता है। नदियों और उसके किनारे तीर्थस्थलों को लोक और परलोक का सुख प्रदान करने वाला कहना इसलिये आवश्यक हो जाता है कि अनभिज्ञ लोग बिना प्रलोभन के श्रेष्ठ कर्म करने में रुचि नहीं लेते हैं—

भागवत में लिखा है, ''यह वेद परोक्षवादात्मक है यह कर्मो की निवृत्ति के लिये कर्म का विधान करता है, जैसे बालक को मिठाई आदि का लालच देकर औषध खिलाते हैं वैसे ही यह अनभिज्ञों को स्वर्ग आदि का प्रलोभन देकर श्रेष्ठ कर्म में प्रवृत्त कराता है।'' (भागवत ११-३-४४)

इस प्रकार नदियों में स्नान करने से शरीर की ऊपरी सफाई होती है न कि हृदय की—

न जलाप्लुत देहस्य स्नानमत्यभिधीयते।
स स्नातो यो दमस्नात· शुचिः शुद्ध मनोमल· ॥

अर्थात जल में शरीर को डुबो लेना ही स्नान नहीं कहलाता। जिसने दम-रूपी तीर्थों में स्नान किया है, मन इन्द्रियों को वश में कर रक्खा है, उसी ने वास्तव में स्नान किया है। (स्कन्द पुराण काशी खण्ड, अध्याय ६)

मानसिक मल को धोना ही वास्तविक स्नान है—

न शरीर मलस्त्यागान्नरो भवति निर्मलः।
मानसेतु मले त्यक्ते भवत्यन्त सुनिर्मलः॥

अर्थात केवल शरीर के मैल को उतार देने से ही मनुष्य निर्मल नहीं हो जाता। मानसिक मल का त्याग करने पर ही वह भीतर से अत्यन्त निर्मल होता है। (वही)

यही कारण है कि कामार्थियों को काशीक्षेत्र के सेवन से मना किया गया है—

अर्थार्थिन स्तुचे विप्र ये च कामार्थिनो नराः।
अविमुक्तं न तै सेव्यं मोक्ष क्षेत्रेमिदं यतः॥

अर्थात हे विप्रवर! जो अर्थार्थी या कामार्थी हैं उनको इस मुक्तिदायी काशी क्षेत्र में नहीं रहना चाहिए।

वास्तव में तीर्थ-सेवन का उद्देश्य कामना का उन्मूलन है। कामना पूरी होने पर लोभ होता है। न पूरी होने पर क्रोध होता है। और लोभ तथा क्रोध दोनों व्यक्ति से पाप कराते हैं। अतः काम, क्रोध, मद, लोभ सभी से छुटकारा पाना तीथ सेवन का उद्देश्य है—

काम क्रोध मद लोभ शत्रु हैं जो इतनि तें छूटै।
सूरदास तवही तम नासै ज्ञान अग्नि झरि फूटै॥

निष्कर्ष—तीर्थ वे शिक्षा के केन्द्र हैं जहाँ व्यक्ति की क्षमता के अनुसार भक्ति, कर्म और ज्ञान की शिक्षा देकर आसक्ति से मुक्ति दिलायी जाती है—

कुटुम्ब और परिवार का मोह छुड़ाने हेतु कुछ दिन घर से बाहर रहने को कहा जाता है।

धन की आसक्ति छुड़ाने हेतु श्राद्ध व दान कराया जाता है। मन का मैल धोने हेतु भक्ति, कर्म और ज्ञान की शिक्षा दी जाती है। सत्संग कराया जाता है। गुलगुल बिछौने और शैय्या की आसक्ति छोड़ाने हेतु भूमि शयन कराया जाता है। भोग और स्त्री का मोह त्यागने हेतु ब्रह्मचर्य से रहने को कहा जाता है। सुन्दर वस्त्राभूषण त्याग करा कर दण्ड-कमण्डल आदि धारण कराया जाता है।

इस प्रकार आसक्तियों का त्याग कराकर कामनारहित बना कर मोक्ष (आवागमन से छुटकारा) दिलाया जाता है। भवसागर के पार (तीर या तट पर) पहुँचाया जाता है।

बौद्धधर्म में तीर्थयात्रा

भदन्त बोधानन्दजी अपनी पुस्तक 'बौद्धचर्या पद्धति' में लिखते हैं, "भगवान बुद्ध से सम्बन्ध रखने वाले बौद्ध तीर्थ तथा बौद्धधर्म एवं संस्कृति से सम्बन्ध रखने वाले स्थानों को बौद्ध स्मारक माना जाता है।"

स्मारक का अर्थ स्मरण दिलाने वाला है। अर्थात बौद्धधर्म का (आर्य चतुष्टय एवं अष्टाङ्गिक मार्ग का तृष्णा क्षय और निर्वाण की प्राप्ति के साधन की याद दिलाने वाले स्थान को बौद्धधर्म में तीर्थ या स्मारक कहा जाता है।

भगवान बुद्ध स्वयं भी अपनी शिक्षाओं को अपने से अधिक महत्त्वपूर्ण बताते हुए वक्कालि से कहते हैं, "तुम समझते हो बुद्ध को देखने के लिये मेरी शकल देखनी आवश्यक है। यह शरीर महत्त्वपूर्ण नहीं है। जब तुम मेरी शिक्षाओ को देख सकते हो तो मुझे देख सकते हो। यदि तुम शरीर देखते हो और शिक्षायें नहीं तो उसका कोई मूल्य नहीं।"

(Old Path & While Clouds, अंक ६४, पृ० ४२६, पैरा २,
जहँ जहँ चरण परे गौतम के)

बुद्ध की शिक्षाओं का सार निम्नलिखित गाथा से प्रगट होता है—

सव्व पापस्स अकरणं कुसलस्स उप सम्पदा।
स चित्त परि योदपनं, एतं बुद्धान सासनं॥

किसी प्रकार के पापों को न करना, पुण्य कर्मों का संपादन करना और अपने चित्त को परिशुद्ध करना, यही बुद्धों का आदेश है।

(बौद्धचर्या पद्धति, प्रस्तावना)

उपरोक्त गाथा का मूल उद्देश्य हृदय को शुद्ध करना ही है। पाप न करने से भी हृदय परिशुद्ध होता है। पुण्य करने से भी हृदय परिशुद्ध होता है। तीर्थ उपरोक्त शिक्षाओं का स्मरण दिलाने वाले हैं प्रेरणा प्रदान करने वाले हैं इसीलिये उन्हें स्मारक कहा जाता है। इस प्रकार हृदय को परिशुद्ध करने की याद दिलाने वाले पवित्र स्थल भी परिशुद्धि के साधन ही हुये। यही बात तीर्थों के विषय में सनातनधर्म भी कहता है। वह भवसागर (जन्म से) छुटकारा दिलाने वाले साधनरूपी स्थल, व्यक्ति, पुस्तक गुण आदि को तीर्थ कहता है तो बौद्धधर्म हृदय को परिशुद्ध करने की याद दिलाने को।

दोनों का एक ही लक्ष्य है। दोनों का उद्देश्य व्यक्ति के चित्त को तृष्णा से रहित करके दु:खों से (बार-बार जन्म लेने के दु:ख से) छुटकारा दिलाना है।

जिस प्रकार सनातनधर्म में चित्त परिशुद्धि और मोक्ष प्राप्ति के लिये तीर्थ राज प्रयाग, त्रिवेणी और अयोध्या आदि का दर्शन और उनका प्रणाम करना बताया गया है उसी प्रकार बौद्धधर्म में भगवान बुद्ध की पूजा करने को निर्वाण

प्राप्ति का उपाय बताया गया है। तथा नमोऽस्तु बुद्धाय को अग्रबोधि का साधन माना जाने लगा।

आचार्य नरेन्द्र देवजी लिखते हैं, "कर्मवाद के अनुसार बौद्ध यह नहीं मानते थे कि पूजा करने से बुद्ध वरदान देंगे किन्तु ईसवी सदी के कुछ पहले से बौद्धों में करुणामय देवों की पूजा प्रारम्भ हुई जिनकी प्रतिमा या प्रतीक की वे पूजा करने लगे और जिन से सुख और मोक्ष के लिये वे प्रार्थना करने लगे।"

(आ०न०दे० बौद्ध दर्शन, पृ० १०४)

अश्वघोष बु० च के सर्ग २८-६९ में लिखते हैं—हे बुद्धिमान मनुष्यों "विदित हो कि बुद्ध के गुण ऐसे हैं कि समान मानसिक शुद्धि होने पर, ऐहिक जीवन में मुनि का सम्मान करने से या उनके परि निर्वाण के बाद उनकी धातुओं को प्रणाम करने से एक ही फल प्राप्त होता है।"

किन्तु सनातनधर्मियों की तरह बौद्धधर्म में भी उपरोक्त कर्म, कर्मों की निवृत्त के लिये किया गया है। महा कवि अश्वघोष जिन्होंने उपरोक्त बात कही है स्वयं इसका रहस्य बताते हुए कहते हैं—प्रायः लोगों को विषयरत और मोक्ष विमुख देख कर मैंने काव्य के बहाने सत्य का उपदेश दिया है मोक्ष ही सबसे ऊपर है। इस ग्रन्थ में मोक्ष के अतिरिक्त जो कुछ कहा गया है। वह इसे काव्य धर्म के अनुसार सरस बनाने के ही लिये (कहा गया है) जैसे कड़वी दवा को रुचिकर बनाने के लिये उसमें मधु मिलाया जाता है। (बु० चरित, भूमिका)

इसी प्रकार सनातनधर्म की भाँति बौद्धधर्म में भी भगवान बुद्ध की शिक्षाओं का प्रसार व व्याख्या करने वाले ग्रन्थों को आदर के साथ सुनना अनेक लाभों को प्रदान करने वाला बताया गया है। ललित विस्तर के प्रभाव का वर्णन करते हुए ग्रन्थकार कहता है—हे मार्षो (सुहृदों) "जो कोई इस ललित विस्तर धर्म पर्याय को अंजलि बाँध कर गौरव करेगा, उसे आठ उत्कृष्ट धर्मों का लाभ होगा।" किन आठ धर्मों का? उत्कृष्ट बल का लाभ होगा, उत्कृष्ट परिवार का लाभ होगा, उत्कृष्ट प्रतिभा का लाभ होगा, उत्कृष्ट नैष्क्रम्य (लोक के प्रति निष्कामना) का लाभ होगा, उत्कृष्ट चित्त परिशुद्धि का लाभ होगा, उत्कृष्ट समाधि पद का लाभ होगा, उत्कृष्ट प्रज्ञा-प्रतिभास का लाभ होगा।

(ललित विस्तर निगम परिवर्त २)

इसी प्रकार ललित विस्तर को पढ़कर सुनाने वाले, इसके प्रवचन करने वाले, पुस्तक रूप में लिख कर धारणा करने वाले, सुनने वाले आदि को नाना प्रकार के लौकिक और पारलौकिक लाभ बताए गये हैं।

इसी प्रकार सनातनधर्म की भाँति बौद्धधर्म में भी भगवान की शिक्षा देने वाले (भगवान की शिक्षाओं से परिपूर्ण) ग्रन्थों को भगवान बुद्ध का शरीर माना

गया है और वह धर्मपर्याय जहाँ रहता है उस स्थान में भगवान को स्वय विराजमान माना जाता है—

"यह सब सुभषितों का राजा है जो सब तथागतों द्वारा प्रगट हुआ है। जिसके यहाँ यह सूत्र राज रहता है। उसके घर में तथागत सर्वदा विराजमान रहते हैं।" (सद्धर्म पुण्डरीक, २-९४)

सनातनधर्म की भाँति बौद्धधर्म में भी सन्तों का बड़ा महत्त्व है—

पूजनीय बुद्धों, अथवा (उनके) श्रावकों की जो संसार को अतिक्रमण कर गये हैं, जो शोक-भय को पार कर गये हैं—पूजा के (या) उन ऐसे मुक्त और निर्भय पुरुषों की पूजा के, पुण्य का परिमाण "इतना है"—यह किसी से भी नही कहा जा सकता। (धम्मपद बुद्ध वग्गो, १८)

भवसागर पार कराने में नदी, पर्वतों, और वनों को भी बौद्धधर्म में सनातनधर्म की भाँति महत्त्व दिया गया है। भगवान गौतम बुद्ध स्वयं वन या उद्यान में ध्यान करने हेतु वहाँ रहते थे—"मृग के समान जंघा वाले, कृश, धीर, अल्पाहारी, चंचलता से रहित, वन में ध्यान करते हुए मुनि गौतम का आओ हम दर्शन करें।" (सुत्त निपात-हेमवत सुत्त, १३)

पुनश्च—जंगल में अकेले वरण करने वाले सिंह और हस्तिराज की भाँति काम भोगों की कामना न करने वाले, गौतम के पास जाकर मृत्यु-पाश से मुक्ति के उपाय पूछे। (वही १४)

पर्वत—भिक्षाटन करके मुनि नगर से निकल कर पाण्डव पर्वत पर चढे कि वहाँ निवास होगा। (सुत्त निपात पवज्जा सुत्त १०)

पुनश्च—दूत राजा बिम्बसार को भगवान गौतम की सूचना देता हुआ कहता है—"महाराज! यह भिक्षु पाण्डव पर्वत के पूरब[१] उस प्रकार बैठा है जैसे कि व्याघ्र, साँड़ या सिंह पहाड़ की गुफा में बैठा हो।" (वही, १२)

नदी—भगवान बुद्ध ने अपनी तपस्या काल में जब भोजन का निश्चय किया तो पहले नैरञ्जना नदी में स्नान किया—"स्नान कर वह कृश तन, नैरञ्जना नदी के तीर से धीरे-धीरे ऊपर चढ़ा।" (बुच सर्ग १२-१०८)

साधना हेतु नदी तट—"तब पवित्र पराक्रम वाले, एकान्त विहार में आनन्द पाने वाले उस मुनि ने नैरञ्जना नदी के पवित्र तट पर निवास किया।" (बुच १२-९०)

सनातनधर्म के समान—पीपल का वृक्ष महत्त्वपूर्ण बौद्धधर्म में पीपल का वृक्ष ध्यान साधना के योग्य माना जाता है। भगवान बुद्ध कहते हैं—"इसलिये

---

१. पाण्डव पर्वत में पूर्वमुख गुफा थी, जिसमें प्रव्रजित रहा कहते थे। वहीं बुद्ध गये (अट्ठकथा)।

यही उचित है कि मैं स्थूल अन्न का भोजन कर शरीर में बल उत्पन्न कर वृक्षों के राजा (पीपल के) पेड़ के नीचे सर्वज्ञता का बोध करने के लिये जाऊँ।''

(ललित विस्तर नैरञ्जनावर्त ४४)

बौद्धधर्म में माता, पिता और गुरु भी सनातनधर्म के समान तीर्थ (उद्धार करने में सहायक) माने गये हैं—

भदन्त प्रज्ञानन्दजी लिखते हैं, ''इस तरह पाँच प्रकार से पुत्र से सेवित माता-पिता पुत्र पर अनुकम्पा करते हैं किस प्रकार? पाप से निवारण करते हैं कल्याण व पुण्य कर्मों को कराते हैं। विद्याओं को सिखलाते हैं। उचित लड़की से विवाह कराते हैं और ठीक समय पर दायित्त्व को सौंप देते हैं।''

आचार्य—आचार्य अपने शिष्य पर पाँच प्रकार से दया करते हैं— ''सुविनीत भाव या विनय को सिखाते हैं। सुग्राह्य शास्त्रों को सिखाते हैं। सब विद्याओं और श्रुतियों को सिखाते हैं। हित मित प्रतिपादन करते हैं, और सब दिशाओं में परित्राण करते हैं।''

(बौद्धों की हस्त पुस्तक स० भिक्षुग प्रज्ञानन्द पृ० ४४)

सनातनधर्म की भाँति बौद्धधर्म में भी नदी, पहाड़, वन, उपवन, मोक्ष अथवा निर्वाण प्राप्त करने में सहायक होते अवश्य हैं परन्तु वे पूरी तरह से मोक्ष नहीं दिला सकते हैं।

बहुं वे सरणां यन्ति पव्वतानि बनानि च।
आराम रुक्ख चेत्यानि मनुस्सा भयज्जिता॥ १०॥
नेतं खो सरणां खेमं नेतं सरगामुत्तम।
नेतं सरणामागम्य सव्वव दुकखा पमुच्चति॥ ११॥

अर्थात मनुष्य भय के मारे पर्वत, वन, आराम (उद्यान) वृक्ष, चैत्य (चौरा) आदि को देवता मान उनकी शरण में जाते हैं, किन्तु ये शरण मंगलदायक नहीं, ये शरण उत्तम नहीं, क्योंकि इन शरणों में जाकर सब दुःखों से छुटकारा नहीं मिलता। अर्थात केवल कुछ ही सहायता मिलती है। (धम्मपद बुद्ध वग्गो १०, ११) छुटकारा सदाचार के पालन से मिलता है। छुटकारा, बुद्ध, धर्म और संघ की शरण में जाने और मुक्तदायी अष्टाङ्गिक मार्ग तथा आर्य चतुष्टय के साक्षात्कार से मिलता है—

यो च बुद्धञ्च धम्मञ्च संघञ्च सरणां गतो।
चत्तारि अरिय सच्चानि सम्मप्पञ्लाय पस्सति॥
दुक्खं दुक्ख समुप्पांद दुक्खस्स च अतिक्कम।
अरियञ्च टडङ्गिकं सग्गं दुक्खूप समागिनं॥

एतं खो सरणं खेमं एतं सरणामुत्तमं।
एतं सरणमागम्म सब्ब दुक्खा पमुच्चति॥

(वही, १२, १३, १४)

अर्थात जो बुद्ध, धर्म और संघ की शरण गया है जिसने चार आर्य सत्यों—दु:ख, दु:ख की उत्पत्ति, दु:ख से मुक्ति और मुक्तिगामी आर्य आष्टाङ्गिक मार्ग को सम्यक प्रज्ञा से देख लिया है, यही मंगलदायक शरण है। यही उत्तम शरण है। इसी शरण को प्राप्त कर व्यक्ति सभी दु:खों से मुक्त हो जाता है।

इस प्रकार उपरोक्त तथ्यों से यही निष्कर्ष निकलता है कि जिस प्रकार सनातनधर्म में माता, पिता, आचार्य, सन्तजनों तथा पवित्र पुस्तकों और सत्य, क्षमा, इन्द्रिय निग्रह, सर्वभूत दया, आर्जवम (सरलता) दान, दम (बाहरी इन्द्रियो का निग्रह) संतोष, ब्रह्मचर्य, मधुर वचन, ज्ञान, धृति, तप आदि को हृदय को परिशुद्ध करने वाला होने के कारण तीर्थ कहा गया है उसी प्रकार बौद्धधर्म में भी इन्हें हृदय को परिशुद्ध करने वाला कहा गया है। यद्यपि बौद्धधर्म में इनके लिये प्राय: तीर्थ शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। लेकिन इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता क्योंकि चित्त शुद्ध हो जाने से (कामना का उन्मूलन हो जाने से) व्यक्ति आवागमन से छुटकारा पा जाता है। अत: चित्त को परिशुद्ध करने वाला कहो, चित्त को परिशुद्धि की याद दिलाने वाला कहो (स्मारक कहो) या तीर्थ, बार-बार जन्म से छुटकारा दिलाने वाला कहो या भवसागर की नाव या जहाज कहो एक ही अर्थ प्रगट करता है। सबका उद्देश्य हृदय को शुद्ध करके मुक्ति या निर्वाण दिलाने वाला ही है।

इस प्रकार उपरोक्त की शिक्षा देने वाले केन्द्रों को जहाँ कुछ समय व्यक्ति घर बार छोड़ कर भिक्षु जीवन का पूर्वाभ्यास करता है, सब प्रकार की आसक्तियों को दूर करने का अभ्यास करता है तीर्थ कहते हैं। सनातनधर्म में तीर्थयात्रा का उद्देश्य संन्यास जीवन का आनन्द लेना है तो बौद्धधर्म में भिक्षु जीवन का।

❖

पूजा

भागवत में नर नारायण ऋषियों को पूजा पद्धति का प्रवर्तक बताया गया है—उन्होंने (नर नारायण ने) आत्म तत्त्व का साक्षात कराने वाले उस भगवदाराधन रूप कर्म का उपदेश दिया जो वास्तव में कर्म बन्धन से छुड़ाने वाला और नैष्कर्म्य स्थिति को प्राप्त कराने वाला है। (भागवत, ११-४-६)

(१) पूजा करने से पहले व्यक्ति को मन्त्र दीक्षा लेनी चाहिये।

(२) पूजा की विधि सीखे तत्पश्चात पूजा करे।

पूजा की विधि

(१) पहले स्नानादि से शरीर और संतोष आदि से अन्तःकरण को शुद्ध करे।

(२) प्राणायाम आदि के द्वारा भूत शुद्धि-नाड़ी शोधन करे।

(३) तत्पश्चात विधिपूर्वक मन्त्र देवता आदि के न्यास से अङ्ग रक्षा करके भगवान की पूजा करे।

पहले पुष्प आदि पदार्थों का जन्तु आदि निकाल कर, पृथ्वी को सम्मार्जन आदि से अपने को अव्यग्र होकर और भगवान की मूर्ति पहले की पूजा के लगे हुए पदार्थों के क्षालन आदि से पूजा के योग्य बना कर फिर आसन पर मन्त्रोचारण पूर्वक जल छिड़क कर पाद्य, अर्घ्य आदि पात्रों को स्थापित करे। तदन्तर एकाग्रचित्त होकर हृदय में भगवान का ध्यान करके फिर सोने की मूर्ति में चिन्तन करे।

तदन्तर हृदय, सिर, शिखा (हृदयाय नमः शिर से स्वाहा) इत्यादि मन्त्रों से न्यास आदि के अनुकूल प्राप्त पूजा सामग्री से प्रतिमा आदि में अथवा हृदय में भगवान की पूजा करे। (भागवत, ११-४-५०, ५१)

अपने अपने उपास्य देव के विग्रह की हृदयादि अङ्ग आयुधादि उपाङ्ग और पार्षदों सहित उसके मूल मन्त्र द्वारा पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, आभूषण, गन्ध, पुष्प, दधि, अक्षत, तिलक, माला, धूप, दीप और नैवेद्य आदि से विधिवत पूजा करे तथा फिर स्तोत्रों द्वारा स्तुति करके सपरिवार भगवान श्री हरि को नमस्कार करे। (वही, ५२, ५३)

निर्माल्य को अपने सिर पर रखे और आदर के साथ भगवद्विग्रह को यथा स्थान स्थापित कर पूजा समाप्त करनी चाहिये। (वही, ५४, ५५)

लाभ—इस प्रकार जो पुरुष अग्नि, सूर्य, जल, अतिथ और अपने हृदय में आत्मरूप श्रीहरि की पूजा करता है वह शीघ्र ही (आवागमन से) मुक्त हो जाता है। (वही, ५५)

इस प्रकार पूजा का उद्देश्य भी आवागमन से छुटकारा ही पाना है। निवार्ण या मोक्ष ही है।

बौद्धधर्म में पूजा

भदन्त बोधानन्दजी अपनी पुस्तक बौद्ध चर्या पद्धति में लिखते हैं—

"पूजा से अभिप्राय है सत्कार या आदर। माता, पिता, आचार्य आदि पूज्य व्यक्ति हैं। बुद्ध और उनके श्रावक सब पूजनीयों में श्रेष्ठ हैं।"

भगवान बुद्ध ने अपने श्री मुख से भी यही बात कही है।

पूजारहे पूजयतो बुद्धे यदि व सावके।
पपञ्चसमतिक्कन्ते तिण्णसोकपरिद्दवे॥

(धम्मपद, बुद्धवग्गो, १७)

ते तादिसे पूजयतो निब्बुते अकुतोभये।
न सक्का पुञ्ञं संखातुं इमेत्तमपि केनपि॥

(वही, १८)

अर्थात पूजनीय बुद्धों, अथवा (उनके) श्रावकों की जो संसार को अतिक्रमण कर गये हैं, जो शोक भय को पार कर गये हैं—पूजा के (या) उन ऐसे मुक्त और निर्भय (पुरुषों) की पूजा के, पुण्य का परिमाण इतना है यह किसी से भी नहीं कहा जा सकता। इसप्रकार पूजा का अर्थ उनके उपदेशों का आदरपूर्वक पालन है। यह मौखिक पूजा उसकी प्रतीक है।

(धम्मपद, बुद्धवग्गो, १७, १८)

आगे इसी बात को और स्पष्ट करते हुए भदन्त बोधानन्दजी लिखते हैं—बुद्ध धर्म के उपासकों को चाहिए कि प्रति दिन प्रातःकाल और सायंकाल शौचादि से छुट्टी पाकर किसी निकट के बौद्ध-विहार (मन्दिर) या अपने घर मे अथवा बाहर किसी उपयुक्त एकान्त स्थान में बैठकर अपने और जगत के कल्याण के लिये इस पुस्तक में लिखे हुए पूजा मन्त्रों को ध्यानपूर्वक पढ़ते हुए भगवान बुद्ध का पुष्प, धूप आदि से पूजन करें। (बौद्धचर्या पद्धति)

आगे त्रिशरण सहित पंचशील मन्त्रों का पाठ, त्रिरत्न वन्दना और अष्ट विंशति बुद्ध वन्दना तथा अन्त में ब्रह्म विहार भावना के मन्त्रों का पाठ का लाभ बताते हुए कहते हैं—बुद्ध, धर्म और संघ की पूजा-वन्दना के समक्ष उनके पुनीत गुणों का स्मरण करने से वे सद्गुण अपने में विकसित होते हैं। बुद्ध के साक्षात्कार न होने पर बुद्ध-चैत्य की वन्दना करनी चाहिये। (वही. पृ० १०)

उपरोक्त की सनातनधर्म के पातंजल योग सूत्र ३७ वीतराग विषयम् व चित्तम् से (इसकी) तुलना कीजिये उपरोक्त सूत्र का अर्थ है, "जिस हृदय ने इन्द्रिय विषयों के प्रति समस्त आसक्ति छोड़ दी है, उसके ध्यान से भी चित्त स्थिर होता है।"

पुनः ब्रह्म विहार भावना करने से सद्गुणों का विकास होता है इस बात से सनातनधर्म भी सहमत है। पातंजल योग में भी यही बात कही गई है—

मैत्री करुणा मुदितो पेक्षाणां सुखदुःख, पुण्यापुण्य विषयाणां भावनातश्चित्त प्रसादनम्॥ ३ ॥

अर्थात सुख, दुःख, पुण्य और पाप इन भावों के प्रति क्रमशः मित्रता, दया, आनन्द और उपेक्षा का भाव धारण कर सकने से चित्त प्रसन्न होता है, शुद्ध होता है। अर्थात हम सबके प्रति मैत्री भाव रखें, दीन-दुखियों के प्रति दया भाव रखें, सत्कर्मियों के सत्कर्म को देख कर सुखी हों और दुष्टों के प्रति उपेक्षा भाव दिखायें अर्थात न उनसे मैत्री रखें न शत्रुता। इस प्रकार की भावनाओं को (जिसे बौद्धधर्म में ब्रह्म विहार कहते हैं धारणा करने से मन शान्त हो जाता है।

(पातंजल योग, पृ० १६२)

बुद्ध पूजा-विधि

बौद्धधर्म के हीनयान में पंचोपचार तथा महायान में शोडषोपचार है।

पुष्प-पूजा

वण्ण गन्ध-गुणोपेतं एतं कुसुम सन्तति।
पूजयामि मुनिन्दस्स, सिरीपाद-सरोरुहे॥

अर्थात मैं वर्ण, गन्ध और सुन्दर गुण से युक्त इस पुष्प से भगवान बुद्ध के कमलवत श्री चरणों में पूजा करता हूँ।

धूप-पूजा

गन्ध सम्भार युत्तेन धूपेनाहं सुगन्धिना।
पूजये पूजनेय्यन्तं, पूजा भाजन मुत्तमं॥

गन्ध से युक्त धूप की सुगन्धित से मैं उत्तम पूजा के योग्य पूजनीय बुदध की पूजा करता हूँ।

सुगन्धित पूजा

सुगन्धिकाय-वदन-मनन्त गुण गन्धिना।
सुगन्धि नाहं गन्धेन पूजयामि तथा गतं॥

अर्थ—मैं सुगन्धि युक्त शरीर एवं मुख वाले अनन्त गुण-सुगन्धि से पूर्ण तथागत की सुगन्ध का गन्ध से पूजा करता हूँ।

प्रदीप पूजा

घन सारप्प दित्तेन-दीपेन तमधंसिना।
तिलोक दीप सम्बुद्धं पूजयामि तमोनुदं॥

अर्थ—अन्धकार को नष्ट करने वाले, तेल के जलते हुए प्रदीप से मैं तीनों लोकों के प्रदीप तुल्य अज्ञान-अन्धकार को नष्ट करने वाले भगवान बुद्ध की पूजा करता हूँ।

आहार पूजा

अधिवा सेतु नो भन्ते भोजनं परिकप्पितं।
अनुकम्पं उपादाय पति गण्हातु भुत्तमं॥

अर्थ—भन्ते। हमारे चढ़ाये हुए उत्तम भोजन को ग्रहण करे।

जिस प्रकार सनातनधर्म में भगवान के आयुधों और पार्षदों की पूजा होती है उसी प्रकार बौद्धधर्म में बोध वृक्ष, धातु चैत्यों (भगवान बुद्ध की गड़ी हुई हड्डियों) पर बने चैत्य, पारिभोगिक चैत्यों (भगवान बुद्ध की व्यवहार की हुई वस्तुओं) के ऊपर बने समाधि स्तूपों को परिभोगिक चैत्य कहते हैं और उद्देसिक चैत्यों (भगवान बुद्ध की धातु पाषाण आदि से बनी हुई प्रतिमाओं) की पूजा करते हैं। (बौद्धचर्या पद्धति, प्रस्तावना)

बोधि-वन्दना

यस्स मूले निसिन्नोव सव्वारि विजयं अका।
पत्तौ सव्वञ्ञुतं सत्था वन्दे तं वोधि पादपं॥
एमे एते महाबोधि लोक नाथेन पूजिता।
अहम्पि ते नमस्सामि बोधि राजा नमत्थु ते॥

अर्थ—भगवान बुद्ध ने जिस बोधि के नीचे बैठे हुए ही (राग, द्वेष, मोह और मार की सेना आदि) सब शत्रुओं पर विजय पाई तथा सर्वज्ञता का ज्ञान प्राप्त किया उस बोधि वृक्ष को नमस्कार है।

यह महाबोधि वृक्ष भगवान बुद्ध द्वारा पूजित है, मैं भी उन्हें नमस्कार करता हूँ—हे बोधिराज! तुम्हें मेरा नमस्कार है।

(धातु, पारिभौगिक और उद्देसिक) चैत्य वन्दना

वन्दामि चेतियं सव्व सव्व ठानेसु पतिट्ठितं।
सारीरिक धातु महा बोधि बुद्ध रूपं सकलं सदा॥

अर्थ—सब स्थानों में प्रतिष्ठित शारीरिक धातु (अस्थि) बोधि वृक्ष और बुद्ध प्रतिमा—इन सब चैत्यों को मैं सदा वन्दना करता हूँ। (वही)

"सद्धर्म पुण्डरीका" २/६१-८७ धार्मिक ग्रन्थ की भूमिका में श्रीराम मोहन दास लिखते हैं—"बुद्धत्व प्राप्ति के लिये बुद्धों एवं बोधिसत्वों की पूजा आवश्यक मानी गई है। अर्हतों को भी बुद्धत्व की प्राप्ति तभी सम्भव है, जब वे असंख्य बुद्धों, बोधिसत्त्वों एवं उनके धातुवशेषों की पूजा करेंगे।"

"श्रावकों एवं उपासकों को भी आदेश दिया गया है कि वे इस सूत्र तथा इसके व्याख्याताओं की पूजा करें तथा उस स्थान पर स्तूप निर्माण करायें, जो कभी बुद्ध, धर्म भाणक की उपस्थित से पवित्र हो गया है। वे सभी प्राणी जिन्होंने बुद्ध के उपदेशों का श्रवण किया है, अनेक प्रकार के शुभ कर्म किये हैं, सदाचार मय जीवन व्यतीत किया है, धात्ववशेषों की पूजा की है, स्तूप एवं बुद्ध की मूर्तियाँ बनवाई हैं, स्तूपों की पुष्प एवं गन्ध से पूजा की है, बुद्ध की मूर्ति के सम्मुख संगीत प्रस्तुत किया है तथा अनायास ही मन में बुद्ध के प्रति गौरव भावना की सृष्टि की है—वे सभी श्रेष्ठ ज्ञान को प्राप्त करके बुद्धत्व लाभ करते हैं।"

सनातनधर्म की भाँति बौद्ध भी पूजा के बाद भगवान की स्तुति (गुणानुवाद) करते हैं।

महास्थविर भदन्त बोधानन्दजी अपनी पुस्तक में स्तुति (वन्दना) की व्याख्या करते हुए लिखते हैं, "वन्दना से हमारे मन में अविकसित सद्गुणों के विकास का अवसर मिलता है।" वन्दना की व्याख्या व प्रभाव कावर्णन करते हुए वह कहते हैं—वन्दना से अभिप्राय है श्रद्धा और नम्रता के साथ त्रिरत्न (बुद्ध धर्म और संघ) का गुण कीर्तन। गुण कीर्तनात्मक स्तुति से एक ओर जहाँ बुद्ध, धर्म और संघ रूपी रत्नों की विशेषताओं का बोध होता है वहीं उन गुणों के निरन्तर पाठ और बोध से हमारे मन पर प्रभाव पड़ता है जिससे सद्गुणों के विकास का अवसर मिलता है। (वही)

दोनों पूजा और पद्धतियों में अन्तर

(१) बौद्ध भक्त कुश और पैंतीषहिन कर पूजा के पूर्व आचमन नहीं करते।
(२) न्यास नहीं करते।
(३) नाड़ी शोधन प्राणायाम करके नहीं करते।
(४) अपने इष्टदेव का आवाहन और विसर्जन नहीं करते।
(५) गोबर से जमीन नहीं लीपते।
(६) स्नान भी आवश्यक नहीं मानते।
(७) सनातनधर्म के इष्ट देवों को नहीं पूजते।

(८) तुलसी व विल्व पत्र समर्पित नहीं करते।

(९) शंख ध्वनि नहीं करते।

नाम जप

सन्तों ने नाम जप को एक योग माना है। 'सर्वात्म दर्शन' में देवरहा बाबा बताते हैं, "प्राण से, मुख से, मन से कहते सुनने, लेते-देते, खाते-पीते राम का जप करना ही सबसे बड़ा योग है।" (सर्वात्म दर्शन)

सन्त तुलसीदास कहते हैं कि राम का नाम लेते ही मनुष्य भव (जन्म) सागर को बड़ी सरलता से पार कर जाता है—

नाम लेत भव सिन्धु सुखाहीं।
करहु विचार सुजन मन माहीं॥

इच्छा से अथवा अनिच्छा से राम नाम का जप करने पर सब तरफ कल्याण ही होता है—

भाव कुभाव अलेख आलस हूँ।
नाम जपे मंगल दिसि दस हूँ।

सन्त चरणदास कहते हैं कि जिस प्रकार योग से सिद्धि प्राप्त होती है उसी प्रकार राम-नाम से मुक्ति मिलती है।

सन्त दादू भी राम नाम को आत्म शान्ति का साधन मानते हैं—

कहता सुनता राम कहि लेता देता राम।
खाता पीता राम कह आत्म कँवल विश्राम॥

"नामी के नाम का जप करके व्यक्ति उसी के गुण व स्वरूप को ग्रहण कर लेता है।" भृंगी का उदाहरण देते हुए भागवत में दत्तात्रेय जी कहते हैं, "राजन! मैंने भृंगी कीड़े से यह शिक्षा ग्रहण की है कि यदि प्राणी स्नेह से द्वेष से अथवा भय से भी जान बूझ कर एकाग्र रूप से अपना मन किसी में लगा दे तो उसी वस्तु का स्वरूप प्राप्त हो जाता है।" (श्रीमद्भागवत, १२/९-२२)

इस प्रकार सनातनधर्म में नाम जप की बड़ी महिमा बताई गई है। श्रीमद्भागवत, श्रीमद्भगवतगीता, रामचरितमानस आदि ग्रन्थों में इसे आवागमन से छुटकारा दिलाने वाला (मोक्षदायक) कहा गया है।

भगवान कृष्ण ने गीता में नाम जप को एक यज्ञ और अपना स्वरूप बताया है—यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि (गीता १०-२५)

योग शास्त्र में भी प्रणाव अथवा ॐ को भगवान का प्रतीक बताया गया है—

तस्य वाचकः प्रणावः।

भगवान कृष्ण यह भी बताते हैं कि जो मेरा नाम श्रद्धा अथवा अवहेलना से भी लेता है उसका नाम सदा मेरे हृदय में रहता है—

श्रद्धया हेलया नाम रटन्ति मम जन्तवः।
तेषां नाम सदा पार्थ वर्तते हृदयं मम॥ (गीता)

लगभग ऐसी ही बात श्रीमद्भागवत में भी बतायी गई है। यथा—

साङ्केत्यं पारिहास्यं या स्तोभं हेलनमेव वा।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः॥

(श्रीमद्भागवत, ६-२-१४)

नाम जप में जैसा कि ऊपर दत्तात्रेयजी ने बताया है। जापक नामी का गुण व स्वभाव ग्रहण कर वीत राग बन जाता है। मोक्ष अतवा आवागमन से छुटकारा पा जाता है। अतः इसे माता पिता के समान मोक्ष दिलाने वाला और पर लोक दिलाने वाला कहा गया है—

राम नाम तरु काल कराला।
सुमिरत समन सकल जंजाला॥
राम नाम कलि अभिमत दाता।
हित परलोक लोक पितु माता॥

भगवान के नाम का जप करते करते उसका रूप भी सामने आ जाता है। तुलसीदास कहते हैं—

सुमिरत नाम रूप बिन देखे। आवत हृदय समनेह विशेषे॥

वह यह भी बताते हैं कि नाम जप से गूढ़ रहस्यों का ज्ञान और सिद्धियों की प्राप्ति भी हो जाती है—

जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ।
नाम जीह जपि जानहिं तेऊ॥

सिद्धियों की प्राप्ति—

साधक नाम जपहिं लय लायें।
होहिं सिद्ध अनिमादिक पाये॥

नाम जप से संकट भी टल जाते हैं—

जपहिं नामु जन आरत भारी।
मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी॥

उन्होंने राम नाम को मन चाहा फल देने वाला कल्पवृक्ष भी बताया है—

नामु राम को कल्पतरु कलि कल्यान निवासु।
जो सुमिरत भये माँगते तुलसी तुलसी दास॥

लेकिन कामना पूर्ति हेतु राम नाम का जप नहीं करना चाहिये क्योंकि सिद्धियाँ प्रेम मार्ग में (साधना में) बाधक बनती है अतः कामना हीन होकर ही

राम नाम लेना चाहिए—

सकल कामना हीन जे राम भगति रस लीन।
नाम सुप्रेम पियूष ह्रद तिन्हहुँ किये मन मीन॥

बौद्धधर्म में नामजप

जिस प्रकार सनातनधर्म में नाम जप का महत्त्व है उसी प्रकार बौद्धधर्म मे भी। यथा जापान के जो दो सम्प्रदाय में यह विश्वास है कि बुद्ध के नाम जपने से नेम बुत्स कहने से मनुष्य सब दु:खों से मुक्त हो जाता है। और वह अमिताभ (जापानी नाम आमिद) के सर्व सौख्य सम्पन्न लोक में निवास करता है।

(बौद्धधर्म मीमांसा, पृ० ४०२)

पुनश्च, इस मत के प्रसिद्ध विद्वान होनेन शोनिन के मत में बुद्द का नाम जपना उन्हें आत्मसमर्पण करना साधक के लिए प्रधान कार्य माना जाता है। होनेन के बाद होने वाले शिन रान का भी यही मत था। उनका कहना था कि मनुष्य स्वभाव से ही पातकी है। इन पातकों को निराकरण सरलता से बुद्ध के नाम जपने से ही हो सकती है। (वही)

निचिरेन सम्प्रदाय

इस मत के अनुसार शाक्य मुनि (भगवान गौतम बुद्ध) सर्वदा वर्तमान रहते हैं। वे आज भी हमारे बीच में हैं। बुद्ध की इस अभिव्यक्ति का पता हमें "नम: पुण्डरीकाय" इस महामन्त्र के एकाग्रचित होकर जप करने से हो सकता है। (वही, निचिरेन सम्प्रदाय, पृ० ४०५)

इसी प्रकार सर्द्धम पुण्डरीक की भूमिका में बौद्ध विद्वान श्री राम मोहन दास लिखते हैं—

अवलोकितेश्वर (भगवान का एक नाम) के नाम का 'जप' केवल स्मरण ही मनुष्य की अनेक दु:खों एवं आपदाओं से रक्षा करता है। महान अग्नि स्कन्ध से, वेग वती नदी की धारा से, मृत्यु दण्ड से, कारावास से, डाकुओं से, एवं समुद्र वास के समय कालिका वात से रक्षा प्राप्त करने के लिये अवलोकितेश्वर का स्मरण-मात्र पर्याप्त है। (कहना अप्रासंगिक न होगा कि) चीनी यात्री फाहियान जो चौथी शती में भारत आया था, लंका से चीन जाते समय तूफान से बचने के लिये अवलोकितेश्वर की ही प्रार्थना की थी। अवलोकितेश्वर के स्मरण एवं नमन से नि:सन्तान स्त्री को सुन्दर पुत्र की भी प्राप्ति होती है।

इसी प्रकार कारण्ड व्यूह की चर्चा करते हुए वह कहते हैं, "कारण्ड व्यूह में अवलोकितेश्वर की महा करुणा के अनेक वर्णन उपलब्ध होते हैं। वे अवीचि नामक नरक में जाकर नारकियों को दु:ख से बचाते हैं। वे प्रेत भूत

एव राक्षस की योनियों में वर्तमान प्राणियों की भी रक्षा करते हैं। तथा उन्हें सुख पहुँचाते हैं।" (वही)

इसी प्रकार चीनी यात्री ह्वेनसाङ्ग को भी जब डाकू वेदी पर देवी को बलि चढाने हेतु (उसे) बाँध रक्खा था भगवान बुद्ध का नाम स्मरण करते ही संकट से छुटकारा पा गया था। बहुत बड़ा तूफान आया और भयभीत डाकुओं ने उसे आजाद कर दिया।

लेकिन इस अवसर पर एक बात मन में जरूर उठती है कि जब बौद्ध किसी भगवान को मानते ही नहीं तब वह भगवान के नाम के स्मरण को क्यों महत्त्व देंगे ?

वस्तु स्थिति यह है कि बौद्ध भगवान को मानते हैं या नहीं मानते हैं लेकिन भगवान बुद्ध को वह सर्वज्ञ और सर्व समर्थ तथा देवों का देव मानते हैं और जिस प्रकार सनातनधर्म के लोग भगवान राम व कृष्ण के नाम जप में विश्वास करते हैं उसी प्रकार बौद्ध भक्त भगवान बुद्ध के नाम का जप महत्त्वपूर्ण मानते हैं।

पाश्चात्य विद्वान कर्न ने भी लोटस की भूमिका में उन्हें देवों का देव, भगवान, सर्व शक्तिमान और सर्वज्ञ माना है—

There is to my comprehension, not the slightest doubt that Saddharama Pundarıka intends, sakya as the supreme being, as god of gods, almighty and all wise.

अर्थात मेरी समझ में जरा भी सन्देह नहीं है कि सद्धर्म पुण्डरीक शाक्य मुनि को भगवान, देवों का देव, सर्व शक्तिमान और सर्वज्ञ के रूप में प्रतिष्ठित करता है। यही नहीं बौद्धधर्म में २८ बुद्धों की पूजा की जाती है। वन्दना की जाती है। ये अट्ठाइसों बुद्ध जो निर्वाणमृत के दानकारी, वीत राग और समाहित हैं मैं उनको नत मस्तक होकर निन्य वन्दना करता हूँ।

दीप नाथा पतिट्ठाता च ताणा लेना च पाणिनं।
गती बन्धु महस्सासा, सरण च हितेसिनो॥ १६॥

(बौद्धचर्या पद्धति, अष्टविंशति बुद्ध वन्दना, १६)

अर्थात ये सब बुद्ध भवसागर में भासमान जीवों के लिए द्वीप स्वरूप तथा अनाथों के नाथ, अप्रतिष्ठवों की प्रतिष्ठा, त्राणहीनों के त्राण, आलयहीनों के आलय, अगतियों के गति, बन्धुहीनों के बन्धु, नैराशों की आशा, अशरणों के शरणं और सबके हितकारी होते हैं।

पुनश्च—

सदेव कस्स लोकस्स सव्वे एते परायणा।
ते साहं सिरसा पादे वन्दामि पुरि सूत्तमे॥ (वही. १७)

अर्थात ये सब देवता और मनुष्यादि सब लोगों के परम आश्रय है। मैं इन सब पुरुषोत्तमों के श्री पाद-पद्मों में नत मस्तक होकर वंदना करता हूँ।

(बौद्धचर्या पद्धति)

उपरोक्त उद्धरणों से यह बात सिद्ध हो जाती है कि बौद्ध भक्त भगवान बुद्ध की सर्व समर्थ और सर्वज्ञ भगवान के अवतार रूप में नाम जप करते है। और उन्हें सनातनधर्म के भक्तों की तरह भजते हैं उन्हें भी विश्वास है कि—"ये सब बुद्ध भवसागर में भासमान जीवों के लिए द्वीप स्ववरूप तथा अनाथों के नाथ हैं" यही बात सनातन धर्मी भी कहता है।

नाम लेत भव सिन्धु सुखाहीं।
करहु विचार सुजन मन माहीं॥ (रामचरितमानस)

मन्त्रजप

सनातनधर्म में मन्त्र जाप का बड़ा महत्त्व है। वेद विशेषकर अथर्ववेद, शतपथब्राह्मण, मीमांसाशास्त्र और पुराण इसके गुणगान से भरे पड़े हैं। तान्त्रिक पद्धति वाले आगम ग्रन्थों (जिनमें शिव-पार्वती के संवाद से कथायें कही जाती है) में भी मन्त्रों का गुणानुवाद है।

सनातनधर्म की तीनों उपासना पद्धतियों भक्ति, ज्ञान और कर्म में ही नही अपितु योग, यज्ञ और तन्त्रों में भी मन्त्रों का अवर्णनीय प्रभाव बताया गया है। भक्ति के क्षेत्र में गुरु प्रदत्त मन्त्रों का महत्त्व बताते हुए महान सन्त देवरहा बाबा कहते हैं—"बच्चा! गुरु तत्त्व की सम्पूर्ण शक्ति गुरु मन्त्र में निहित है। गुरु प्रदत्त बीज मन्त्र शिष्य के हृदय में अनन्त प्रकाश को प्रज्ज्वलित कर देता है।" पुनः वह इसी को स्पष्ट करते हुए आगे कहते हैं—"यों तो ब्रह्म तत्त्व सर्वत्र व्याप्त है परन्तु उसके साक्षात के लिये गुरु मन्त्र अपेक्षित है। जिस प्रकार काष्ठ में निहित अग्नि का साक्षात संघर्ष से होता है—इसी प्रकार मन्त्र द्वारा हृदय में ब्रह्माग्नि का साक्षात्कार होता है।" (सर्वात्म दर्शन द्वितीय अध्याय)

कलियुग में योगसाधना बड़ी कठिन है अतः शिवजी ने लोगों के उद्धार के लिये सावर मन्त्रों का निर्माण किया है। रामचरितमानस में तुलसीदासजी मन्त्र जाप की महिमा बताते हुए कहते हैं कि बिना अर्थ समझे भी जो जाप करेगा उसे फल प्राप्त होगा—

अन मिल आखर अरथ न जापू।
प्रगट प्रभाव महेश प्रतापू॥

महर्षि वाल्मिकी के विषय में कहा जाता है कि उन्होंने राम मन्त्र के स्थान पर मरा-मरा का जप किया तो भी वह शुद्ध हृदय वाले महर्षि बन गये—

जान आदि कवि नाम प्रतापू।
भयउ शुद्ध करि उल्टा जापू॥

श्री द्यालजी के अनुसार राम मन्त्र ही सबका सार है—

पावन पतित मोक्ष को मारग ररो ममो तत सारं।
या सम धर्म और नहिं, तोलं मन्त्र सजीवन सारं॥

(श्री द्याल ग्रन्थ भाग)

मनु महाराज ने गायत्री मन्त्र के पाठ को सम्पूर्ण वेद के पाठ के बराबर पुण्य देने वाला बताया है—

एतदक्षरमेतां च जपन् व्याहृतिपूर्विकाम्।
सन्ध्ययोर्वेदविद्विप्रो वेदपुण्येन युज्यते॥

(मनु० २-८१)

अर्थात ॐकारपूर्वक तीन पादों वाली व्याहृतिपूर्वक सावित्री (गायत्री मन्त्र) का जप दोनों सन्ध्याकाल में करने वाला वेदज्ञ ब्राह्मण सम्पूर्ण वेदपाठ किए हुए पुण्य से युक्त होता है।

सन्ध्या न करने वाले ब्राह्मण को ब्राह्मण कर्मों से बहिष्कृत करने का विधान है—

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।
स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः॥

(मनु० २-१०६)

अर्थात जो प्रातः और सायं सन्ध्याओं को नहीं करता है उसे सभी द्विज-कर्मों से शूद्र की तरह बहिष्कृत कर देना चाहिए।

योग में मन्त्र जप

पातंजल योग के समाधि पाद में २३वाँ सूत्र है—ईश्वर प्राणीधान द्वा। अर्थात ईश्वर में परानुरक्ति-अर्थात ईश्वर में तैलधारा वत अविच्छिन्न भाव से भी समाधि लाभ होता है।

महान सन्त देवरहा बाबा इसकी व्याख्या करते हुए बताते हैं—बच्चा! महर्षि ने आगे के सूत्रों में प्राणीधान की प्रक्रिया भी बता दी है—

तस्य वाचकः प्रणवः॥ २७॥

अर्थात उस ईश्वर का वाचक ओउम (ॐ) है 'तज्जयस्तदर्थ भावनम्' (२८) अर्थात उसका जप और उसके अर्थ स्वरूप परमेश्वर का भावन अर्थात चिन्तन करना चाहिए ऐसा करने से 'ततः प्रत्यक्चेतनाधि गमोऽप्यन्तराया-भावश्च' प्रत्यक् चेतना अर्थात अन्तरात्मा के स्वरूप का ज्ञान और उसकी

उपलब्धि में आने वाले विघ्नों का अभाव होता है। दृष्टा जीव को अपने स्वरूप का बोध हो जाता है। (सर्वात्म दर्शन अ० २)

नाथयोग

योगी गोरखनाथजी ने भी बताया है कि—इस शरीर में ही सारा ब्रह्माण है। इसकी अनुभूति भी ओंकार जप से हो जाती है—

शुचिवाप्य शुचिर्वापि, यो जपेत् प्रणवंसदा।
न स लिप्यति पापेन, पद्मपत्रमिवाम्भसा॥

तन्त्रयोग

देवराहा बाबा कहते हैं, "योग यज्ञ में मन्त्रों का ही विधान है। बच्चा तन्त्रों में भी योग-यज्ञ है। कुण्डलनी शक्ति को जगाना गोमेध यज्ञ कहलाता है। फिर चक्र भेदन भी तो यज्ञ ही है। मणिपूर चक्र का भेदन अश्वमेध कहलाता है—अनाहत काश्येन यज्ञ है और सहस्रार का सोम यज्ञ है।" (वही)

यज्ञ में मन्त्र

यज्ञ का मूल ग्रन्थ मन्त्रों से भरा पड़ा है। मन्त्रों का उच्चारण सम्बन्धी भाग संहिता कहलाता है। इस संहिता भाग का शुद्ध पाठ करने वाले ही कर्म काण्ड के अधिकारी होते हैं।

इस प्रकार मन्त्र जप भी मनुष्यत की अज्ञानता को दूर करा कर मोक्ष प्रदान करने वाला साधन है।

बौद्धधर्म में मन्त्र

आचार्य बलदेव उपाध्याय लिखते हैं—"त्रिपटकों के अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि तथागत की मूल शिक्षा में भी मन्त्र और तन्त्र के बीज अन्तर्निहित थे। मानुष्य बुद्ध के पक्षपाती होने वाले स्थिवर वादियों ने भी आटा नाटी सुत्त में इस प्रकार की अलौकिक बातों का प्रारम्भ कर दिया। पीछे के आचार्यों का बुद्ध से ही तन्त्र मन्त्र के आरम्भ होने में दृढ़ विश्वास है।"

(बौद्ध दर्शन मीमांसा अ २२, बुद्ध तन्त्र)

इसी प्रकार साधन माला से भी यही बात सिद्ध होती है कि बहुत से मन्त्र बुद्ध ने ही बनाये हैं। यही बात गुह्य समाज नामक पुस्तक से भी सिद्ध होती है।

महायानी सम्प्रदायों में मन्त्र यान, वज्र यान, काल चक्र यान में तो मन्त्रो का ही महत्त्व है उन्हीं से निर्वाण प्राप्त होती है।

'करण्ड व्यूह' का षटक्षर मन्त्र 'ॐ मणि पद्मे हूँ' तिब्बत में बहुत प्रसिद्ध है। इसकी बड़ी मान्यता है।

इसी प्रकार सुखावती व्यूह में नाम जप से सुखावती में जन्म पाने की बात कही गई है।

इसी प्रकार कलकत्ता, बम्बई तथा राजगृह के जापनी मन्दिरों में नम्यो होर गेक्यो (अर्थात नमस्कार है सद्धर्म पुण्डरीक को) की ध्वनि गूँजती है।

निरिचेन सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय का मूल मन्त्र है 'नमः पुण्डरीकाय'। सनातनधर्म में जिस प्रकार गुरु प्रदत्त मन्त्र से भगवान का साक्षात्कार हो जाता है उसी प्रकार निचरेन सम्प्रदाय के लोगों का विश्वास है कि 'नमः पुण्डरीकाय' मन्त्र के जप से मनुष्य को यह अनुभूति होती है कि शाक्य मुनि इसी जगत में हैं। और हम लोगों में उन्हीं का प्रकाश है।

तन्त्र साहित्य के 'अष्टमी व्रत विधान' नामक ग्रन्थ में भी मन्त्रों और मुद्राओं का विधि विधान बताया गया है।

बौद्धधर्म में धारणी का प्रयोग भी मन्त्रों की तरह होता है यह सनातनधर्म के कवच के समान रक्षा करती हैं।

आचार्य नरेन्द्र लिखते हैं, "जो काम वैदिक मन्त्र करते थे, विशेषकर अथर्ववेद के वही कार्य बौद्धधर्म में धरणी करती है। अल्याक्षरा, प्रज्ञा पारमिता सूत्र धरणी का काम करते हैं।"

धरणी और मन्त्र में यही एक अन्तर है कि धरणी के अन्त के अक्षरों का कोई अर्थ नहीं होता यथा सद्धर्म पुण्डरीक समन्त भद्रोत्साहन परिवर्त में महासत्त्व बोधिसत्त्व समन्तभद्र भगवान से बोले, हे भगवन मैं इन्हें धारणी दूँगा, जिससे यह धर्म त्राणक किसी के द्वारा घर्षणीय नहीं होंगे (मैं) इनकी रक्षा करूँगा, कल्याण करूँगा, (इन्हें) दण्ड से बचाऊँगा और इनके विष (पापों) को नष्ट करूँगा, हे भगवन धरणी पद ये हैं—अदण्डो दण्ड पति, दण्ड वर्तानि, दण्ड कुशले, दण्ड सुधारि, सुधारि सुधार पति बुद्ध पश्यने सर्व धारणी आवर्तनि संवर्तनि संघ परीक्षिते, संघ निघातनि धर्म परीक्षिते सर्व सत्वरुव कौशल्यानुगते सिंह विक्रीड़िने वर्तनि वर्तालि स्वाहा।"

(सद्धर्म पुण्डरीक, समन्त भद्रोत्साहन परिवर्त)

पुनश्च—महासत्त्व बोधिसत्त्व प्रदान शूर ने भी यक्ष, राक्षस, पूतन, कृत्य कुम्भाण्ड या प्रेत से रक्षा हेतु भगवान को सुनाया—

ज्वले महाज्वले उक्के तुक्के भुक्के अड़े अड़ावति नृत्ये नृत्यावति इट्टिनि, विट्टिनि चिट्टिनि नृत्यनि नृत्यावति स्वाहा। (सद्धर्म पुण्डरीक, धरणी परिवर्त)

इस प्रकार जो कार्य सनातनधर्म में मन्त्र और कील तथा कवच करते हैं वही कार्य बौद्धधर्म में मन्त्र तथा धारणी भी क्रमशः करते हैं।

धरणी, अनावृष्टि, रोग तथा भूत प्रेत आदि दुष्ट आत्माओं से रक्षा करते हैं।

दोनों में समता

(१) दोनों स्नान करके पवित्र होकर मन्त्रों का जप करते हैं।

(२) दोनों इन मन्त्रों को गुरु मुख से सुनते हैं।

(३) दोनों मन्त्रों को लौकिक और पार लौकिक सिद्धियों की प्राप्ति का अमोघ अस्त्र मानते हैं।

अन्तर

(१) सनातनधर्मी मन्त्र जप प्रारम्भ करने के पूर्व षट कर्म नाड़ी शोधन आदि करते हैं।

(२) हवन करते हैं।

(३) कुश पैती आदि अँगुलियों में पहनते हैं।

(४) शुभ दिन व लग्न में मन्त्र पाठ प्रारम्भ करते हैं। जबकि बौद्ध ये सब कुछ आवश्यक नहीं मानते हैं।

वर्णाश्रम

सनातनधर्म में आश्रम-व्यवस्था

सनातनधर्म में मनुष्य की आयु सौ वर्ष निर्धारित की गई है और उसके चार बराबर भाग किये हैं अर्थात प्रत्येक भाग को पचीस वर्ष का रक्खा गया है। इन्ही भागों को आश्रम कहा गया है। आश्रम शब्द श्रम से बना है श्रम का अर्थ परिश्रम या उपासना है। चूँकि प्रत्येक अवस्था में व्यक्ति को किसी न किसी प्रकार की साधना अपने लक्ष्य (मोक्ष) की प्रति के लिये करनी पड़ती है अतः उसके (काल या आयु विभाजन के प्रत्येक भाग को) आश्रम कहा गया है। आश्रम चार है—(१) ब्रह्मचर्य आश्रम, (२) गृहस्थ आश्रन, (३) वानप्रस्थ आश्रम और (४) संन्यास आश्रम।

ब्रह्मचर्य आश्रम

उपनयन (यज्ञोपवीत संस्कार) के बाद समावर्त्तन संस्कार तक का काल ब्रह्मचर्य आश्रम कहलाता है।

इस अवस्था में बालक गुरु के आश्रम में रह कर (१) शिक्षा ग्रहण करता है। (२) अपने और गुरु के लिये भिक्षा माँगता है (अधिक नहीं) तथा (३) ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करता है।

ब्रह्मचारी का गणवेश—उपनयन, मेखला, दण्ड, मृग चर्म भगवा

उपनयन—उपनयन की अवस्था में मनुस्मृति में निम्न व्यवस्था है—

ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यो विप्रस्य पञ्चमे।
राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे॥

(मनु० २-३९)

अर्थात ब्रह्मतेज की कामना करने वाले ब्राह्मण का गर्भ से पाँचवें वर्ष में, बल की कामना वाले क्षत्रिय ६वें वर्ष में और धनाभिलाषी वैश्य को ८वें वर्ष में उपनयन करना चाहिये।

भिक्षाटन—

समाहृत्य तु तद्भैक्ष्यं यावदन्नममायया।
निवेद्य गुरवेऽश्नीयादाचम्य प्राङ्मुखः शुचिः॥

(मनु० २-५३)

अर्थात अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करता हुआ क्रम से तीनों वेद या दो वेद या एक ही वेद पढ़कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे।

गौतम स्मृति से भी ब्रह्मचारी के व्रतों द्वारा इन्हीं उपरोक्त बातों के पालन पर प्रकाश पड़ता है महर्षि गौतम ब्रह्मचारी को निम्न चार व्रतधारण हेतु कहते हैं, पहला—मन, वचन और कर्म से ब्रह्मचर्य का पालन, दूसरा व्रत है—भोजन और वस्त्र में सादगी, तीसरा व्रत है—गुरु के प्रति आज्ञाकारिता की भावना और चौथा व्रत है—विद्या (ज्ञान प्राप्ति) हेतु प्रयत्न।

गृहस्थाश्रम

विद्याध्ययन के बाद व्यक्ति सजातीय, सुलक्षणा, और अनुकूल कन्या से विवाह करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है। उसके नित्य कर्त्तव्यों का वर्णन मनुजी ने निम्न प्रकार किया है—

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान्वेदतत्त्वार्थमेव च॥
उत्थायावश्यकं कृत्वा कृतशौचः समाहितः।
पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत्स्वकाले चापरां चिरम्॥ (मनु० ४/९२, ९३)

अर्थात गृहस्थ को ब्रह्ममुहूर्त में उठना चाहिये और धर्म तथा अर्थ के विषय में चिन्तन करना चाहिए। और उसके लिये जो शरीर को कष्ट उठाना पडता है उसका तथा वेद के तत्वार्थ का भी विचार करे।

तत्पश्चात उठकर आवश्यक कार्य सम्पन्न कर शौचादि से निवृत्त हो एकाग्रचित हो प्रातःकालीन संध्या कर गायत्री मन्त्र जपे। सायंकालीन सन्ध्या करके देर तक गायत्री मन्त्र का जप करे। संध्या में हवन किया जाता है। जिसे देवयज्ञ भी कहते हैं। इन संध्याओं के साथ ही गृहस्थ के लिये और भी चार यज्ञों का विधान है। मनुस्मृति में इन पंच यज्ञों का वर्णन निम्न प्रकार से है—

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथि पूजनम्॥

(मनु० ३-७०)

अर्थात वेद का पढ़ना-पढ़ाना, ब्रह्मयज्ञ, पितरों का तर्पण करना, पितृ यज्ञ, हवन करना, देवयज्ञ, जीवों को अन्न की बलि देना, भूतयज्ञ और अतिथि का आदर-सत्कार करना मनुष्य यज्ञ है।

गृहस्थ को भोजन करने में सावधानी रखनी पड़ती है।

सुवासिनीः कुमारीश्चः रोगिणीः गर्भिणीः स्त्रियः।
अतिथिभ्योऽन्वगेवैतान् भोजयेदविचारयन्॥

(मनु० ३-११४)

पुनश्च— **भुक्तवत्स्वथ विप्रेषु स्वेषु भृत्येषु चैव हि।**
भुञ्जीयातां ततः पश्चादवशिष्टं तु दम्पती॥

(मनु० ३-११६)

अर्थात नई बहू, कन्या, रोगी और गर्भिणी स्त्रियाँ इन सब को अतिथियों के पहले बिना विचारे भोजन करा दें। तत्पश्चात् पहले ब्राह्मणों और अपने **भृत्यों को भोजन करा कर** पीछे जो अन्न बचे **वह पति-पत्नी खायें।**

इतना ही नहीं, **कोई भी भूखा घर पर आ जाय तो उसे खिला कर तब खायें** अन्यथा पाप का भार्गी होना पड़ता है—

देवानृषीन्मनुष्यांश्च पितृन्गृह्याश्च देवताः।
पूजयित्वा ततः पश्चाद्गृहस्थः शेषभुग्भवेते॥

(मनु० ३-११७)

अर्थात देवता, ऋषि, मनुष्य, पितर और गृह देवताओं का अन्नादि से पूजन करके पीछे बचा हुआ अन्न गृहस्थ खाएँ।

नास्तिक्यं वेदनिन्दां च देवतानां च कुत्सनम्।
द्वेषं दम्भं च मानं च क्रोधं तैक्ष्ण्यं च वर्जयेत्॥

(मनु० ४-१६३)

अर्थात नास्तिकता, वेदनिन्दा, देवनिन्दा, द्वेष, दम्भ, अभिमान, क्रोध और कटुता करने से मना किया गया है।

उसे इन्द्रिय संयम की आज्ञा दी गई है—

न पाणिपादचपलो न नेत्रचपलोऽनृजुः।
न स्याद्वाक्चपलश्चैव न परद्रोहकर्मधीः॥

(मनु० ४-१७७)

अर्थात हाथ और पैरों की चपलता न करे, नेत्रों की चपलता न करे, सद्य सरल रहे, वाणी की चपलता न करे और दूसरों की बुराई करने में कभी मन न लगाये।

गृहस्थ को अपने अधीन माता-पिता, छोटे भाई, अविवाहित बहने, विधवायें और असमर्थ बालिकायें तथा कुटुम्ब के अन्य असहाय सदस्यों के भरण पोषण की जिम्मेदारी सौंपी गई है। (अर्थशा० भाग २, अं० १-४८)

उसे अपने बच्चों को पढ़ाने लिखाने की जिम्मेदारी सौंपी गई है। चाणक्य ने बालकों को शिक्षा न देने वालों को बालकों का शत्रु कहा है—

मातः शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभा मध्ये हंस मध्ये वको यथा॥

अर्थात वह माता शत्रु और पिता वैरी के समान है जिन्होंने अपने बालक को विद्या नहीं पढ़ायी। वह बालक सभा में वैसे ही शोभा नहीं पाता, (आदर नही पाता) जैसे हंसों के बीच बगुला। (चाणक्य नीति २-११)

वानप्रस्थाश्रम

सनातनधर्म में गृहस्थाश्रम में रहने की अवधि पचास वर्ष तक निर्धारित है लेकिन मनु जी जैसे स्मृतिकारों ने गृहस्थाश्रम त्याग कर वानप्रस्थाश्रम ग्रहण करने हेतु कुछ और भी शर्तें निर्धारित की हैं—

गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः।
अपत्यस्यैव चापत्यं तदाऽऽरण्यं समाश्रयेत्॥ (मनु० ६-२)

अर्थात गृहस्थ जब देखे कि अपने शरीर पर झुर्रियाँ पड़ गई हैं, केश श्वेत हो गये हैं और अपने पुत्र के भी पुत्र हो चुके हैं, तब वन में आश्रय करे। मनु जी आगे कहते हैं—

सन्त्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदम्।
पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा॥ (मनु० ६-३)

अर्थात ग्राम आहार (जोते बोये खेत का अन्न आदि) और वस्त्रालंकार आदि को त्याग कर स्त्री को पुत्र के सुपुर्द कर अथवा अपने साथ ही वन में ले जाय।

वह वन गमन के समय अपने यज्ञ सम्बन्धी उपकरण भी साथ ले जायगा—

अग्निहोत्रं समादाय गृह्यं चाग्निपरिच्छदम्।
ग्रामादरण्यं निःसृत्य निवसेन्नियतेन्द्रियः॥

(मनु० ६-४)

अर्थात गाँव से वन जाते समय घर की होमाग्नि और उसके उपकरण (स्रुक, स्रुवा) आदि भी लेकर निकले और इन्द्रिय संयम करते हुए वन में निवास करे।

पंचयज्ञ और वानप्रस्थी

वानप्रस्थ ग्रहण कर व्यक्ति गृह त्याग कर वन में चला जाता है। घर की अनेक जिम्मेदारियों से फुर्सत पा जाता है लेकिन पंच यज्ञों से फुर्सत नहीं पाता है—

यद्भक्षः स्यात्ततो दद्याद् बलिं भिक्षां च शक्तितः।
अम्मूलफलाभिक्षाभिरर्चयेदाश्रमागतान्॥

(मनु० ६-७)

अर्थात आश्रम में जो विहित भोजन हो, उसी में से यथाशक्ति बलि और भिक्षा दे। आश्रम में आये हुए अतिथि को जल, मूल-फल की भिक्षा से सत्कार करे। साथ ही वेदाध्ययन (ब्रह्मयज्ञ) भी करते रहें। परोपकार, इन्द्रियसंयम और दान में रत रहे—

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दान्तो मैत्रः समाहितः।
दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः॥

(मनु० ६-८)

अर्थात वेदाध्ययन में नित्य लगा रहें—जाड़ा गर्मी को सहे, सबका उपकार करे, मन को अपने वश में रख नित्य दान करे, पर आप प्रतिग्रह न ले और सब जीवों पर दया रक्खे।

दार्स पौर्णमास यज्ञ भी न छोड़े—

वैतानिकं च जुहुयादग्निहोत्रं यथाविधिः।
दर्शमस्कन्दयन्पर्व पौर्णमासं च योगतः॥

(मनु० ६-९)

अर्थात अमावस्या और पूर्णिमा दोनों पर्वों के यज्ञों को न छोड़ता हुआ समय पर तथोक्त विधि से वैतानिक दक्षिणाग्नि कुण्ड में अग्नि होत्र करे।

इसी प्रकार अन्य वेदकर्म भी करने का विधान है।

वानप्रस्थी के वस्त्र

वसीत चर्म चीरं वा सायं स्नायात्प्रगे तथा।
जटाश्च बिभृयान्नित्यं श्मश्रुलोम नखानि च॥

(मनु० ६-६)

वानप्रस्थी मृगचर्म या वल्कल पहने, प्रातः और सायंकाल स्नान करे। जटा, दाढ़ी, मूँछ और नख इनको नित्य धारण करे।

उपरोक्त सात चीजों को अपनाने या प्रयोग करने से वह भिन्न-भिन्न सात नामों से पुकारा भी जाता था—यथा नीली शिखाधारणा करने के कारण काल शिखा, दण्ड धारण करने के कारण उदण्डक, पत्थर पर निवास करने के कारण अश्मकुह। दाँत को ओखली की जगह प्रयोग करने के कारण दन्त उलुखलिक, हाथ में भिक्षा पात्र या उछोह लिये रहने के कारण उछोहवृत्तिक, बेलपत्र व फल पर रहने के कारण वेल वासिन, चारों ओर अग्नि रख कर तपस्या करने के कारण पंच मध्यमाग्नि कहलाता था (भारतीय संस्कृति व सभ्यता)। (संस्कार एव यज्ञ म०म० डॉ० प्रसन्नकुमार आचार्य)

संन्यास आश्रम

पचहत्तर वर्ष की अवस्था पूर्ण होने पर व्यक्ति संन्यास ग्रहण करता है—

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत्।
अनपाकृत्य मोक्षं तु सेवमानो व्रजत्यधः॥

(मनु० ६-३५)

अर्थात तीनों ऋणों (देव, ऋषि और पितृऋण) से मुक्त होकर मन को मोक्ष में लगाये। ऋण से उऋण हुए बिना जो मोक्षार्थी होता है वह नरकगामी होता है।

अर्थात वेद पढ़कर पुत्र उत्पन्न कर यज्ञों का अनुष्ठान करके तब संन्यास ग्रहण करे। संन्यास ग्रहण के पूर्व अपना सबकुछ दान देने वाली प्रजापत्य यज्ञ भी उसे करना पड़ता है—

प्राजापत्यां निरुप्येष्टिं सर्ववेसदक्षिणाम्।
आत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद्गृहात्॥

(मनु० ६-३८)

अर्थात प्रजापत्य यज्ञ (जिसमें सबकुछ दक्षिणा दे दी जाती है) को शास्त्रोक्त विधि से पूरा करके अपने से अग्नि को समारोपित कर ब्राह्मण संन्यास ग्रहण करने के लिये घर से निकले।

संन्यासी की रहनी या आचार

संन्यासी को व्यर्थ बातचीत और स्वादिष्ट भोजन करने से मना किया गया है—

आगारादभिनिष्क्रान्तः पवित्रोपचितो मुनिः।
समुपोढेषु कामेषु निरपेक्षः परिव्रजेत्॥ (मनु० ६-४१)

अर्थात घर से निकल कर दण्ड-कमण्डलु आदि पवित्र पदार्थों को साथ में ले, किसी से वृथा भाषण न करे और स्वादिष्ट भोज्य पदार्थों की भी कोई इच्छा न करके भिक्षाटन हेतु भ्रमण करे। आगे कहा है—

अनग्निरनिकेतः स्याद्ग्राममन्नार्थमाश्रयेत्।
उपेक्षकोऽसाङ्कुसुको मुनिर्भाव समाहितः॥

(मनु० ६-४३)

अर्थात अग्नि और गृह से रहित होकर रहे, रोगादि की परवाह न करे। स्थिर बुद्धि और मौन हो विशुद्ध भाव से ब्रह्म का मनन करता हुआ भोजन के लिये गाँव में जाय।

आँख से जमीन देख कर पैर रखे, जल छान कर पीये, सत्य वचन बोले, और पवित्र मन से कार्य करे।

वाद-विवाद न करे, क्रोध न करे, शत्रुता न करे, निन्दा न करे, पाँचों ज्ञानेंद्रियों अर्थात आँख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा तथा मन और बुद्धि इन के द्वारा ग्रहण किये जाने वाले विषयों अर्थात रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श, सम्बन्धी मनन, विचार की चर्चा न करे।

ग्रह नक्षत्रों के फलाफल या नीति के उपदेश देकर या शास्त्र की बात के बदले भिक्षा न ले। बुद्ध भी नहीं लेते थे। भिक्षा न मिलने पर विवाद न करे और मिलने पर हर्ष भी न करे। प्राणरक्षा हेतु भिक्षान्न से जीवन निर्वाह करे। दण्ड कमण्डल में भी आसक्ति न रखे। (मनु० ६-५७)

अल्पाहार और एकान्त निवास इन दो उपायों से विषयों द्वारा खींची जाने वाली इन्द्रियों को वश में करे। (मनु० ६-५९)

आग तपाने से जैसे धातुओं का मैल जल जाता है, वैसे ही प्राणायाम से इन्द्रियों के दोष जल जाते हैं अतः संन्यासी को प्राणायाम करना चाहिए।

(मनु० ६-७१)

उसे शरीर और संसार की नश्वरता का निरन्तर विचार करते रहना चाहिये—

जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम्।
रजस्वलमनित्यञ्च भूतावासमिमं त्यजेत्॥

(मनु० ६-७६)

अर्थात जरा और शोक से आक्रान्त रोगों का घर भूख-प्यास से व्याकुल, भोगाभिलाषी और क्षणभंगुर शरीर जो पंचभूतों का निवास स्थान है, यह जानकर त्याग ही देना चाहिए। अर्थात **शरीर का मोह त्याग देना चाहिए।**

कपालं वृक्षमूलानि कुचैलमसहायता।
समता चैव सर्वस्मिन्नेतन्मुक्तस्य लक्षणम्॥

(मनु० ६-४४)

अर्थात भोजन हेतु खप्पर रहने हेतु वृक्ष की जड़ (तकिया हेतु) किसी सहायक का न रहना, पहिनने के लिये मोटा कपड़ा तथा सर्वत्र समभाव रखना सन्यासी के लक्षण हैं।

बौद्धधर्म में आश्रम-व्यवस्था

बौद्धधर्म में मुख्य रूप से दो ही आश्रम हैं—एक गृहस्थाश्रम (उपासक) दूसरा भिक्षु आश्रम (संन्यास)।

लेकिन यदि ध्यान से देखा जाय तो वहाँ पर भी चार आश्रम हैं—(१) विद्यार्थी जीवन या श्रमणोर, (२) गृहस्थ या उपासक जीवन, (३) अरण्यक तथा (४) भिक्षु।

टिप्पणी

विद्यार्थी जीवन—बौद्धधर्म में विद्यार्थी जीवन भी दो प्रकार का है। एक उन लोगों का जो भिक्षु बनना चाहते हैं लेकिन उनकी आयु बीस वर्ष से कम है। दे किसी विहार या बौद्ध संघ के सदस्य के रूप में रहकर भिक्षु धर्म का पूर्वाभ्यास

करते हैं और बीस वर्ष आयु पूरी होने पर संघ के पूर्ण सदस्य (भिक्षु तत्पश्चात स्थविर या महास्थविर) के रूप में रहते हैं। वे श्रमणेर कहलाते हैं और जो गृहस्थ बनना चाहते हैं वे किसी विद्यालय या विश्वविद्यालय आदि में पढ़ते हैं।

इस प्रकार यदि स्कूली और विश्वविद्यालयी शिक्षा उपासक जीवन (गृहस्थाश्रम) का पूर्वाभ्यास है तो श्रमणेर जीवन भिक्षु का पूर्वाभ्यास काल है।

विद्यार्थी-जीवन-काल—मनुस्मृति के अनुसार विद्यार्थी जीवन क्रमश: ५, ६, ८ (ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य) से प्रारम्भ होता है। यही बात विद्यारम्भ के सम्बन्ध में भदन्त महास्थविर ग० प्रज्ञानन्द अपनी पुस्तक 'बौद्धों की हस्त पुस्तक' में लिखते हैं—

"जन्म के तीसरे वर्ष से लेकर सातवें वर्ष तक कभी भी बालक का विद्यारम्भ संस्कार होना चाहिये।" लेकिन भदन्त बोधानन्द जी (महास्थविर अपनी पुस्तक बौद्धचर्या पद्धति में विद्यारम्भ का काल भिन्न रखते हैं यथा—

"जन्म के पाँचवें या सातवें वर्ष के बच्चों को विद्यारम्भ कराया जाता है।" (संस्कार परिच्छेद)

उपरोक्त अन्तर प्राचीन और नवीन समाज और वातावरण का है। भदन्त प्रज्ञानन्दजी एक नवीन समाज को ध्यान में रख कर लिखते हैं तो भदन्त बोधानन्द जी परस्परानुसार लिखते हैं।

सनातनधर्म में विद्यार्थी ब्रह्मचारी कहलाते थे। वे ब्रह्म को धारण करते थे अर्थात ब्रह्मा के प्रत्यक्ष रूप विश्व के कल्याण को मन में रख कर काम करते थे। ब्रह्म की आज्ञा (शासन) के प्रतीक स्वरूप तीनों वेदों (ऋग्, साम, यजुर्वेद) के प्रतीक रूप में तीन तागों वाले यज्ञोपवीत को धारण करते थे और भगवान से प्रार्थना करते हैं (ॐ भूर्भुव: स्व: तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो योन: प्रचोदयात्) कि हे प्रभु हमारे अन्त: करण चतुष्टय को सत्कर्मों की ओर प्रेरित कीजिये।

उसके चार मुख्य कार्य थे—

प्रथम शिक्षा ग्रहण करना, द्वितीय गुरु की आज्ञा का पालन करना, तीसरा अपने और गुरु के लिये भिक्षा माँगना तथा चौथा ब्रह्मचर्य का पालन करना।

शिक्षा—पाठ्यक्रम वैदिक धर्म में विद्यार्थी वेद, स्मृतियाँ, उपनिषद, शास्त्र, पुराण, रामायण, महाभारत, पाणिनी की अष्टाध्यायी, कात्यायन की वार्तिक आदि पढ़ते थे। इसी प्रकार बौद्ध छात्र व्याकरण, हेतु विद्या, अभिधर्म कोष, जातकों का अध्ययन, बौद्धधर्म ग्रन्थ, वेद, शब्द, विद्या, तन्त्र, साख्य तथा अन्य विविध विषय पढ़ते थे।

दोनों में समानता—दोनों वेद, व्याकरण, शास्त्र, तन्त्र आदि पढ़ते थे। दोनों गृहस्थाश्रम में प्रवेश की तैय्यारी करते थे।

अन्तर—(सनातनधर्मी छात्र ब्रह्मचारी) भगवान की आज्ञा को जानने और उसको जीवन में उतारने का अभ्यास करता था तो बौद्धछात्र भगवान बुद्ध की आज्ञानुसार जीवन यापन की। इस प्रकार दोनों सदाचार पालन की तैय्यारी करते हैं और उसको जानने और जीवन में उतारने का अभ्यास करते हैं।

आज्ञा-पालन

सनातनधर्म के ब्रह्मचारी के समान बौद्धधर्म का छात्र (शिष्य) भी गुरु की सेवा व आज्ञा-पालन करता है। भगवान बुद्ध सिंगाल, नामक वैश्य पुत्र को आचार्य की सेवा सम्बन्धी शिक्षा देते हुये बताते हैं—

पच्च हि खो गहपति-पुत्त! ठाने हि अन्ते वासिना दक्खिणा दिसा आचरिया पच्चु पछितव्वा। उठानेन, उपठानेन, सुस्सुसाय, परिचरियाय, सक्कच्चं सिप्पुग्गहणेन। (सुत्त निपात-सिगालोवाद सुत्त)

अर्थात भगवान बुद्ध सिंगाल नामक वैश्य पुत्र को समझाते हुए कहते हैं कि गृहपति पुत्र! शिष्य अपने गुरु रूपी दक्षिण दिशा की पाँच प्रकार से सेवा करता है—(१) परिश्रम से, (२) आदरपूर्वक सेवा से, (३) अच्छी तरह से उपदेश सुनने से, (४) परिचर्या से और (५) विद्याध्ययन से।

बौद्धधर्म में भी छात्रों और अध्यापकों में प्रेम था वैदिक शिक्षा का यह सिद्धान्त कि "तपसा ब्रह्मचर्येण सिद्धया" बौद्ध परम्परा में भी मान्य था भगवान बुद्ध कहते हैं—हे भिक्षुओं! आचार्य को चाहिये कि वह अपने शिष्य को पुत्र की भाँति समझे और शिष्य को चाहिए कि वह अपने आचार्य को अपने पिता के समान समझे। इस प्रकार वे परस्पर एक दूसरे का आदर करते हुए धर्म की उन्नति करें। बुद्ध और बौद्धधर्म, आचार्य चतुरसेन शास्त्री (विनय पिटक-महावग्ग)

पुनः सिंगाल को गुरु के कर्त्तव्य बताते हुये भगवान बुद्ध कहते हैं, "इमे हिखो गहपति-पुत्तां! पच्च हि ठानेहि अन्ते वासिना दक्खिन दिसा आचरिया पच्चु पहिता पच्च हिठाने हि अन्तेवासि अनुकाम्पन्ति सुविनितं विनेन्ति। सुगहितं महापेन्ति। सव्व सिप्पं सव्व सुतं समग्गाहिनो भवन्ति। मिता मच्चे सुपटिया देन्ति। दिसासु परित्तानं करोन्ति। इमेहि खो गहपति पुचां...........अनुकम्पन्ति।"

अर्थात हे गृहपति पुत्र! शिष्य द्वारा पाँच प्रकार से सेवित आचार्यरूपी दक्षिण दिशा अपने शिष्य पर पाँच प्रकार से दया करती है। विनय को सिखाते हैं। सुग्राह्य शास्त्रों को सिखाते हैं। सब विद्याओं और श्रुतियों को सिखाते हैं। हित मित्र

प्रतिपादन करते हैं। सब दिशाओं में परित्राण करते हैं। गृहपति पुत्र! आचार्य अपने शिष्यों की रक्षा करते हैं। (बौद्धों की हस्त पुस्तक, म०ग० प्रज्ञानन्द, पृ० ४४)

बौद्ध-शिष्य का कार्य—(१) अपने और गुरु के लिये भोजन लाना, (२) मकान साफ करना, (३) कपड़े धोना, (४) गुरु के मरने पर या गृहस्थ आश्रम ग्रहण करने पर नया आचार्य ढूँढ़ना तथा (५) ब्रह्मचर्य का पालन करना।

गणवेष—(१) भगवा या अन्तरवासक, (२) दुपट्टा या उतरासंग, (३) सगाठी जो छाती के चारों ओर लपेटा जाता है या लबादा।

टिप्पणी—बौद्धधर्म में मृगचर्म के स्थान पर कपड़े का भगवा होता था। उत्तरीय दोनों प्रयोग करते थे। सनातनधर्म में संगाठी का प्रयोग नहीं था।

शयनासन—सनातनधर्म के ब्रह्मचारियों की तरह बौद्ध विद्यार्थी ऐसे पाषाण मच पर सोते थे जो अधिक आरामदायक नहीं थे। स्वानंनिद्रा योग्य ही थे।

(पालि साहित्य का इति० राहुल सांस्कृत्यायन व बुद्ध और बौद्धधर्म आ० चतुरसेन शास्त्री)

ब्रह्मचर्य—बौद्ध बालक भी हिन्दू बालक के समान ब्रह्मचर्य पालन का व्रत लेता है क्योंकि उसको पंचशील ग्रहण करना पड़ता है जिसमें उसे कामेसुमिच्छा चारा वेरमणी सिक्खापदं समादि यामि। अर्थात मैं परस्त्री गमनादि, नीतिविरुद्ध कामाचार से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ, का व्रत लेना पड़ता है।

गृहस्थाश्रम

सनातनधर्म की भाँति बौद्धधर्म में भी विवाह करके माता-पिता तथा अन्य परिजनों के साथ घर में रहना तथा कोई धर्मानुकूल जीविका से जीवन यापन करना गृहस्थाश्रम या उपासक जीवन कहलाता है। बौद्धधर्म अपने उपासक को कोई ऐसी जीविका से जीवनयापन की आज्ञा नहीं देता है जिसमें निम्न कार्य आते हैं—

जिससे दूसरों को हानि पहुँचे जैसे आयुध और घातक हथियारों, मादक द्रव्यों, विष (वध करने के लिये), प्राणियों के प्रति छल कपट पूर्ण व्यवसाय। अर्थात बौद्धधर्म में हथियारों, शराब आदि का, विष का व्यापार, ऐसा व्यापार जिसमें प्राणि वध हो या छल कपट करना पड़ता हो, मना है।

टिप्पणी—सनातनधर्म भी इन उपरोक्त कर्मों की आज्ञा ब्राह्मणों और वैश्यों को नहीं देता है लेकिन शूद्रों और (विशेष कर चाण्डालों) और क्षत्रियों को उनका स्वभाव जान कर शस्त्र व हिंसा आदि की अनुमति दे देता है।

बौद्धधर्म में माता-पिता के प्रति पुत्र का कर्त्तव्य

सनातनधर्म की भाँति बौद्धधर्म भी माता-पिता का आदर और उनकी आज्ञा का पालन तथा उनके बुढ़ापे में उनकी सेवा सुश्रूषा की आज्ञा देता है। वह माता-पिता का भरण-पोषण न करने वाले को नीच कहता है। भगवान बुद्ध श्रावस्ती के जेतवन से भिक्षाटन के समय अग्निक भरद्वाज को समझाते हुए कहते हैं—"जो समर्थ होते हुए भी अपने बूढ़े माता या पिता का भरण पोषण नहीं करता है, उसे वृषल जाने।"

पुनश्च—"जो माता पिता, भाई बहिन या सासु को मारता या कड़े वचन से क्रोध करता है उसे वृषल जाने।" (वंसल सुत्त १, ७, सुत्तनिपात १, १०)

माता-पिता की सेवा और पुत्र, स्त्री का पालन—भगवान श्रावस्ती के जेतवन संधा राम में आये हुये देवता को बताते है कि—"माता-पिता की सेवा करना, पुत्र-स्त्री का पालन पोषण करना और गड़बड़ न करना यह उत्तम मंगल है।" सुत्तनिपात (महामंगल सुत्त २-५) ५

बन्धु-बान्धवों का आदर सत्कार—भगवान उसी देवता को आगे बताते हैं—"दान देना, धर्माचरण करना, बन्धु बान्धवों का आदर सत्कार करना और निर्दोष कार्य करना यह उत्तम मंगल है।" सुत्तनिपात (महामंगल सुत्त २-४) ६

उपरोक्त को और स्पष्ट करते हुए भदन्त प्रज्ञानन्दजी अपनी पुस्तक बौद्धो की हस्त पुस्तक में लिखते हैं।

गृहपति पुत्र! पाँच प्रकार से माता पिता की सेवा करनी चाहिए,

(१) उन्होंने मेरा भरण-पोषण किया है अतः मुझे भी उनका भरण पोषण करना चाहिये।

(२) उन्होंने कुल परम्परा को बनाये रखा है अतः मुझे भी कुल परम्परा को बनाये रखना चाहिये।

(३) उन्होंने मुझे अपनी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बनाया अतः मुझे भी अपने पुत्र को उत्तराधिकार सौंपना चाहिए।

(४) ये श्रद्धापूर्वक दान करते हैं अतः मुझे भी दान करना चाहिए।

(५) वे पाप कर्म से दूर तथा पुण्य कर्म करते हैं मुझे भी वैसा करना चाहिए।

इसी प्रकार माता-पिता भी अपनी संतान पर पाँच प्रकार से दया करते हैं—

(१) पाप कर्म से दूर रखते हैं, (२) पुण्य कर्मों में लगाते हैं, (३) शिल्प सिखाते हैं, (४) योग्य स्त्री से विवाह करा देते हैं तथा (५) समय आने पर उत्तराधिकार सौंप देते हैं। (बौद्धों की हस्त पुस्तक)

गृहस्थ का बौद्ध गृहस्थ बनने हेतु पहले त्रिशरणा ग्रहण करना पड़ता है—(१) बुद्धं शरणं गच्छामि, (२) धम्मं शरणं गच्छामि, (३) संघं शरणं गच्छामि। अर्थात मैं बुद्ध की शरण में जाता हूँ। मैं धर्म की शरण में जाता हूँ। मैं संघ की शरण में जाता हूँ।

पंचशील का पालन

जिस प्रकार सनातनधर्मी हिन्दू गृहस्थ दस अङ्ग वाले धर्म का पालन करता है उसी प्रकार बौद्ध गृहस्थ पाँच अङ्गों वाले पंचशील का पालन करता है। यथा—(१) पाणाति पाता वे रमणी सिक्खापदं समादियामि।

(२) अदिन्नादाना वे रमणी सिक्खापदं समादियामि।

(३) कामेसु मिच्छरचारा वे रमणी सिक्खापादं समादियामि।

(४) मुसावादा वे रमणी सिक्खापादं समादियामि।

(५) सुरा मेरथ मज्जममाद ठ्ठाना वेरमणी सिक्खापादं समादियामि।

अर्थात मैं (१) प्राणी हिंसा से, (२) चोरी से, (३) परस्त्रीगमन, मिथ्याचार आदि दुराचारों से, (४) झूठ, कपट और चुगली से तथा (५) सुरा, मैरय, मदिरा आदि नशीली चीजों, प्रमाद के कारणों से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ। इसके अतिरिक्त बौद्ध गृहस्थ को सनातनधर्मी गृहस्थों की तरह (महीने में कुछ दिन) भिक्षु जीवन का आनन्द लेने हेतु दोनों अष्टमियों अमावस्या, पूर्णिमा अर्थात चार दिन उपोसथ व्रत रहना पड़ता है—उपोसथ व्रत आठ अङ्गों वाला है जिनमें पाँच तो उपरोक्त पंचशील ही है शेष तीन निम्नलिखित हैं—

(६) विकाल भोजना वे रमणी सिक्खा पादं समादियामि।

(७) नच्च, गीत, वादित-विसूक-दस्सन-माला-गंध-विलेपन-धारणा-मडन-विभूस ट्ठाना वेरमणी सिक्खापादं समादियामि।

(८) उच्चासयन-महासयना-वेरमणी सिक्खा पादं समादि यामि।

(९) अर्थात मैं विकाल भोजन से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ। (बारह बजे के बाद दूसरे दिन सूर्योदय तक का काल विकाल कहलाता है।)

(१०) मैं नाचने, गाने, बजाने, मेले, तमाशे देखने, माला, सुगंधित लेप आदि धारण करने तथा शरीर शृंगार के लिये किसी प्रकार के आभूषण धारण से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

(११) मैं बहुत ऊँची गुदगुदी विलासिता को बढ़ाने वाली शैय्याओं पर सोने से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

टिप्पणी—दोनों धर्मों में व्रत उपवास (गृहस्थों को) कहे गये हैं।

सनातनधर्म के पंचयज्ञ और बौद्धधर्म के गृहस्थ (उपासक)

सनातन हिन्दूधर्म में गृहस्थ नित्य देवयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, पितृतर्पण, भूतयज्ञ तथा अतिथियज्ञ करते हैं। बौद्धधर्म में भी उपासक इसको लगभग उसी रूप में कुछ सशोधनों के साथ करते हैं।

देवयज्ञ—सनातन हिन्दूधर्म में गृहस्थ अग्नि होत्र के कारण अपने इष्टदेव की पूजा करता है जबकि बौद्ध उपासक (गृहस्थ) अगरबत्ती जलाकर (अग्नि का ही रूप) भगवान बुद्ध की पूजा करता है। बौद्धचर्यापद्धति में भदन्त बोधानन्दजी लिखते हैं—''बुद्धधर्म के उपासकों को चाहिए कि प्रतिदिन प्रात:काल और सायं काल............इस पुस्तक में लिखे हुए पूजा मन्त्रों को ध्यान पूर्वक पढ़ते हुए भगवान बुद्ध का पंचोपचार (पुष्प धूप आदि से) पूजन करें।''

(बौद्धधर्मपद्धति, भूमिका)

टिप्पणी—सनातनधर्म में शोडषोपचार और पंचोपचार दोनों विधि प्रचलित है। बौद्धधर्म में हीनयानी पंचोपचार तथा महायानी शोडषोपचार पद्धति से पूजा करते हैं।

ब्रह्मयज्ञ (पवित्र धार्मिक पुस्तकों का पाठ)—मैंने यज्ञ नामक अध्याय के पंचयज्ञ प्रकरण में पंचयज्ञों का वर्णन किया है। वहाँ पर बौद्ध धर्मानुयायी ब्रह्म यज्ञ के समान पवित्र धार्मिक पुस्तकों, परित्राण सूत्रों, ललित विस्तर, सद्धर्म पुण्डरीक के पढ़ने से अनेक लौकिक और पारलौकिक लाभ बताये गये है। प्रत्येक धार्मिक संस्कार अथवा अनुष्ठान बिना परित्राण सूत्रों, मंगल सूत्रों आदि के पूरे नहीं होते हैं। हाँ, बौद्धधर्म में उन्हें सनातनधर्म की तरह नित्य कर्मो में अनिवार्य रूप से शामिल नहीं किया गया है।

भदन्त बोधानन्द की बौद्धचर्यापद्धति में, 'ललित विस्तर के निगम परिवर्त और संद्धर्भ पुण्डरीक' के भाणकानुशंसा परिवर्त में इनके पाठ का अवर्णनीय लाभ बताया गया है।

पितृतर्पण—सनातनधर्म में मातृपक्ष और पितृपक्ष की तीन पीढ़ियों माता-पिता, माना, नानी, दादा-दादी, परनाना, परनानी, मामा, मामी आदि को जल से तृप्त करना तर्पण कहलाता है। बौद्ध जन प्रतीक रूप से नहीं स्थूल रूप से पितरो को संतुष्ट करने में विश्वास रखते हैं। वे तर्पण नहीं श्राद्ध करते हैं और उनका विश्वास है कि पुत्र के सदाचार और परोपकार से पितरों की आत्मा तृप्त होती है। इस सम्बन्ध में भगवान बुद्ध द्वारा मौदगल्यायन को दिया गया उपदेश बड़ा महत्त्वपूर्ण है। भगवान मौदगल्यायन को बताते हैं कि ''चाहे माता-पिता जीवित हो या मृत्यु को प्राप्त हो गये हों, संतान के प्रेमपूर्ण कार्यों से उन्हें प्रसन्नता होती है (तृप्ति होती है)। उनके अच्छे गुणों को जीवन में अपनाना चाहिए।

गरीबों और विकलांगों की सहायता करना, असहाय लोगों से मिलना, बन्दियों को मुक्त करना, वधिकों के हाथों मरने वाले पशुओं को मुक्त कराना, वृक्ष लगाना ये सब करुणापूर्ण कार्य हैं, जो वर्तमान स्थिति में परिवर्तन ला सकते है और अपनी माता-पिता की आत्मा को सुख पहुँचा सकते हैं।''

जहँ जहँ चरण पड़े गौतम के (Old Path & White Clouds
का हिन्दी रूपान्तर, पृ० ४३९-४०)

टिप्पणी—तर्पण का अर्थ तृप्त करना है। जल से तृप्ति की बात प्रतीक रूप मे है। इसका अर्थ है अपने पितरों की (जीवित व मृतक दोनों की) सत्कर्मों से, भोजन, वस्त्र तथा जनकल्याण द्वारा तृप्ति करना। बौद्ध गण इसे व्यावहारिक रूप मे करते हैं।

बौद्ध उपासक नित्य पशु-पक्षियों आदि के लिये अपने भोजन से कुछ अंश निकाल कर धरती पर नहीं रखते हैं लेकिन मृतक संस्कार से सम्बन्धित साप्ताहिक, मासिक, छ:मासिक और वार्षिक क्रिया के अवसर पर बलि निकाली जाती है। भदन्त बोधानन्दजी बताते हैं कि भोजन के सब व्यंजनों में से थोड़ा-थोडा अंश निकाल कर एक पत्तल में रख किसी मैदान में पशु पक्षियों के लिये रख देते हैं। (बौद्धचर्यापद्धति, संस्कार परिच्छेद)

टिप्पणी—सनातनधर्म में लोग इस प्रकार की बलि नित्य निकालते हैं।

अतिथि-सत्कार (अतिथि यज्ञ)—सनातन हिन्दूधर्म की भाँति बौद्धधर्म मे भी अतिथि-सत्कार को नित्य और अनिवार्य कर्त्तव्यों में माना जाता है तथा इसका पालन न करने वाले को भगवान बुद्ध ने वृषल (नीच) कहा है—''जो भोजन के समय आये हुए ब्राह्मण-श्रमण से क्रोध से बोलता है और उसे कुछ नहीं देता उसे वृषल जाने।'' (सुत्तनिपात, वसल सुत्त १५)

अतिथि-सत्कार बौद्धधर्म में काल दान के अन्तर्गत आता है जिसमें पाँच प्रकार से भिक्षुओं (बौद्ध साधुओं) को दान देने का विधान है—(१) घर पर आये हुये साधु का सेवा-सत्कार, (२) धर्म-प्रचार हेतु गमन करने वाले साधु की सहायता, (३) रोग से पीड़ित भिक्षु की सेवा सुश्रुषा, (४) दुर्भिक्ष के समय भिक्षुओं को भोजन आदि देना तथा (५) नयी फसल पर पहले नये फल अन्न आदि को भिक्षुओं को दान देना शामिल है। (वही, दान परिच्छेद)

तीर्थयात्रा

सनातनधर्म के गृहस्थों की तरह बौद्धधर्म गृहस्थ (उपासक) भी मोक्ष या निर्वाण प्राप्ति हेतु तीर्थयात्रा करते हैं। बौद्ध तीर्थ के लिये स्मारक शब्द का प्रयोग करते हैं।

तीर्थयात्रा के विषय में भदन्त ग० प्रज्ञानन्दजी अपनी पुस्तक (बौद्धों की हस्त पुस्तक) में लिखते हैं—

किसी भी स्थान या वस्तु विशेष से किसी ऐतिहासिक महापुरुष का सम्बन्ध जुड जाने से वह स्थान उस महापुरुष के लिये आदर बुद्धि (श्रद्धा) रखने वालों की दृष्टि में दर्शनीय ही नहीं पूज्य भी हो जाता है। समस्त संसार के बौद्धों के लिए जो भारत स्थित स्थान दर्शनीय तथा पूज्य हैं उनमें से कुछ मुख्य स्थान ये हैं—(१) लुम्बिनी, (२) बुद्धगया, (३) सारनाथ, (४) कुशीनगर, (५) श्रावस्ती, (६) साकस्य (संकिसा), (७) राजगृह तथा नालन्दा, (८) वैशाली, (९) कपिलवस्तु, (१०) कौशाम्बी, (११) अजन्ता तथा एलोरा, (१२) साँची स्तूप।

(तीर्थ परिच्छेद, पृ० २१)

इस प्रकार सनातनधर्म के गृहस्थ और बौद्धधर्म के उपासक के जीवन-यापन व कर्त्तव्यों में पूरी समानता दिखाई देती है। तीर्थयात्रा के द्वारा दोनों संन्यास या भिक्षु जीवन का पूर्वाभ्यास करते हैं।

वानप्रस्थाश्रम

यद्यपि बौद्धधर्म में भी बिना श्रमणोर की दीक्षा लिये कोई सीधे भिक्षु नहीं बन सकता है कारण यह है कि श्रमणोर की दीक्षा कोई भी भिक्षु दे सकता है लेकिन भिक्षु को प्रवजित संघ ही कर सकता है तथापि हम श्रमणोर की वानप्रस्थी से तुलना नहीं कर सकते क्योंकि (१) श्रमणोर की कोई निश्चित अवधि नहीं होती है, (२) उसकी आयु ५० वर्ष से अधिक आवश्यक नहीं क्योंकि वह प्राय· विद्यार्थी जीवन में रहता है और यदि सामान्य हुए तो अल्पकाल के लिये श्रमणोर अवस्था होती है। कुछ ही दिन के बाद वह भिक्षु बन जाता है।

वानप्रस्थ की हम बौद्धधर्म के अरण्यक से तुलना कर सकते हैं। क्योकि दोनों एकान्तवासी हैं। पत्र-हीन पारिछत्र वृक्ष की भाँति गृहस्थ वेश-भूषा को त्याग, काषाय वस्त्र धारी हो (अरण्यक/वानप्रस्थी वन) गृह त्यागकर, गैडें की भाँति अकेला विचरण करे। (खग्ग विषाण सुत्त (१, २) ३०)

संन्यासआश्रम (भिक्षु जीवन)

धम्मपद में भगवान ने भिक्षु की निम्न परिभाषा दी है—

हत्थ संयतो पाद संयतो वाचाय संयतो संयतुत्तमो।
अज्झत्तरतो समाहितो एको सन्तुसिनो तमाहु भिक्खुं॥

(धम्मपद, भिक्खुवग्गो ३)

अर्थात जिसके हाथ, पैर और वचन में संयम है, जो उत्तम संयमी है, जो घट के भीतर (अध्यात्म) रत, समाधि युक्त, अकेला और संतुष्ट है उसे भिक्षु कहते हैं।

पुनश्च—

कायेन संवरो साधु साधु वाचाय संवरो।
मनसा संवरो साधु साधु सब्बत्थं संवरो।
सव्वत्थ संवुतो भिक्खु सव्व दुक्खा पमुच्चति ॥ (वही, २)

अर्थात शरीर का संवर (संयम) भला है, वचन का संवर भला है मन का सवर भला है भला है सर्वत्र (इन्द्रियों) का संवर। सर्वत्र संवर युक्त भिक्खु।

टिप्पणी—सनातनधर्म में ऐसे व्यक्ति को त्रिदण्डी (संन्यासी) कहते हैं। वह सारे दु:खों से मुक्त हो जाता है।

पुनश्च

"जिस भिक्षु ने सम्पूर्ण राग को नष्ट कर दिया है वह सर्प की केंचुली छोड़ने की भाँति इस लोक और परलोक को छोड़ देता है।"

(सुत्तनिपात, उरगवग्गो, २)

संन्यासी की भाँति भिक्षु भी संसार के सारे आकर्षणों का त्याग कर देता है—

जिस भिक्षु ने पाँच नीवरणों[1] का त्याग दिया है, जो निष्पाप है, सन्देहरहित है और जिसने सांसारिक आसक्तिरूपी काँटे को उखाड़ फेंका है, वह सर्प की केंचुली छोड़ने की भाँति इस लोक और पर लोक को छोड़ देता है। (वही, १७)

खग्ग विसाण सुत्त (१, ३) में घर छोड़ने की विधि बताते हुए भगवान कहते हैं—"पत्र हीन पारिछत्र वृक्ष की भाँति गृहस्थ वेश भूषा को त्याग काषाय वस्त्रधारी हो (भिक्षुवत) गृह-त्याग कर गैंड़े की भाँति अकेला विचरण करे।"

(सुत्तनिपात, खग्ग विषाण सुत्त, ३०)

भिक्षु धर्म को बताते हुए भगवान कहते हैं—भिक्षु समय से प्राप्त भिक्षा को ले एकान्त में जा अकेले बैठे।

पुनश्च—रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श जो प्राणियों को मोहित कर लेते हैं, इन बातों में राग त्याग कर समय पर प्रातराश (प्रात:काल का भोजन) के लिये गाँव में प्रवेश करे। (वही, धम्मिक सुत्त, १३)

---

१. पाँच नीवरण, १. कामच्छन्द, २ व्यापाद, ३. स्त्यानमृद, ४. औद्धत्य, ५. कौकृत्य और चिकित्सा—ये पाँच चित्त के आवरण या ढक्कन हैं। जब तक ये रहते हैं तब तक समाधि का लाभ नहीं हो सकता

क्योंकि असमय में घूमने वाला का आसक्तियाँ लग जाती हैं।

(वही, धम्मिक सुत्त- ११)

सनातनधर्म के संन्यासियों की तरह भिक्षु एक समय वह भी बारह बजे तक भोजन करता है अत: भिक्षाटन का समय प्रातःकाल का ही रखा गया है।

भिक्षु का भेष—(१) चीवर दो रखता है एक पहिनता है दूसरा बिछाता है।(२) भिक्षापात्र, (३) एक अंगोछा, (४) एक करधनी , (५) एक अस्तूरा।

टिप्पणी—पन्द्रहवें दिन एक-दूसरे का मुंडन कर देते हैं।

(६) पानी छान कर पीना—बौद्ध भिक्षु भी संन्यासी की तरह पानी छान कर पीता है। इस हेतु वह एक थैली परिश्रावण रखता है।

(७) पेड़ के नीचे निवास—भिक्षा करके वह मुनि वन में जाये और पेड के नीचे जा आसन लगाकर बैठे।

(८) प्राणायाम व ध्यान-साधना—वन में रहते हुए वह धीर ध्यान तत्पर होवे, अपने को संतोष प्रदान कर पेड़ के नीचे ध्यान करे।

(९) तब रात्रि के बीतने पर प्रातः भिक्षा के लिये गाँव में प्रवेश करे। वहाँ न तो किसी का निमन्त्रण स्वीकार करे और न किसी के द्वारा गाँव से लाये गये भोजन को।

यदि कुछ मिल जाय तो उत्तम है और न मिले तो भी ठीक है। एक स्थान पर स्थित वृक्ष के समान वह दोनों ही अवस्थाओं में समान रहता है।

(सुत्त निपात वस्तु, गाथा, ३०, ३१, ३२, ३४)

(१०) भिक्षु वाद-विवाद न करे—कोई-कोई वाद-विवाद किया करते है, उन अल्पज्ञों की हम प्रशंसा नहीं करते। इधर-उधर से आसक्तियाँ लग जाती है और उनका चित्त उन्हीं वाद-विवादों में दूर-दूर तक जाता रहता है।

(वही, धम्मिक सुत्त, १५)

(११) चुगली, क्रोध-त्याग—जो भिक्षु चुगली तथा क्रोध को त्याग, कजूसी छोड़, कृपा और विरोध से रहित है, वही इस लोक में विचरण करेगा।

(सुत्त निपात सम्मापरिव्वाजनिय सुत्त (२-१३) ४)

पुनश्च—

दूसरे मेरी वन्दना करते हैं यह सोच जो भिक्षु गर्व नहीं करता, आक्रोश करने पर भी वैमनस्य नहीं, दूसरों का भोजन प्राप्त कर प्रमत्त नहीं होता, वही इस लोक में भली प्रकार विचरण करेगा। (वही, ८)

बौद्ध उपासक बौद्ध भिक्षुओं को चार प्रकार के दान (चतु:प्रत्यय दान) देते हैं—

(१) चीवर (बौद्ध भिक्षुओं के पहनने के कपडे)

(२) शयनासन (बिछौना)

(३) पिंड-पात्र (भोजन)

(४) औषधि (बीमारी की अवस्था में)

टिप्पणी—उपरोक्त दान उपासकों को नित्य करना चाहिए।

(बौद्धचर्यापद्धति भदन्त बोधानन्द, दान परिच्छेद)

सनातनधर्म में संन्यास

सनातनधर्म में बौद्धधर्म की तरह कोई व्यक्ति किस वर्ष की आयु होने पर कभी भी संन्यासी (भिक्षु) नहीं बन सकता। संन्यास काल पचहत्तर वर्ष के पश्चात मरणपर्यन्त है साथ ही संन्यासी होने के पूर्व व्यक्ति को तीन कर्त्तव्य और भी पूरे करने पड़ते हैं।

(१) वेद का अध्ययन पूर्ण कर लेना चाहिये।

(२) तीनों ऋणों (देवऋण, ऋषिऋण और पितृऋण) से मुक्त हो जाना चाहिये।

(३) पुत्र के भी पुत्र हो जाना चाहिये।

(४) संन्यास ग्रहण के पूर्व उसे प्रजापत्य यज्ञ (अर्थात जिसमें सबकुछ दान कर दिया जाता है) करना चाहिये।

(५) अग्नि का भी त्याग कर देना चाहिए। क्योंकि—

अनधीत्य द्विजो वेदाननुत्पाद्य तथा प्रजाम्।
अनिष्ट्वा चैव यज्ञैश्च मोक्षमिच्छन्व्रजत्यधः॥ (मनु० ६-३७)

अर्थात जो द्विज वेदों को न पढ़कर तथा पुत्रों की उत्पत्ति और यज्ञों का अनुष्ठान न कर (ऋषि ऋण, पितृ ऋण और देव ऋण से उऋणा हुए बिना) सन्यास धारण की इच्छा करता है, वह नीच गति को प्राप्त करता है साथ ही उसे अपना सबकुछ दान भी कर देना चाहिए—

प्राजापत्यां निरुप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम्।
आत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद्गृहाम्॥ (मनु० ६-३८)

अर्थात प्रजापत्य यज्ञ (जिसमें सर्वस्व दक्षिणा दी जाती है) को शास्त्रोक्त विधि से पूरा करके अपने से अग्नि को समारोपित कर ब्राह्मण संन्यास ग्रहण करने के लिये घर से निकले।

यो दत्वा सर्वभूतेभ्यः प्रव्रजत्यभयं गृहात्।
तस्य तेजोमया लोका भवन्ति ब्रह्मवादिनः॥ (मनु० ६-३९)

अर्थात जो सब प्राणियों को अभय देकर घर से संन्यास के लिये ले जाता है उस ब्रह्मवादी को तेजोमय लोक प्राप्त होता है।

टिप्पणी—संन्यासी त्रिदण्डी होता है वह मन से, वचन से अथवा शरीर से किसी को दण्ड नहीं देता है। इन तीनों पर वह संयम रखता है। बौद्ध भिक्षु की भाँति हिन्दू संन्यासी भी मोटा वस्त्र, भिक्षा-पात्र रखता है। पेड़ के नीचे सोता है।

कपालं वृक्षमूलानि कुचैलमसहायता।
समता चैव सर्वस्मिन्नेतन्वमुक्तस्य लक्षणम् ॥ (मनु० ६-४४)

अर्थात वह खप्पर भोजन के लिये, वृक्ष की जड़ रहने के लिये, मोटा पुराना कपड़ा पहिनने के लिए। किसी सहायक का न रहना और सर्वत्र समभाव रखना यह मुक्त पुरुष (संन्यासी) के लक्षण है। अर्थात राग दोष न रखना।

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्।
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत्॥

वह भी पानी छान कर पीता है। (मनु० ६-४६)

अर्थात आँख से जमीन को देख कर पैर रक्खे। वस्त्र से छान कर जल पीये, सत्य वचन बोले, और पवित्र मन से कार्य करे। अर्थात त्रिदण्डी होने के साथ जल भी छानकर पीवे ताकि जल जन्तु न मरें।

वह भी बौद्ध संन्यासी की तरह दिन में एक बार भोजन करता है—

एककालं चरेद्भैक्षं न प्रसज्जेत विस्तरे।
भैक्षे प्रसक्तो हि यतिर्विषयेष्वपि सज्जति ॥ (मनु० ६-५५)

अर्थात एक बार भिक्षा माँगनी चाहिए। भिक्षा का विस्तार न करे। बहुत भिक्षा में आसक्त संन्यासी विषयों में भी आसक्त हो सकता है क्योंकि—

अल्पान्नाभ्यवहारेण रहःस्थानासनेन च।
ह्रियमाणानि विषयैरिन्द्रियाणि निवर्तयेत् ॥ (वही, ६-५९)

अर्थात अल्पाहार और एकान्त निवास इन दो उपायों से विषयों द्वारा खीची जाने वाली इन्द्रियों को वश में करे।

अर्थात इन्द्रियों के नियन्त्रण और रागद्वेष के त्याग तथा प्राणियों की अहिसा से संन्यासी मोक्ष को पाता है। संन्यासी के लिए कहा गया है—

क्रुद्ध्यन्तं न प्रतिक्रुध्येदाक्रुष्टः कुशलं वदेत्।
सप्तद्वारावऽकीर्णां च न वाचमनृतां वदेत् ॥ (वही ६-४८)

अर्थात संन्यासी क्रोध में भरे हुए मनुष्य का जवाब क्रोधित होकर न दे, कोई निन्दा करे तो भद्र वचन ही कहे। (पाँच ज्ञानेन्द्रिय आँख, कान, नाक, जिह्वा, त्वचा तथा मन और बुद्धि इन सात द्वारों से ग्रहण किये जाने वाले विषयो की चर्चा न करे।

उसे शरीर व संसार की अनित्यता का भी विचार करते रहना चाहिए—

अस्थिस्थूणं स्नायुयुतं मांसशोणितलेपनम्।
चर्मावनद्धं दुर्गन्धिपूर्णं मूत्रपुरीषयोः॥ (मनु० ६-७५)
जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम्।
रजस्वलमनित्यञ्च भूतावासमिमं त्यजेत्॥ (वही, ६-७६)

अर्थात हड्डी के खम्भे वाली, स्नायु से युक्त मांस और रुधिर से लेप की हुई चमड़े से ढकी हुई, मल-मूत्र भरी और दुर्गन्धियुक्त जरा और शोक से आक्रान्त, रोगों का घर, भूख-प्यास से व्याकुल, भोगाविलासी और क्षणभंगुर शरीर को जो पंचभूतों का निवास है, यह जान कर त्याग ही देना चाहिए।

बौद्ध भिक्षु और हिन्दू संन्यासी में अन्तर

(१) सनातनधर्म में संन्यास ७५ वर्ष के बाद लिया जाता है जबकि बौद्धधर्म में (श्रमणोर) बीस वर्ष के बाद भिक्षु कभी भी बन सकते हैं।

(२) संन्यासी अपने पितृऋण, देवऋण तथा ऋषिऋण से मुक्त होकर सन्यास ग्रहण करता है जबकि बौद्ध भिक्षु के लिये माता-पिता या आचार्य के ऋण को चुकाने की ऐसी प्रथा नहीं है। वह इन्हें भिक्षु जीवन में भी चुका सकता है।

(३) संन्यासी पुनः घर लौट कर नहीं जाता है किन्तु बौद्ध भिक्षु जा सकता है लेकिन गृहस्थ बन कर नहीं कर्त्तव्य-पालन हेतु। भगवान बुद्ध ने स्वय ऐसा करके आदर्श उपस्थित किया है। पिता से मिलने व मृत्यु के समय।

(४) हिन्दू संन्यासी माता-पिता की मृत्यु पर दाह-संस्कार नहीं करता किन्तु बौद्ध संन्यासी इस कर्त्तव्य का पालन करता है। भगवान बुद्ध ने स्वयं अपने पिता का दाह-संस्कार किया था। बुद्धचरित में इसका वर्णन है।

परन्तु यह अन्तर व्यवहार में नहीं है क्योंकि यह सामान्य नियम है। आपदधर्म इस से भिन्न है। शंकराचार्य, स्वामी दयानन्द, स्वामी राममूर्ति, आदि जवानी में ही बिना उपरोक्त ऋणों को चुकाये ही संन्यासी हो गये थे। और शंकराचार्य ने अपनी माता की मृत्यु पर भगवान बुद्ध की तरह उनका दाह-सस्कार आदि भी किया था।

इस प्रकार सनातनधर्म के संन्यास जीवन और बौद्धधर्म के भिक्षु जीवन में पूरी समता है—

(१) दोनों ग्रह त्याग कर वन में निवास करते हैं।
(२) दोनों भिक्षा एक समय माँगते और दिन में एक बार ही भोजन करते हैं।
(३) दोनों अपने पास कोई धन-सम्पत्ति या सहायक नहीं रखते हैं।
(४) दोनों ब्रह्मचर्य का पूर्ण पालन करते हैं।
(५) दोनों वृक्ष की जड़ को तकिया बनाकर सोते हैं।

(६) दोनो पानी छान कर पाते हैं।

(७) दोनों मुण्डित रहते हैं।

(८) दोनों मान-अपमान की उपेक्षा करते हैं।

(९) दोनों शिक्षा के बदले में कुछ नहीं लेते हैं।

(१०) दोनों मन, वचन और कर्म से संयमित रहते हैं।

(११) दोनों रागद्वेषरहित रहते हैं।

(१२) दोनों निर्वाण (मोक्ष) के लिये साधना करते हैं।

(१३) दोनों योगाभ्यास करते हैं।

टिप्पणी—कुछ लोग सोचते हैं कि बौद्धधर्म संन्यासियों का धर्म है लेकिन वास्तविकता यह है कि बौद्धधर्म ब्रह्मचर्य (विद्यार्थी जीवन) को जिसमें रहकर अध्ययन किया जाता है, गृहस्थ धर्म जिसमें धन कमाया जाता है तथा वृद्धा अवस्था जिसमें धन कमाने की शक्ति ही नहीं रह जाती, को मानता है—

अचरित्वा ब्रह्मचरियं अलद्धा योब्बने धनं।
जिण्णकोञ्चा व झायन्ति खीणमच्छे व पल्लले॥

(धम्मपद, जरावग्गो, १०)

अर्थात ब्रह्मचर्य का बिना पालन किये, जवानी में धन को बिना कमाये, (मनुष्य) मछलियों से क्षीण जलाशय में बूढ़े क्रौंच पक्षी की भाँति (वृद्धावस्था मे) चिन्ता को प्राप्त होते हैं।

हाँ, बौद्धधर्म संन्यास (जागरण का कार्य) ग्रहण को चारों या तीनो अवस्थाओं में से किसी में भी ग्रहण की आज्ञा देता है—

अत्तानं चे पियं जञ्ञा रक्खेय्य नं सुरक्खितं।
तिण्णमञ्ञतरं यामं पटिजग्गेय्य पण्डितो॥ (वही, अत्तवग्गो, १)

अर्थात व्यक्ति अपने को यदि प्रिय समझे, तो अपने को सुरक्षित रखे। पंडित तीनों में से किसी एक प्रहर (अवस्था) में अवश्य जागरण करे (भिक्षु बने)।

सनातनधर्म में जाति-व्यवस्था और बुद्ध के विचार

सनातनधर्म में यह मान्यता है कि ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण की, बाहु से क्षत्रिय की और जंघा से वैश्य की तथा पैर से शूद्र की उत्पत्ति हुई—

पुरुषस्य मुखं ब्रह्म क्षत्रमेतस्य बाहवः।
ऊर्वोर्वैश्यो भगवतः पद्भ्यां शूद्रोऽभ्यजायत॥ (भागवत २-५-३७)

यही बात मनुस्मृति भी कहती है—

सर्वस्यास्य तु सर्गस्य गुह्यर्थं स महाद्युतिः।
मुखबाहूरूपज्जाना पृथक्कर्माण्यकल्पयत्॥ (मनु० १-८९)

अर्थात महातेजस्वी ब्रह्मा (ब्रह्म अर्थात समाज) ने इस सम्पूर्ण विश्व के रक्षार्थ मुख, बाहु, जङ्घा और पाँव से उत्पन्न होने वाले जीवों के अलग-अलग कर्मों की कल्पना की।

किन्तु यह विभाजन गुण और कर्म के आधार पर किया गया है। जिनके कर्म और गुण समान हैं उन्हें एक जाति में रखा गया है।

गीता में भगवान कृष्ण कहते हैं—

> चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
> तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्॥

अर्थ—ये चारों जातियाँ, कर्मों तथा गुणों के अलग अलग वितरण से, मुझसे ही उपजी हैं।

यही बात मनुस्मृति भी कहती है—

ब्राह्मण में धर्म-पालन का गुण होता है। वह स्वयं धर्म-मार्ग पर चल कर दूसरों को प्रेरणा देता है—

> उत्पत्तिरेव विप्रस्य मूर्तिर्धर्मस्य शाश्वती।
> स हि धर्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥ (मनु० १-९९)

धर्म के पालन में दूसरों के अन्दर निहित धर्म-भावना की रक्षा के लिये वह सबसे श्रेष्ठ पात्र होता है।

> ब्राह्मणो जायमानो हि पृथिव्यामधिजायते।
> ईश्वरः सर्वभूतानां धर्मकोषस्य गुप्तये॥ (मनु० १-१००)

अर्थात इस पृथ्वी पर ब्राह्मण ही सबसे श्रेष्ठ उत्पन्न होता है। वह सभी प्राणियों के धर्मकोश-रक्षा में समर्थ है। साथ ही वह स्वयं भी इस आचार का पालन करता है।

ब्राह्मण को श्रुति (वेद) और स्मृति में कहे हुए आचार का पालन करना चाहिये क्योंकि आचार ही परम धर्म है—

> आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च।
> तस्मादस्मिन्सदायुक्तो नित्यंस्यादात्मवान् द्विजः॥ (मनु० १-१०९)

अर्थात श्रुति (वेद) और स्मृति में कहा गया आचार ही परमधर्म है। इसलिये अपनी आत्मोन्नति चाहने वाले ब्राह्मण को हमेशा आचार से युक्त होना चाहिए।

इस प्रकार जहाँ धर्मपरायण गुण की सर्वश्रेष्ठता के कारण उसे धर्म-प्रचार का काम सौंपा गया वहीं धर्म से सम्बन्धित अन्य कर्म भी करने को कहा गया उसी की बात का प्रभाव पड़ता है जो स्वयं भी उसका पालन करता है।

> अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
> दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्॥ (मनु० १-९०)

अर्थात ब्राह्मणों के लिये पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना यज्ञ कराना दान देना, दान लेना, ये छः कर्म निश्चित किये गये हैं।

इसी प्रकार क्षत्रियों के कर्म भी निश्चित हैं—

प्रजाना रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
विषयेष्वप्रशंक्तिश्च क्षत्रियस्य समादिशत्॥ (वही, ९१)

अर्थात संक्षेप में क्षत्रियों के लिये प्रजाओं की रक्षा, दान, यज्ञ करना, पढना, विषयों (आँख, कान, नाक, जिह्वा, त्वचा द्वारा बताये गये विषयों) से आकर्षित न होना ये पाँच कर्म निश्चित किये गये हैं।

इसी प्रकार वैश्य के कर्म भी निश्चित हैं।

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
वाणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च॥ (वही, ९२)

अर्थात पशुओं की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, पढ़ना, रोजगार करना, सूद पर रुपया देना, और कृषि करना ये वैश्यों के कर्म हैं।

शूद्रों के कर्म

एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्।
एतेषामेव वर्षानां शुश्रूषामनसूयया॥ (वही, ९३)

अर्थात ब्रह्मा ने उपर्युक्त तीनों वर्णो का गुणानुवाद करते हुए सेवा करना, यह एक ही कर्म शूद्रों के लिये निश्चित किया है।

अब यदि बौद्धधर्म की जाति सम्बन्धी मान्यताओं पर विचार करें तो वहाँ भी जाति की पहचान कर्मों एवं गुणों के आधार पर है।

कर्म को जाति का आधार बताते हुए भगवान बुद्ध कहते हैं जैसे जाति का भेद पशुओं, पक्षियों और अन्य जन्तुओं में है वैसे मनुष्यों में नहीं है यहाँ केवल कर्म (पेशा) ही जाति की पहचान कराने वाली है—

मनुष्यों में जो गोरक्षा से जीविका करता है वाशिष्ट! ऐसो को कृषक जानो ब्राह्मण नहीं (क्योंकि ब्राह्मण का कर्म तो पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना कराना आदि है) मनुष्यों में जो किसी शिल्प से जीविका करता है। वाशिष्टः ऐसे को शिल्पी जानो, ब्राह्मण नहीं।

मनुष्यों में जो व्यापार से जीविका करता है वाशिष्ट। ऐसे को बनिया जानो, ब्राह्मण नहीं। मनुष्यों में जो पर प्रेषण (पठबनिया या नौकरी) से जीविका करता है वाशिष्ट! ऐसे को प्रेष्यक (शूद्र जानो) ब्राह्मण नहीं।

मनुष्यों में जो अदत्ता दान (चोरी) से जीता है वाशिष्ट ऐसे को चोर जानो ब्राह्मण नहीं।

मनुष्यो में जो इष अस्त्र मे जाता है वाशिष्ट! ऐस को योधा नावी जानो ब्राह्मण नहीं।

मनुष्यों में जो पुरोहिती से जीता है वाशिष्ट! ऐसे को याजक जानो ब्राह्मण नहीं।

मनुष्यों में जो ग्राम राष्ट्र का उपभोग करता है वाशिष्ट! ऐसे को राजा जानों, ब्राह्मण नहीं।

इस प्रकार जातियों के बीच काम का बटवारा जैसे मनु महाराज ने किया है वैसा ही भगवान बुद्ध ने भी किया है। अब अगर कोई ब्राह्मण अपने कर्म, (पढ़ने, पढ़ाने, यज्ञ करने, यज्ञ कराने, दान लेने, दान देने, इन छः कर्मों) को छोड़ कर गोरक्षा (वैश्य), शिल्प व्यापार (वैश्य), पर प्रेष्यण (शूद्र), चोरी, अस्त्र बनाने का काम, (क्षत्रिय का काम) पुरोहित या राजा का काम करता है तो वह ब्राह्मण नहीं कहा जा सकता है। ऊपर मनु० १-१०८ में बताया गया है कि ब्रग्ह्मण को सदैव आचार से (जो श्रति स्मृति में धर्म कहा गया है युक्त रहना चाहिए अन्यथा आचार हीन होने पर (अपने उपरोक्त कर्मों को न करने पर वेद फल नहीं पाता अपनी उपाधि और गौरव खो देता है—

आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते। (वहीं, ११०)

कर्म के आधार पर ही जाति की पहिचान होती है, जन्म के आधार पर नहीं।

टिप्पणी—सनातनधर्म भी जन्म से किसी को ब्राह्मण नहीं मानता। जन्म से सब शूद्र (बिना संस्कार व अज्ञानी) होते हैं—जन्मना जायते शूद्रः।

भगवान गौतम बुद्ध न जातिविरोधी थे न ब्राह्मण। वह तो ब्राह्मणों की आचारहीनता पर दुखी होकर उन्हें पुराने ब्राह्मणों की तरह (उनके कर्मों (पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना, दान लेने) की ओर पुनः प्रेरित करने हेतु शिक्षा दे रहे थे। उन्हें पुराने ब्राह्मणों के मार्ग पर चलने को उत्साहित कर रहे थे—

श्रावस्ती क्षेत्र के ब्राह्मणों द्वारा पुराने ब्राह्मणों के गुणों की जानकारी की इच्छा करने पर भगवान उन्हें बताते हैं—

(१) पहले के ऋषि संयमी और तपस्वी थे। पाँच प्रकार के काम भोगो को त्याग कर आत्महित के कार्यों में लगे रहते थे।

(२) ब्राह्मणों के पास न पशु होते थे न हिरण्य तथा धान्य। स्वाध्याय (वेदों का पाठ) करना ही उनका धन धान्य था। उन्होंने श्रेष्ठ निधि (ब्रह्म विहार) की रक्षा की।

(३) पहले के ब्राह्मण अड़तालीस वर्षों तक ब्रह्मचर्य का पालन करते थे और विद्या तथा आचरण की खोज में विचरण किया करते थे।

(४) ब्राह्मण परस्त्रियों के पास नहीं जाते थे और न वे स्त्रियों को खरीदते थे, वे परस्पर प्रेम वाली से सहवास करना पसन्द करते थे।

(५) ब्राह्मण ऋतु समय (मासिक धर्म) को छोड़ बीच के निषिद्ध समय मे मैथुन नहीं करते थे।

(६) वे ब्रह्मचर्य, शील, ऋजुता, मृदुता, तप, सज्जनता, अहिंसा और क्षमा के प्रशंसक थे।

(७) उनमें जो श्रेष्ठ और दृढ़ पराक्रमी ब्राह्मण था (ब्रह्मा के समान श्रेष्ठ ब्राह्मण) उसने कभी स्वप्न में भी मैथुन धर्म नहीं किया।

(८) कोमल, विशालकाय, सुन्दर तथा यशस्वी ब्राह्मण इन धर्मों से युक्त हो अपने करणीय कार्यों में जब तक लगे रहे तब तक यह प्रजा सुखी रही। लेकिन जब धर्म के रक्षक ब्राह्मण ही धर्मच्युत हो गये तो सारे समाज में गड़बड़ी पैदा हो गई।

ब्राह्मणों के पतन से समाज की हानि

इस प्रकार धर्म से च्युत होने पर शूद्रों और वैश्यों में फूट हो गई। क्षत्रिय भी विभिन्न भागों में बँट गये स्त्री पति का अनादर करने लगी।

क्षत्रिय, ब्राह्मण और दूसरे गोत्र से रक्षित जातिवाद को तोड़कर विषयो (काम भोगों) के वशीभूत हो गये।

सुत्तनिपात (ब्राह्मण धम्मिक सूत्र २-७) (१, २, ६, ७, ८, ९, १०, ३१, ३२)

टिप्पणी—धर्म प्रचारकों के नैतिक पतन से समाज का पतन हो जाता है अत: भगवान बुद्ध ने ब्राह्मणों के अवगुणों को दूर कराने हेतु उन्हें समझाया तथा पुराने ब्राह्मणों के आचार वानजीवन को अपनाने की प्रेरणा दी। सुत्तनिपात के उपरोक्त उद्धरण से यही बात स्पष्ट होती है कि भगवान जातिप्रथा के प्रबल समर्थक हैं और वह समाज को पतन से बचाने के लिये जातीय कर्त्तव्यों के पालन पर बल देते है। क्योंकि जातिप्रथा के नष्ट होने पर व्यक्ति विषयी बन कर पतित हो जाते है। कामयोग में लग जाते हैं परिणामस्वरूप निर्वाणरूपी लक्ष्य से दूर होकर आवागमन मे फँस जाते हैं जो कि बौद्धधर्म के ही सिद्धान्तों के विरुद्ध है।

पुनश्च, यदि भगवान जातिविरोधी हैं तो वह केवल ब्राह्मण और क्षत्रिय दो ही कुलों में क्यों जन्म लेते हैं ? ललित विस्तर में भिक्षुगण कहते हैं—

"बोधि सत्व हीन कुलों में, चण्डाल कुलों में, वेणुकार (वकसोर) कुलों में रथकार (बढ़ई) कुलों में, पुक्कस (निषाद से उत्पन्न शंकर जाति) कुलों मे नहीं उत्पन्न होते। किन्तु दो कुलों में ही ब्राह्मण कुल में और क्षत्रिय कुल मे ही उत्पन्न होते हैं।" (ललित विस्तर कुल शुद्धि परिवर्त, २६)

भगवान बुद्ध को रक्त की पवित्रता पसन्द है इसीलिये उन्होंने कौशलकुल में जो कि माता-पिता से शुद्ध नहीं थ, जन्म लेना स्वीकार नहीं किया—भिक्षुओं ने कहा कौशलकुल भगवान के जन्म लेने लायक नहीं है क्योंकि कौशलकुल जिससे चला वह पूर्व जन्म का चाण्डाल था। वह माता-पिता से शुद्ध नहीं।

(वहीं, २८)

इसी आधार पर वैदेहीकुल भी पसन्द नहीं किया वह न माता की ओर से शुद्ध है, न पिता की ओर से शुद्ध है। (वही, २७)

रक्त की पवित्रता न होने के कारण वत्सराज कुल में भी जन्म नहीं लिया—

वह पराये पुरुषों द्वारा जन्मे हुए लोगों से छाया हुआ है तथा माता-पिता के तेज वाले कर्म से निष्पन्न नहीं हुआ है। (वही, २९)

इसी रक्त की पवित्रता न होने के कारण पाण्डव कुल में भी जन्म नहीं लिया। (वही, ३३)

भगवान बुद्ध उसी कुल में उत्पन्न होते हैं जो जाति, गोत्र, कुल आदि से युक्त होता है—

(१) वह कुल जाति से सम्पन्न होता है। (२) वह कुल गोत्र से सम्पन्न होता है। (३) वह कुल प्रसिद्ध पुरुषों के जोड़े से सम्पन्न होता है। (४) वह कुल निष्कलंक पुरुषों के जोड़े से सम्पन्न होता है। आदि आदि (वही, ३६)

भिक्षु नाना मोली अपनी पुस्तक The Minor readings, Khuddak Patha of the Khuddak Nikaya, London, 1972 में लिखते हैं—बिना जाति से सम्बन्ध रखने वाले नीच जाति यथा चाण्डाल, वेना, निषाद, रथकार ओर पुक्कस पूरी तरह से उन सात रत्नों में से किसी को भी पाने या अधिकार में रखने से बहिष्कृत हैं जिन्हें चक्रवर्ती क्षत्रिय राजा जो माता-पिता दोनों ओर से शुद्ध हैं के लिये तैय्यार या पैदा किया जाता है। (खुद्दक पाठ, ६-३५)

अंगुत्तर निकाय ३-५७-२ में बुद्ध भगवान स्वयं कहते हैं, "जाति के आधार पर मनुष्य क्षत्रिय ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र हैं।" मगध में महाराज बिम्बसार द्वारा परिचय पूछे जाने पर भगवान ने स्वयं अपनी जाति और कुल बताया है—गोत्र से मैं सूर्यवंशी और जाति से शाक्य हूँ। (सुत्तनिपात, ९७)

आज भी बौद्धों में गोत्र प्रचलित है और लंका, ब्रह्मा, तिब्बत, थाईलैण्ड आदि में उच्च कुल के लोग ही पूजा पाठ और धर्म प्रचार का कार्य करते हैं।

टिप्पणी—जातिप्रथा गुण और कर्म के आधार पर टिकी है। यह पूरी तरह से वैज्ञानिक है। भगवान बुद्ध ने केवल ब्राह्मणों को उनकी जाति के अनुकूल बनने की बात कही है न कि जाति की समाप्ति की बात

संसार के सभी भागों में तथा सभी कालों में कुछ लोग पढ़ने-पढ़ाने व धर्म-प्रचार का कार्य करेंगे, कुछ लोग देश-रक्षा व प्रशासन चलाने का काम करेंगे, कुछ लोग पशुपालन व व्यापार तथा कृषि का कार्य करेंगे, और कुछ लोग आज्ञाकारी बन कर किसी के पथ-प्रदर्शन में काम करेंगे। इस प्रकार यह व्यवस्था तो निरन्तर चलने वाली है। काम का बँटवारा भी सभी धर्म स्वीकार करते हैं। सभी यह भी स्वीकार करते हैं कि जिसमें जो गुण हो उसे वह काम सौंपा जाय।

मनुष्य में गुण, वंश-परम्परा और वातावरण से आते हैं। सनातन हिन्दूधर्म ने इसकी समुचित व्यवस्था की थी। प्राचीन काल में (१) संस्कारों द्वारा तथा (२) ब्रह्मचर्याश्रम या शैक्षिक वातावरण द्वारा अभीष्ठ विषय में सर्वश्रेष्ठ बनाने का प्रयास होता था।

भगवान बुद्ध ने केवल इतना कहा कि ब्राह्मण में अमुक-अमुक गुण होने चाहिए। यह नहीं कहा कि ब्राह्मण जाति नहीं होनी चाहिए।

भगवान बुद्ध का केवल इतना ही कहना है कि चूँकि व्यक्ति की जाति उसके कामों से जानी जाती है अतः प्रत्येक को अपनी जाति के अनुसार काम भी करना चाहिए।

✣

योग

सनातनधर्म में योग

योग भारत की प्राचीन विद्या है। श्वेताश्वर उपनिषद् में इसका वर्णन है—

नित्योनित्यानाम चेतन चेतना नाम वहूनां यो विद्याति कामानि।
तत्कारणं सांख्य योग्गधिगम्यं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः॥

(श्वेता० ६/१६)

योगवाशिष्ठ में राम को समझाते हुए वशिष्ठजी कहते हैं—चित निरोध हेतु योग और ज्ञान का मार्ग बताया गया है।

द्वौ क्रमौ चित्त नाशाय योगो ज्ञानं च राघव।
योगोवृत्ति निरोधो हि ज्ञानं सम्यग्वेक्षणम्॥

गीता में भी इसे पुरातन विद्या बताया गया है—

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन साङ्ख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्॥ (गीता ३/३)

योग शब्द की व्याख्या

योगश्चित्तवृत्ति निरोधः अर्थात चित्त वृत्तियों (भँवरो या तरंग का) का निरोधी ही योग है। देवरहा बाबा के अनुसार "निरोध का अर्थ है जड़ तत्व के सयोग से चेतन तत्व का हट जाना।"

क्योंकि जड़ तत्व का चेतन से संयोग ही दुःख का कारण है—दृषु दृश्यो· संयोगो हेय हेतुः और उस जड़ चेतन के संयोग का कारण है अविद्या। इस अविद्या का अभाव ही दुःख दूर करने का उपाय है। (सर्वात्म दर्शन)

योगशास्त्र १/११६ में लिखा है—तत् पर पुरुष ख्याति गुण वै तृष्णा यम (योगशास्त्र १/१६) अर्थात वह वैराग्य ऊँचा है। पुरुष ख्याति के उदय होने से गुणों के प्रति वितृष्णा हो जाती है।

टिप्पणी—पुरुष ख्याति कहते हैं पुरुष को ऐसा अनुभव होना कि मैं शरीर और चित्त आदि से पृथक हूँ। इनसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। ये तो तीनों गुणों की विकृतियाँ हैं और उन्होंने मुझे बाँध रक्खा है। अतः योग का लक्ष्य त्रिगुणातीत होना है।

इस सम्बन्ध में सांख्य सम्बन्धी ईश्वरकृष्ण की निम्न कारिका से समझने मे सहायता मिलेगी।

मूल प्रकृतिर विकृतिय ह्रदाद्या प्रकृति विकृतियः सप्त।
षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः॥

उपरोक्त में प्रकृति और विकृत दो शब्दों का अर्थ समझ लेने पर सूत्र का अर्थ समझने में सहायता मिलेगी।

जिससे नये पदार्थ निकलते हैं उसको प्रकृति और जो नये पदार्थ निकलते हैं उनको विकृति कहते हैं।

उपरोक्त सूत्र की डॉ० सम्पूर्णानन्द ने बड़ी सुन्दर व्याख्या की है। यथा

पुरुष की दृष्टि प्रधान पर (प्रकृति पर) पड़ती है तत्काल प्रधान अपने परिवर्तनशील स्वभाव के कारण बदलने लगता है और इसमें जो पहला परिवर्तन होता है उसको महत तत्व या बुद्धि कहते हैं। बुद्धि से अहङ्कार की उत्पत्ति होती है। अहङ्कार से सोलह पदार्थ निकलते हैं—पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पॉच कर्मेन्द्रियाँ, मन (जो कर्मन्द्रिय तथा ज्ञानेन्द्रिय दोनों है तथा पाँच तन्मात्रा अर्थात शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध। इन तन्मात्रों से आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी नाम के पाँच महाभूत। (योग दर्शन अ० ५)

योग के द्वारा जब व्यक्ति को विवेकख्याति या पुरुषख्याति प्राप्त हो जाती है तो वह प्रकृति और उसकी विकृति के विभिन्न रूपों को दुःख का कारण समझ कर सदा के लिए त्याग देता है। भगवान बुद्ध कहते हैं—योगावै जायतो भूरिः अयोगा भूरिः सङ्ख्यायो

बौद्धधर्म में भी योग का यही उद्देश्य है अर्थात वहाँ भी पुरुष या आत्मा को प्रकृति और विकृति से अलग कर दुःखों का अन्त करना है क्योंकि प्रकृति और विकृति का पुरुष से संयोग ही उसके दुःख का कारण है—

दृषु दृश्योः संयोगो हेय हेतुः

प्रसिद्ध वीतनामी बौद्ध विद्वान तिकन्यात द्वन्द्व ने अपनी पुस्तक (Old Path and White Clouds, जहँ जहँ चरन परे गौतम के में प्रकृति-विकृति दृषु दृश्योः संयोगो हेय हेतुः) से अपने को अलग करके निर्वाण प्राप्ति का उदाहरण प्रस्तुत किया है—

सुदत्त की मृत्यु के समय सारि पुत्र उसे यही उपदेश देते हैं कि तुम दुःख के कारणों अर्थात प्रकृति और विकृति से अपने को अलग कर लो तो तुम दुःख आवागमन के दुःख) से छुटकारा पा जावोगे—

सुदत्त से सारि पुत्र ने कहा, "हम इस प्रकार ध्यान करें कि मेरी आँखें मेरी नहीं है, मेरी नासिका, जिह्वा, मेरा शरीर और मेरा चित्त भी मेरा नहीं है।"

सुदत्त ने सारि पुत्र के निर्देशानुसार ध्यान किया, तब सारि पुत्र ने कहा, "अब हम ध्यान करें कि जो मैं देख रहा हूँ, जो सुन रहा हूँ वह मैं नहीं हूँ, जो

गंध, स्वाद, स्पर्श और विचार है, वह मैं नहीं हूँ।'' सारि पुत्र ने सुदत्त को व्यवहारिक रूप से ऐन्द्रिक चेतना कि धारणा करके बताया कि देखना मैं नहीं हूँ, श्रवण करना मैं नहीं हूँ, गंध लेना, स्वाद लेना, स्पर्श और विचार करना भी मैं नही हूँ, सारि पुत्र ने कथन जारी रक्खा, ''पृथ्वी तत्त्व मैं नहीं हूँ। जल, अग्नि वायु, आकाश और चेतन तत्त्व मैं नहीं हूँ। जन्म और मृत्यु मुझे छू भी नहीं सकते। मैं मुस्कराता हूँ क्योंकि न तो मैं जन्मा हूँ और न मैं मरूँगा। जन्म के कारण मेरा अस्तित्व नहीं है और मृत्यु से मैं अस्तित्वहीन हीं होऊँगा।''

(Old Path and White Clouds, जहँ जहँ चरन परे गौतम के)

अब एक प्रश्न उठ सकता है कि जब बौद्धधर्म पुरुष आत्मा को मानता ही नहीं है तो फिर आत्मा को जड़ तत्त्व (प्रकृति से दूर करने या अलग करने का प्रश्न ही कहाँ उठता है ?

इसका उत्तर भगवान बुद्ध स्वयं आराड़ कालाम को देते हुए बताते हैं कि आत्मा को मानने की कोई आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता है अज्ञान दूर करने की जिसके कारण हम असत्य को सत्य, नाशवान को नित्य मान रहे हैं।

ऐसी ही शिक्षा देते हुए भगवान कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि काम के वास स्थान कहे जाते हैं।

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिठानमुच्यते।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम्॥
तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम्॥

(भगवतगीता ३-४०-४१)

इसलिए हे अर्जुन, तू पहिले इन्द्रियों को वश में करके ज्ञान और विज्ञान को नाश करने वाले इस पापी काम को निश्चयपूर्वक मार।

टिप्पणी—अज्ञान के नष्ट होते ही ज्ञान स्वतः प्राप्त हो जायगा। आत्मा को महत्त्व देने की कोई आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता है प्रकृति और विकृति अथवा प्रकृति के तीनों गुणों के बन्धन से अपने को मुक्त करना। ज्ञान प्राप्त होने पर सत्य स्वय प्रगट हो जायगा।

योग के अङ्ग

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये योग के आठ अङ्ग हैं—यम नियमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा-ध्यान-समाद्ययोऽष्टावंगानि॥ (योगशास्त्र, सूत्र २९)

यम—यम की परिभाषा इस प्रकार दी गई है—

अहिंसा सत्याश्त्तेय ब्रह्मचर्या परिग्रहा यमाः (३०)

अर्थात अहिसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह (संग्रह न करना) ये पाँच यम कहलाते हैं।

बौद्धधर्म में यम

यो पाणमतिपातेति मुसावादं च भासति।
लोके अदिन्नमादियति परदारं च गच्छति॥
सुरामेरयपानं च यो नरो अनुयुञ्जति।
इधेवमेसो लोकस्मिं मूलं खणति अत्तनो॥

(धम्मपद, १८-१२, १३)

अर्थात जो जीव हिसा करता है, झूठ बोलता है, चोरी करता है, परस्त्री गमन करता है, शराब, दारू पीता है, वह इस संसार में अपनी ही जड़ खोदता है।

टिप्पणी—यद्यपि पंचशील में यम तत्व का अपरिग्रह (दान) नहीं है किन्तु पञ्चशील बताने के बाद भगवान ने दान (अपरिग्रह) की महिमा बतायी है—

ददाति वे यथासद्धं यथापसादनं जनो।
तत्थ यो मङ्कु भवति परेसं पानभोजने।
न सो दिवा वा रत्तिं वा समाधिमधिगच्छति॥

(धम्मपद, १८-१५)

अर्थात लोग अपनी श्रद्धा-भक्ति के अनुसार दान देते हैं। जो दूसरों के खाने-पीने को देख सह नहीं सकता, वह दिन या रात कभी एकाग्रता को नहीं प्राप्त कर सकता है।

इस प्रकार चित्त की एकाग्रता के लिये उपरोक्त यमों का पालन परमावश्यक है यह योग शास्त्र या सनातनधर्म की तरह बौद्धधर्म भी मानता है।

नियम

नियम-शौच सन्तोष तपः स्वाध्यायेश्वर प्राणीधानानि नियमाः॥

(योगसूत्र ३२)

अर्थात अन्दर-बाहर की सफाई, संतोष, तपस्या, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान ये पाँच नियम हैं।

बौद्धधर्म में नियम

शौच—बौद्धधर्म भी बाहरी और आन्तरिक शौच को महत्त्व देता है। बौद्धजन भी स्नान के बाद ही पूजा-पाठ या शुभ कर्म करते हैं। भगवान स्वयं नैरंजना नदी में नित्य स्नान करने के बाद साधना में लगते थे।

आन्तरिक शौच—बौद्धधर्म में कदाचार, कंजूसी, अविद्या आदि को मल माना गया है—

मलित्थिया दुच्चरितं मच्छेरं ददतो मलं।
मला वे पापका धम्मा अस्मिं लोके परम्हि च॥

(धम्मपद, मलवग्गो, ८)

अर्थात स्त्री का मल दुराचार है। दानी का मैल कंजूसी (कृपणता) है। पाप इस लोक और परलोक दोनों के मैल है।

पुनश्च—

ततो मला मलतरं अविज्जा परमं मलं।
एतं मलं पहत्वान निम्मला होथ भिक्खवो॥ (धम्मपद, मलवग्गो, ९)

अर्थात उससे भी बढ़कर अविद्या परम मल है। भिक्षुओ! इस मल को धोकर निर्मल बनो।

संतोष—सनातनधर्म में तृष्णा क्षय को संतोष कहा गया है।

बौद्धधर्म में भी तृष्णा क्षय मूल वस्तु है। भगवान बुद्ध कहते हैं—

तण्डक्खयो सब्बदुक्खं जिनाति। (धम्मपद, तण्हावग्गो, २१)

अर्थात तृष्णा का विनाश (या क्षय करने वाला) सब दुःखों का नाश कर लेता है।

तप—मन, वाणी और इन्द्रियों के संयम को तप कहा गया है। इन्हीं पर अंकुश न रहने से मनुष्य पाप करता है। बौद्धधर्म में मन, वाणी और इन्द्रियों के दस पाप बताए गए हैं। इन पापों के अभाव में मनुष्य शुद्ध हो जाता है। बौद्धधर्म मे इसे सम्यक दृष्टि कहा गया है।

सनातनधर्म की भाँति बौद्धधर्म में भी मन को तपा कर (तप करके) शुद्ध करने को कहा गया है—कारण यह है कि बिना तप के (मन, वाणी और इन्द्रियों के संयम के आन्तरिक शुद्धि हो ही नहीं सकती।

भगवान गौतम बुद्ध कहते हैं—

अनुपुब्बेन मेधावी थोकथोकं खणे खणे।
कम्मारो रजतस्सेव निद्धमे मलमत्तनो॥

(धम्मपद, १८-५)

अर्थात जैसे सोनार चाँदी के मैल को क्रमश क्षण-क्षण थोड़ा-थोड़ा जलाकर साफ करता है वैसे ही बुद्धिमान पुरुष अपने मल को क्रमशः दूर करे। और फिर उस शुद्धि हेतु मन, वाणी और इन्द्रियों का संयम करने की बात कहते हैं—

वाचानुरक्खी मनसा सुसंवुतो कायेन च अकुसलं न कयिरा।
एते तयो कम्मपथे विसोधये आराधये मग्गमिसिप्पवेदितं॥

(धम्मपद, २०-९)

अर्थात वाणी का संयम करे, मन का संयम करे और शरीर का संयम करे। इन तीन पथों को शुद्ध करे। बुद्ध के बताये मार्ग का अनुशरण करे। सनातनधर्म मे यही बात महर्षि पतंजलि भी कहते हैं—

कायेन्द्रिय सिद्धिर शुद्धि क्षयात्तपसा।

(पातंजल योग सूत्र २-४३)

अर्थात तपस्या से जब अशुद्धि का नाश हो जाता है, तब शरीर और इन्द्रियों की सिद्धि हो जाती है।

स्वाध्याय

स्वाध्याया दिष्ट देवता सम्प्रयोगः (पातंजल योग सूत्र २-४)

अर्थात मन्त्र के पुनः-पुनः उच्चारण या अभ्यास से इष्ट देवता के दर्शन होते हैं।

बौद्धधर्म में स्वाध्याय—जिस प्रकार सनातनधर्म में भगवान के प्रतीक रूप ओ३म् का बार-बार जप व ध्यान भी किया जाता है उसी प्रकार बौद्धधर्म में जो कर्म स्थान है, ध्यान की वस्तुएँ है उनमें से जिस वस्तु पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है उसके नाम का उच्चारण भी किया जाता है। पुनः-पुनः उच्चारण से ध्यान केन्द्रित होता है और इष्ट देवता या वस्तु अन्तःकरण में निवास करने लग जाती है।

ईश्वर प्रणिधान—ओ३म् का जप और ईश्वर का चिन्तन ईश्वर प्रणिधान है।

पुनश्च- **समाधि सिद्धिरीश्वर प्राणीधान दा** (वही, २-४५)

अर्थात ईश्वर में समस्त अर्पण करने से समाधि लाभ होता है।

बौद्धधर्म में ईश्वर प्रणिधान—बौद्धधर्म योग में ईश्वर की आवश्यकता का अनुभव नहीं करता है लेकिन ध्यान जिस वस्तु का करता है उस पर चित्त को अर्पित कर देता है। (स्थिर कर देता है) इसे वह अप्पना (अर्पणा) समाधि कहता है। (विशुद्धि मग्ग)

पद्मभूषण बलदेव उपाध्याय अप्पना समाधि की विधि बताते हुए कहते हैं—'पठवी कसिण' के लिए मिट्टी के बने किसी पात्र को चुनना चाहिए। × × × एकान्त स्थान में चित्त को उस पात्र में लगाना चाहिए साथ ही साथ पृथ्वी तथा उसके वाचक शब्दों का धीरे-धीरे उच्चारण करते रहना चाहिए। इस प्रक्रिया के अभ्यास से नेत्र बन्द करने पर उसी वस्तु की मूर्ति भीतर झलकने लगती है। (बौद्ध दर्शन मीमांसा)

टिप्पणी—चित्त को विषयों से हटाना ही साधक का उद्देश्य होता है वह चाहे अपना चित्त ईश्वर अथवा उसके वाचक शब्द ओ३म् पर लगाये या मिट्टी के घड़े या किसी अन्य वस्तु पर लगाये, विषयों पर न लगाये।

कुशासन सनातनधर्म म कुशासन पर मृगचर्म तथा उसके ऊपर वस्त्र बिछाकर बैठने की प्रथा है—

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्॥

(भगवद्गीता ६-११)

अर्थात शुद्ध भूमि में कुशा, मृगछाला और वस्त्र हैं उपरोपरि जिसके ऐसे अपने आसन को न अति ऊँचा और न अति नीचा स्थिर स्थापन करे।

भगवान बुद्ध भी कुशासन की परम्परा का पालन करते हैं। तृणों की मुष्टि लेकर बोधिसत्व जहाँ बोधिवृक्ष था, वहाँ पहुँचे। पहुँच कर सात बार बोधिवृक्ष की प्रदक्षिणा कर तृणों का समन्तभद्र नामक आसन जिसमें (तृणों का) उपरला भाग भीतर की ओर और जड़ों वाला भाग बाहर की ओर हो) बिछाकर उस तृणासन पर बैठे। पर्यङ्क बाँध कर। (वही, १६)

आसन—शिवपुराण में आसन आठ प्रकार के कहे गये हैं—स्वस्तिक, पद्मासन, अर्धचन्द्रासन, वीरासन, योगासन, प्रसाधितासन, पर्यङ्कासन और अपनी रुचि के अनुसार आसन।

भगवान गौतम बुद्ध पर्यंङ्कासन लगा कर बैठते थे।

प्राणायाम

तस्मिन् सति श्वास प्रश्वास योर्गति विच्छेदः प्राणायामः।

(पातंजल योग सूत्र २-४९)

अर्थात उस आसन की सिद्धि होने के बाद श्वास और प्रश्वास दोनों की गति को संयत करना प्राणायाम कहलाता है।

स्वस्ति ने बुद्ध को देखा, "उसकी पीठ सीधी थी और उसके पाँव जंघाओं पर रखे हुए थे। वह एकदम संयत भाव से बैठा था। उसकी आँखें अधखुली लग रही थीं और उसके हाथ गोदी में सहजता से एक-दूसरे के ऊपर रखे हुए थे। वह ईंटिया रंग का वस्त्र इस प्रकार धारण किये हुए था कि उसका एक कंधा खुला हुआ था।" (Old Path & White Clouds, जहँ जहँ चरन परे गौतम के)

उपरोक्त से यह सिद्ध होता है कि भगवान गौतम बुद्ध पर्यंङ्कासन पर विराजमान होकर प्राणायाम कर रहे हैं। उनका ध्यान नासिका के अग्र भाग पर हैं। उनकी आँखें अधखुली हैं अर्थात वह उन्मुनी या शाम्भवी मुद्रा में हैं।

टिप्पणी—देवरहा बाबा (योगेश्वर) कहते हैं, पद्मासन लगाकर नासिका के अग्रभाग अथवा भ्रू मध्य में दृष्टि को स्थिर करना शाम्भवी मुद्रा का अभ्यास है।

(सर्वात्म दर्शन, पृ० १०९)

इसी उन्मनी मुद्रा का लाभ बताते हुये कबीरदासजी कहते हैं—

उन्मनि चढ़ा गगन रस पीयै त्रिभुवन भयउ उजियारा।

इसी प्रकार भगवान अपने शिष्यों को खेचरी मुद्रा की साधना करना भी बताते हैं। इसे वह मौनेय व्रत कहते हैं—

असित ऋषि के भाँचे नालक को खेचरी मुद्रा के विषय में बताते हुए भगवान बुद्ध कहते हैं, ''नालक! मैं तुम्हें ज्ञान योग (मौनेय व्रत) को बताऊँगा। वह छुरे की धार के समान होता है। तालु से जीभ सटाकर पेट के प्रति संयमी बने आलस्य रहित चित्त वाला वन, बहुत चिन्तन न करे, क्लेश रहित और अनासक्त हो ब्रह्मचर्य का पालन करे। एक आसन पर रहने का अभ्यास करें।''

(सुत्त निपात, नालक सुत्त ३-११-३८, ३९, ४०)

उपरोक्त खेचरी मुद्रा के विषय में बताते हुए योगिराज देवरहा बाबा कहते हैं—हठयोग प्रतीपिका में 'खेचरी मुद्रा' के स्वरूप तथा विधि को भली प्रकार समझाया गया है। जिह्वा को लौटा कर कपाल कुहर में प्रविष्ट कराना होता है और दृष्टि आज्ञा चक्र में लगानी होती है। (दोनों भौंहों के बीच)

इसके लाभ बताते हुए बाबा कहते हैं—

न रोगो मरणं तन्द्रा न निद्रा न क्षुधा तृषा।
न च मूर्च्छा भक्तेस्य यो मुद्रां बेत्ति खेचरीम॥
पीड़यते न स रोगेण लिप्यते न च कर्मणा।
बाध्यते न स कालेन यो मुद्रा वेत्ति खेचरीम॥

अर्थात खेचरी मुद्रा से रोग, मरण, तन्द्रा, निद्रा, क्षुधा, तृषा पीड़ा नहीं सताते। वह रोग पीड़ा, कर्म में बँधता नहीं।

प्राणायाम तीन प्रकार की क्रियाओं में विभक्त होता है—

(१) जब हम साँस अन्दर खींचते हैं।

(२) जब हम साँस अन्दर रोकते हैं।

(३) जब हम साँस बाहर फेंकते हैं।

और फिर ये देश, काल और संख्या के अनुसार भिन्न-भिन्न रूप धारण करते हैं।

देश—अर्थात प्राण को शरीर के किसी अंग विशेष में आवद्ध रखना।

काल—प्राण को किसी स्थान में कितनी देर तक रखना चाहिये।

संख्या—संख्या का अर्थ है यह समझना कि कितनी बार ऐसा करना चाहिये।

प्राणायाम का फल—कुण्डलनी का जागरण

बौद्धधर्म में प्राणायाम—आचार्य नरेन्द्रदेवजी अपनी पुस्तक बौद्धधर्म दर्शन मे लिखते हैं—

प्राणायाम योग का एक उत्कृष्ट साधन है। बौद्धागम में इसे आना पान-स्मृति-कर्म-स्थान कहा है; आन का अर्थ है साँस लेना और अपान का अर्थ है साँस छोड़ना। इन्हें आश्वास-प्रश्वास भी कहते हैं। स्मृति-पूर्वक आश्वास-प्रश्वास की क्रिया द्वारा जो समाधि निष्पन्न की जाती है वह आनापान स्मृति समाधि कहलाती है। भगवान बुद्ध ने १६ प्रकार से इस समाधि की भावना करने की विधि निर्दिष्ट की है। (बौद्धधर्म दर्शन ५, पृ० ८२ आना पान स्मृति)

प्रच्छर्दन विधारणाभ्यां वा प्राणस्य

अर्थात प्राणवायु को बाहर निकालने और धारण करने से भी चित्त स्थिर होता है। (पातंजल योग सूत्र ३४)

परन्तु मन प्राणायाम से स्थिर करने के बाद उसको स्थायित्व कैसे प्रदान करना चाहिये? मनुष्य सामाजिक प्राणी है; समाज से बाहर रह नहीं सकता। यदि कोई व्यक्ति मात्र सबके प्रति मैत्री भाव नहीं रखता है, दुखियों को देखकर दया नहीं करता है, भलों के भले कामों को देखकर प्रसन्न नहीं रहता, बुरों के बुरे कामों से उदासीन नहीं रहता तो उसका मन शान्त नहीं हो सकता।

अतः सामाजिक जीवन व्यतीत करते हुए भी मन को शान्त व स्थिर रखने हेतु योगियों ने मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा का व्यवहार करने की सलाह दी है। यथा—

मैत्री करुणा मुदितोपेक्षाणां सुख-दुःख पुण्यापुण्य विषयाणां भावना तश्चित्त प्रसादन (वही, ३३)

अर्थात सुख दुःख, पुण्य और पाप इन भावों के प्रति क्रमशः मित्रता, दया आनन्द और उपेक्षा का भाव धारण करने से चित्त प्रसन्न होता है।

बौद्धधर्म में ब्रह्मविहार—योग दर्शन में चित्त के हेतु मैत्री, करुणा मुदिता तथा उपेक्षा का महत्त्व दर्शाया गया है उसी को बौद्धधर्म में ब्रह्म विहार के नाम से दर्शाया गया है। और वहाँ भी इसकी उपयोगिता उसी रूप में कही गई है।

प्रत्याहार

स्व विषयासम्प्रयोगे चित्त स्वरूपा नुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः॥

(योगसूत्र- ५४)

अर्थात "जब इन्द्रियाँ अपने-अपने विषय को छोड़कर मानो चित्त का स्वरूप ग्रहण करती हैं तब उसे प्रत्याहार कहते हैं।"

ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम् (वही, ५५)

उस प्रत्याहार से इन्द्रियों पर सम्पूर्ण रूप से जय प्राप्त होती है।

टिप्पणी—मन का संयम करना और उसे विभिन्न इन्द्रियों के साथ संयुक्त न होने देना ही प्रत्याहार है। (स्वामी विवेकानन्द)

धारणा

देश बन्धश्चित्तस्य धारणा

अर्थात चित्त को किसी विशेष वस्तु में आबद्ध रखने का नाम है धारणा।

ध्यान

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्। (राजयोग विभूतिपाद २)

अर्थात जब कोई व्यक्ति अपने को कुछ समय तक उसी अवस्था में रखने में समर्थ होता है, तो उस प्रक्रिया को ध्यान कहते हैं।

वही ध्यान जब बाहरी उपाधियों को छोड़ कर अर्थ मात्र को ही प्रकाशित करता है, तब उसे समाधि कहते हैं—

तदेवार्थ मात्र निर्भास स्वरूप शून्य मिव समाधिः (विभूतिपाद ३)

टिप्पणी—उपरोक्त प्रत्याहार, धारणा और ध्यान बौद्धधर्म में भी है। बौद्ध योगी—

प्रत्याहार १. मन को इन्द्रियों से संयुक्त नहीं होने देता।

धारणा २. मन को शरीर के सब स्थानों से अलग करके शरीर के अन्दर व बाहर की किसी वस्तु पर बौद्ध भी मन को बलपूर्वक किसी एक विषय पर लगाते हैं।

स्वामी विवेकानन्दजी लिखते हैं, "एक भाव लेकर सदा उसी में विभोर होकर रहो। सोते जागते सब समय उसी को लेकर रहो। तुम्हारा मस्तिष्क, स्नायु, शरीर के सर्वांग उसी के विचार से पूर्ण रहें। दूसरे सारे विचार छोड़ दो यही सिद्ध होने का उपाय है।" (वही)

यही बात भगवान बुद्ध भी कहते हैं—

भीतर बाहर की वेदना का अभिनन्दन न करते हुए ऐसे स्मृतिमान व्यक्ति के विचरण करते विज्ञान निरोध हो जाता है।

(सुत्तनिपात-उदय माणव पुच्छा निहिता-७)

पुनश्च—हे ब्राह्मण! मैं रातदिन अप्रमत्त हो मन की आँख से उन्हें देखता हूँ। नमस्कार करते हुए भी मैं रात व्यतीत करता हूँ। उसी से मैं उनसे अलग रहना नहीं समझता। (वही पारायण सुत्त)

देह के भीतर या उसके बाहर किसी स्थान पर मन को कुछ समय तक स्थिर रखने की पुनः पुनः चेष्टा करते रहने से, उसको उस दिशा में अविच्छिन्न गति से प्रवाहित होने की शक्ति प्राप्त होगी। इस अवस्था का नाम है ध्यान।

(स्वामी विवेकानन्द, योगसूत्र)

टिप्पणी—बौद्धधर्म में ध्यान के विषय भिन्न-भिन्न होते हुए भी विधि व लक्ष्य समान ही है।

समाधि—समाधि योग की अन्तिम सीढ़ी है। इसका भी उद्देश्य आत्मा को जड़ तत्त्व से हटा कर चेतन में लगाना है।

लेकिन जड़ तत्त्व से हम तभी अपने को छुटकारा दिला सकते हैं जब उस पर हमारा अधिकार हो जाय। योगियों ने अधिकार करने का एक तरीका खोज निकाला है जिसे वह ध्यान कहते हैं। उनका कहना है कि किसी चीज पर अधिकार प्राप्त करने के लिये हमें उसका ज्ञान प्राप्त होना चाहिए। इस ज्ञान को प्राप्त करने का उपाय है सवितर्क समाधि।

जिस प्रकार की समाधि में बाह्य स्थूल भूत ही ध्यान के विषय होते हैं उसे सवितर्क समाधि कहते हैं।

वितर्क का अर्थ पूछना है। सवितर्क का अर्थ बताते हुए स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं, ''सवितर्क का अर्थ है प्रश्न के साथ मानो उन स्थूल भूतों से पूछना जिससे वे अपने अन्तर्गत सत्य और अपनी सारी शक्ति अपने ऊपर ध्यान करने वाले पुरुष को दे दें।''

यद्यपि इस स्थित में प्रकृति पर अधिकार होने से नाना प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं तथापि ये सिद्धियाँ बाधक बनती हैं साधना में।

जब मनुष्य को यह अनुभव होता है कि सुख की खोज वृथा है तभी वह मुक्त हो पाता है जड़ पदार्थों से।

टिप्पणी—बौद्ध योगी भी पंच-तत्वों का क्रमशः पृथ्वी कसिण जल कसिण, अग्नि कसिण, वायु कसिण, आकाश कसिण का ध्यान करते हैं और पंचतत्वों को अपने अधिकार में करके सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं। वे इसे समथ कहते हैं।

कपिल के अनुसार, योगी अन्त में सद्विचारों को भी जड़ प्रकृति का अंश होने के कारण त्याग देते हैं तब मन भी नष्ट हो जाता है क्योंकि तरङ्गों का मन में उठना बन्द हो जाता है। तरंगें असद और सदविचारों के कारण ही तो उठती हैं। तब आत्मा बन्धन मुक्त हो जाती है। तब आत्मा अपने सहज स्वरूप में स्थित हो जाती है।

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, ''तब मनुष्य जान पाता है कि न कभी उसका जन्म था न मृत्यु, न उसे कभी इहलोक की जरूरत थी न परलोक की। तब वह जान पाता है कि न वह कभी कहीं से आया था न कहीं गया। वह तो प्रकृति थी जो यहाँ वहाँ आना-जाना कर रही थी। यह सारा खेल मन का था आत्मा का नहीं।''

इस प्रकार जब मन में स्थित संस्कारों को भी नष्ट कर दिया जाता है तो मन भी नष्ट हो जाता है तब मन में कुछ ऐसा बीज शेष नहीं रह जाता जो पुनः अंकुरित हो सके अतः उसे निर्बीज समाधि कहते हैं।

पुनर्जन्म

सनातनधर्म यह मानता है कि चौरासी लाख योनियों में जन्म लेने के बाद कोई जीव मनुष्य योनि में जन्म लेता है।

उसकी यह भी मान्यता है कि मानवजीवन मोक्ष प्राप्त करने का साधन है उसमें मोक्ष-साधना की सभी सामग्री उपलब्ध है।

लेकिन अगर इस अन्तिम अवसर से लाभ उठाकर वह मोक्ष प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं करता है तो (वह) फिर नीचे की योनि में गिर जाता है या नर्क में वास कर फिर कोई भोग योनि प्राप्त करता है (पशु पक्षी आदि का जन्म पाता है।)

बौद्धधर्म में पुनर्जन्म की मान्यता

बौद्धधर्म भी यह मानता है कि जीव जड़ता से चेतनता की ओर बढ़ता है भगवान बुद्ध स्वयं बताते हैं कि मनुष्य योनि पाने के पूर्व वह पहाड़ की एक चट्टान, सेवार, घास, वृक्ष कीड़े, मकोड़े, कछुआ, पक्षी और स्तनधारी प्राणी रह चुके थे।

इसी प्रकार मगधराजप्रासाद में बच्चों को सम्बोधित करते हुए भगवान बुद्ध बताते हैं—"बच्चों! मानवजीवन प्राप्त करने के पहले मैं पृथ्वी पत्थर, पौधों, पक्षियो और अन्य अनेक प्रकार के पशुओं की योनि में रह चुका हूँ। तुम्हारी भी हालत यही रही थी। आज तुम लोग मेरे सामने इसलिए बैठे हो कि पिछले जन्मों में हमारा कुछ न कुछ सम्बन्ध सम्पर्क रहा होगा। सम्भव है कि किसी अन्य जीवन में हम एक दूसरे के जीवन में हर्ष या दुःख के कारण रहे हों।" (वही पृ० २०९, पैरा ५)

पुनश्च- "जब उन्होंने विगत योनि में जन्म लेने की बात बताई तो बच्चे आश्चर्यचकित हो गये लेकिन उन्होंने स्पष्ट किया कि अपने पिछले जन्मों में हम सभी मिट्टी पत्थर, ओस, वायु जल और अग्नि के रूप में थे।" (वही)

इस प्रकार वह मनुष्य ही नहीं अपितु सभी वस्तुओं में यहाँ तक कि सनातनधर्म की भाँति पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदि में भी जीवन होने की बात मानते हैं।

अब एक प्रश्न उठता है कि फिर मनुष्य तक में आत्मा का अस्तित्व बौद्ध क्यों नहीं मानते हैं? मेरा विचार है कि पहले बौद्ध आत्मा की सत्ता को मानते थे कालान्तर में कुशाणों अथवा अन्य आक्रमणकारियों द्वारा हिन्दुओं और बौद्धों मे फूट डालने हेतु अनात्मवाद का अंश प्रक्षिप्त रूप से जोड़ दिया गया। भगवान बुद्ध साधना-काल में योगियों की तरह आत्मा की सत्ता का मानना अनावश्यक मानते थे। यही बात अश्वघोष बुद्धचरित में लिखते हैं—यदि आपके (आचार्य आराड कालाम) अनुसार अज्ञ साबित होता है तो आत्मा की कल्पना करने से

क्या (प्रयोजन) आत्मा के बिना भी अज्ञान (का अस्तित्व) काठ व दीवार के समान सिद्ध है। (बु० च० १२-८१-८२)

आवश्यकता है अज्ञान दूर करने की। ज्ञान प्राप्त करने की वह आत्मा को अनिर्वचनीय होने के कारण अव्याकृत कहते हैं।

भगवान बुद्ध भी मानवजीवन को सनातन हिन्दूधर्म की भाँति मोक्ष प्राप्त करने का साधन मानते हैं। सुजाता को यही बात बताते हुए भगवान कहते हैं— "शरीर कोई यन्त्र-मात्र नहीं है यह तो आत्मा का मंदिर है। यह वह नाव है, जिसके माध्यम- से नदी पार करके (नदी के) दूसरे किनारे तक पहुँचा जा सकता है।" (तिक न्यात हन्ह जहँ जहँ चरन परे गौतम के अ० ५, पृ० ५०, पैरा २

टिप्पणी—वेद भी शरीर को नाव मानता है।

यह शरीर एक साधन है जिसके द्वारा मनुष्य तृष्णा का क्षय करके जन्म (बार-बार जन्म) लेने से छुटकारा पा जाय

योचेंत सहती जम्मि तण्हं लोके दुरच्चयं।
सोका तम्हा पपवन्ति उद विन्दुं व पोक्खरा॥

"जो संसार में इस दुस्त्याज्य नीच तृष्णा को जीत लेता है, उसके शोक उस तरह जाते हैं, जैसे कमल के ऊपर से जल बिन्दु अर्थात वह निष्पाप होकर आवागमन से मुक्ति पा जाता है।"

परन्तु जो तृष्णा का क्षय न करके उसके पीछे दौड़ता रहता है वह बार-बार आवागमन के चक्र में पड़ता है—

मनु जस्स पमत्त चारिनो तण्हा बड्ढति मालुवा विप।
सोप्लवति हुरा हुरं फलमिच्छ व वनस्मि वानरो ॥ (वही, १)

अर्थात प्रमत्त होकर आचरण करने वाले मनुष्य की तृष्णा मालुवा लता की भाँति बढ़ती है, वन में फल की इच्छा से कूद-फाँद करते बन्दर की तरह वह जन्म-जन्मान्तर में भटकता रहता है।

उपरोक्त में आत्मा की सत्ता की बात बहुत स्पष्ट है। यदि आत्मा ही नहीं है तो कौन जन्म-जन्मान्तर में भटकता है। शरीर तो नाश ही हो जाता है (मरने के बाद) यदि आत्मा नहीं है तो कर्मों का फल कौन भोगता है। हाँ, हम महर्षि अरविन्द घोष की तरह कह सकते हैं कि "सभी तत्त्वों का परस्पर सम्बन्ध हैं आत्मा भी अन्य आत्माओं से जुड़ी है।"

अन्त में हम पुर्से के स्वर में स्वर मिलाकर कहना चाहेंगे कि आरम्भ में बौद्धधर्म आत्मा, पुनर्जन्म और निर्वाण (मोक्ष में) विश्वास करता था।

(आ० न०दे० बौद्ध दर्शन ४, पृ० २९३, पै० ३)

❧

कुण्डलिनी योग

योगियों का कहना है कि मेरुदण्ड के भीतर इड़ा और पिंगला नाम की दो नाड़ियाँ हैं तथा उसके बीच में शुषुम्ना नाम की एक शून्य नाड़ी है (स्नायविक शक्ति प्रवाह) है। इस शुषुम्ना नाड़ी के मन के नीचे कुण्डलिनी का निवास है।

"शुषुम्ना की बाईं ओर स्थित नाड़ी को इड़ा और दायीं ओर स्थित नाड़ी को पिंगला कहा जाता है। दोनों की समानता होने पर दोनों के मध्य स्थित शुषुम्ना नाड़ी का द्वार अपने आप खुल जाता है।"

इसी द्वार के सहारे प्राण को ऊपर उठाना योगी का ध्येय होता है। जब पाँच चक्रों का भेदन कर साधक आज्ञा चक्र में पहुँचता है तब वहाँ से उसे गुरु की आज्ञा सुनाई देती है। वह अद्वैताचारी हो जाता है और इस चक्र का भी भेदन कर कुण्डलनी ब्रह्मरंध्र में स्थित सहस्रार में पहुँच कर परम शिव से समरसता स्थापित करती है। (राजयोग प्राण का आध्यात्मिक रूप, स्वामी विवेकानन्द)

इस प्रकार कुण्डलिनी शक्ति जैसे-जैसे एक चक्र का भेदन कर दूसरे चक्र में प्रवेश करती है त्यों-त्यों मन का एक एक पर्दा मानो खुलता जाता है। और अन्त में उसे जगत के कारण का ज्ञान हो जाता है। कारण के ज्ञान होने पर कार्य का भी ज्ञान हो जाता है। और उसे तत्त्व ज्ञान या आत्मानुभूति हो जाती हैं।

इस प्रकार कुण्डलिनी शक्ति को जगाना ही तत्त्व-ज्ञान या ज्ञानातीत ज्ञान या आत्मज्ञान प्राप्त करने का उपाय है।

कुण्डली को जगाने में भगवान का, प्रेम भी सहायक होता है। कभी-कभी किसी साधक की कुण्डलिनी गुरु-कृपा से भी जागृत हो जाती है। किसी की प्राणायाम से जागृत होती है। सभी साधनाओं का उद्देश्य कुण्डलिनी को जगाना है।

चक्र छः हैं—(१) मूलाधार, (२) स्वाधिष्ठान, (३) मणिपूरक, (४) अनाहत, (५) विशुद्ध चक्र तथा (६) आज्ञा चक्र।

योग-साधना से उद्‌बुद्ध कुण्डलिनी इन्हीं छः चक्रों को क्रमशः बेधती हुई ब्रह्मरंध्र में स्थित सहस्रार में पहुँच कर शिव से समरस्ता स्थापित करती हैं।

(सर्वात्म दर्शन, पृ० ९९, १००)

अन्य योगों की भाँति कुण्डलिनी योग का भी लक्ष्य शुद्ध चित् तत्त्व की प्राप्ति है जो चित्तवृत्ति और प्राण का नियमन किये बिना सम्भव नहीं। प्राण और मन के लय से ही सहजावस्था प्राप्त होती है।

मन और पवन के स्थिर हो जाने से वीर्य भी स्थिर हो जाता है।

मनः स्थैर्य स्थिरो वायुस्ततो बिन्दुः स्थिरो भवति।
बिन्दुस्थैर्यात् सदा रत्त्वं पिण्डस्थैर्य प्रजायते॥

(हठयोग प्रदीपिका ४/२१, २२, २३, २८)

तन्त्र कहते हैं कि आत्मा शरीर में धमनी के अक्षरों के रूप में है। माता दुर्गा (शक्ति) पचास वरणों के रूप में मूलाधार में अवस्थित है—

The Tantras say that the soul in the body is the very self of the letter of Dhvani (Sound). The mother. the embodiment of the fifty letters (Varna), is present in the various letters in the deferent Chakras. Like the melody which issues when chords of a letters are struck. The mother who moves in the six Chakras and who is the very self of letters awakens with a bust of harmony when the chords of the letters (Varnas) are struck in their order and Siddhi becomes as easy of attainment to the Sadhaka as the Amalka fruit in one's hand when she is roused.

इस साधना के अन्तर्गत तीन भाव (पशुभाव, वीरभाव और दिव्यभाव) तथा सात आचार हैं।

पशुभाव—जिन जीवों में अविद्या के आवरण के कारण ज्ञान का लेश-मात्र भी उदय नहीं हुआ उनकी मानसिक प्रकृति पशुभाव वाला कहलाती है।

वीरभाव—अज्ञान रज्जु को काटने वाला वीरभाव वाला कहलाता है।

दिव्यभाव—द्वैतभाव को दूर कर उपास्य की सत्ता में अपनी सत्ता खोकर अद्वैतानन्द लेने वाले को दिव्यभाव वाला कहा जाता है।

दिव्यभाव में कौलाचार

कौल शब्द कुल से बना है। कुल का अर्थ कुण्डलिनी और अकुल का अर्थ शिव है।

इस प्रकार जो व्यक्ति योगविद्या के सहारे कुण्डलिनी का उत्थान कर सहस्रार में स्थित शिव के साथ संयोग करा देता है उसे कौल कहते हैं।

कुलं शक्तिरिति प्रोक्तं कुलं शिव उच्यते।
कुलेऽकुलस्य सम्बन्धः कौलमित्यभिधीयते॥

कौल के गुण

कर्दमे चन्दनेऽभिन्नं पुत्रे शत्रौ तथा प्रिये।
श्मशाने भवने देवि! तथैव काञ्चने तृणे॥
न भेदोयस्य देवेशि! स कौलः परिकीर्तितः (भाव सिद्धि)

शिवशक्ति का उपासक होते हुए भी उसमें साम्प्रदायिक भेदभाव की भावना नहीं रहती है—

अन्तः शाक्तः वहिः शैवाः सभा मध्ये च वैष्णवः।
नाना रूप धरे कौला विचरन्ति महीतले॥

गुरु का महत्त्व—कुण्डलिनी साधना प्रयोगात्मक साधना है अतः इसमें गुरु का और वह भी ऐसे गुरु का जो स्वयं कुण्डलिनी साधना में सिद्ध हो, पथ-प्रदर्शन परम आवश्यक है अन्यथा हानि की सम्भावना रहती है।

गुप्त साधना

कुण्डलिनी साधना का अभ्यास सिद्धगुरु अपने योग्य शिष्य से कराता है। साधना के विभिन्न स्तरों का वर्णन भी सांकेतिक भाषा में किया जाता है ताकि सामान्य जन उसका अभ्यास न कर सकें।

इतनी सतर्कता के उपरान्त भी उसके पंचमकारों का बड़ा दुरुपयोग हुआ है और इस साधना को बड़ा अपमान और अपजस मिला है।

यथा कुण्डलिनी के साथ जो आचार किया जाता है उसे कुलाचार कहते हैं। यह आचार मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन इन पाँच मकारों के सहयोग से सम्पन्न होता है।

मद्य-कुलार्णव तन्त्र में मद्य की व्याख्या निम्न प्रकार से की गई है—

व्योम पङ्कज निस्यन्द सुधा पान रतो नरः।
मधुपायी समः प्रोक्तः इतरे मद्य पायिनः॥

अर्थात ब्रह्मरन्ध्र में स्थित जो सहस्रार दलकमल है उसमें से चूने वाले रस यानी अमृत को मद्य कहते हैं।

मांस

पुण्य और पाप दोनों को मांस कहा गया है और इनके मारने वाले को मांसाहारी।

जो साधक पुण्य और पापरूपी पशुओं को ज्ञानरूपी खड्ग से मारता है और अपने चित्त को ब्रह्म में लीन करता है वही मांसाहारी है। भावार्थ यह कि पुण्य और पाप दोनों मुक्ति प्राप्त करने की साधना में बाधक है और जन्म-मरण के चक्र में डालने वाले हैं अतः इनसे ऊपर उठने वाला ही साधक है।

मत्स्य

शरीर में इड़ा-पिंगला नाड़ियों को (तान्त्रिक भाषा में) गंगा-जमुना कहते हैं। इनके योग से प्रवाहित होने वाले श्वास और प्रश्वास ही दो मत्स्य हैं जो साधक प्राणायाम द्वारा श्वास प्रश्वास बन्द करके कुम्भक द्वारा शुषुम्ना मार्ग में प्राणवायु का संचालन करता है वही यथार्थ में मत्स्य साधक भक्षक है।

(आगम सार से उद्धृति बौद्ध द०मी०व०दे०)

मैथुन

जप की तुलना सोते हुए आदमी को हिला कर जगाने से दी जाती है दोनों होंठ शिव और शक्ति हैं। उच्चारण की गति (दोनों होंठ का मिलना) हैं मैथुन है। (शक्ति और शास्त्र अ० शक्ति और मन्त्र, पृ० ५१५)

मुद्रा

शरीर की विभिन्न स्थितियों का नाम ही मुद्रा है। मुद्रायें दस हैं यथा—

महामुद्रा महाबन्धो महावेधश्चखेचरी।
उड्यानं मूल बन्धश्च बन्धो जालन्धराभिधः॥
करणी विपरीताख्या वज्रोली शक्ति चालनम्।
इदं हि मुद्रा दशकं जरामरण नाशकम्॥

(हठयोग प्रदीपिका)

अर्थात महामुद्रा, महाबन्ध, महावेध, खेचरी, उड्यान, मूलबन्ध, जालन्धर, करणी, विपरीत और वज्रोली शक्ति का संचालन करने वाली दस मुद्रायें है।

इस प्रकार शरीर की विभिन्न स्थितियों का नाम ही मुद्रा है।

बौद्धधर्म में कुण्डलिनी साधना

बौद्धधर्म में सहजिया लोग वामशक्ति (नाड़ी) को ललना और दक्षिण नाड़ी को रसना कहते हैं। शुषुम्ना को अवधूती कहते हैं।

सनातनधर्म के तन्त्रों की भाँति बौद्धधर्म में भी शुषम्ना को क्लेश और पापों का नाश करने वाली कहा गया है—

अवहेलया अना भोगेन क्लेशादि पापान धुनेति।

अर्थात वह शक्ति जो अनायास ही क्लेशादि पापों को दूर कर देती है।

अवधूती मार्ग ही अद्वैय मार्ग, शून्य पथ, आनन्द स्थान, आदि शब्दों से अभिहित किया जाता है। (बौद्धधर्म मीमांसा-बुद्ध तन्त्र ब०उ०)

उपाध्यायजी आगे लिखते हैं—

वाम नाड़ी और दक्षिण नाड़ी के मिलन से जो अग्नि या तेज उत्पन्न होता है, उसकी प्रथम अभिव्यक्ति नाभि चक्र में होती है। शुषुम्ना की इस अवस्था में उसे सहजिया लोग चण्डाली नाम से पुकारते हैं। जब चण्डाली विशुद्ध हो जाती है तब उसे डोम्बी कहते हैं और अधिक शुद्ध होने पर उसी को बंगाली कहते हैं। इस प्रकार अवधूती अवस्था (इस अवस्था) में इड़ा और पिङ्गला अपना कार्य पृथक-पृथक करती हैं चण्डाली (इस) अवस्था में द्वैता द्वैत का निवास रहता है।

बङ्गाली अवस्था अद्वैत की सूचक है। तन्त्रशास्त्र में भी ये तीनों विभाजन है वहाँ अवधूती, डोम्बो तथा बंगाली को क्रमशः अपरा, परापरा तथा परा नाम से पुकारा जाता है। इसी प्रकार दोनों साधनाओं का एक ही लक्ष्य भी है।

इड़ा और पिंगला की शक्ति को (ललना और रसना की शक्ति को) शुषुम्ना के मार्ग से प्रवाहित करना ही सहजिया लोगों की भाषा में मध्यम मार्ग या ऋजु मार्ग का अवलम्बन है।

इस संदर्भ में भुसुक (सिद्धाचार्य शान्ति पाद) की निम्न उक्ति दृष्टव्य है—

वाम दहिन दुइ घाटा छाँड़ी।
शान्ति बुगथेउ संके लिउ॥

अर्थात वाम और दक्षिण मार्ग को छोड़कर मध्यम मार्ग ग्रहण करना चाहिए अन्यथा बुद्धत्व प्राप्त करने या महासुख या तथागत भाव की प्राप्ति सम्भव नहीं।

सहस्त्रार की कल्पना

जिस प्रकार सनातनधर्म में हठयोगी और तान्त्रिक मस्तक में सहस्त्रार कमल मे शिव का स्थान बताते हैं उसी प्रकार वज्रयानी सिद्ध भी मस्तक में कमल की कल्पना करते हैं और उस कमल की कर्णिका के मध्य बुद्ध या वज्र गुरु का आसन मानते हैं।

जिस प्रकार तन्त्र में शिव-शक्ति के मिलन को अद्वैत सत्ता के अनुभव की बात करते हैं उसी प्रकार बौद्ध सिद्ध भी अद्वैत भावना की बात करते हैं।

ओ३म् या वज्र जाप

जिस प्रकार सनातनधर्म में ओ३म् मन्त्र या बीज मन्त्र द्वारा कुण्डलिनी को जगाया जाता है उसी प्रकार सिद्ध लोग वज्र जाप द्वारा कुण्डलिनी को जगाते हैं।

आचार्य बलदेव उपाध्याय लिखते हैं, "जो इस शून्यमय अद्वैत भाव में अधिष्ठान कर आत्मप्रकाश करता है वही सच्चा गुरु है।" (बौद्धधर्म मीमांसा)

सनातनधर्म के तन्त्रों की भाँति बौद्धधर्म में भी पंचमकारों की मान्यता है। श्री समाज तन्त्र का स्पष्ट कथन है कि कठिन नियमों के पालन से सिद्धि नहीं मिलती केवल पतन होता है—

दुष्करैर्नियमैस्तीव्रे, मूर्तिः शुष्यति दुःखिता।
दुःखाब्धौ क्षिप्यते चित्तं पिक्षेपात् सिद्धिरन्यथा॥

अर्थात दुःखकर नियमों के पालन से शरीर केवल दुःख पाकर सूखता है, चित्त दुःख के समुद्र में गिर पड़ता है। इस पर विक्षेप होने से सिद्धि नहीं मिलती।

(बौद्धधर्म मीमांसा)

तिब्बत के बौद्ध तन्त्र में इस के स्पष्ट उदाहरण मिलते हैं। भगवान विष्णु बुद्ध के रूप में महर्षि वशिष्ठ को पंचमकारों की शिक्षा देते हैं। महर्षि वशिष्ठ ने इन शब्दों को सुनकर और देवी सरस्वती का ध्यान करते हुए मद्य साधना हेतु कुल मण्डप को गये और बार-बार मद्य, मांस, मत्स्य, सूखे दाने और शक्ति की साधना करके पूर्ण योगी हो गये। (Shakti & Shakta Chinachar W. Rofe)

ऐसा ही एक दृष्टान्त 'ब्रह्म यमल' का भी उडरफ महोदय ने उसी पुस्तक में दिया है।

जब वशिष्ठजी ने कामाख्या के देवी मन्दिर में जाकर अपनी असफलता की बात बताई तो देवी ने उन्हें बताया कि बुद्धरूप में विष्णु ही उन्हें पंचमकारो की शिक्षा दे सकते हैं।

वशिष्ठ ने जब विष्णु को मदिरा और स्त्रियों के भोग में डूबा देखा तो उन्हे आश्चर्य हुआ और उन्होंने कहा कि यह आचार तो वेदविरुद्ध है। मैं इसे नहीं कर सकता। तभी आकाशवाणी हुई—

अरे, तुम जो शुभ कर्म के प्रति समर्पित हो इस प्रकार मत सोचो। बुद्ध, जो कि विष्णु के अवतार और तत्त्वज्ञानी हैं, ने उन्हें म से प्रारम्भ होने वाले पच-मकारों (मदिरा आदि) की साधना को बताया है। (वही, पृ० १९८, पै० १)

गुरुतत्त्व

वज्रयान में तन्त्रों के समान गुरु की महिमा है। वज्रयानी गुरु काय, वाक तथा चित्त की दृढ़ता पर आग्रह करता है।

इस दृढ़ता की अभिव्यक्ति वज्र शब्द के द्वारा की जाती है।

वज्र कोई नई वस्तु नहीं है। यह शून्यता का ही मौलिक प्रतीक है। यह वज्र ज्ञान अवर्णीय हैं—

भावाभावौ न तौ तत्त्व, भवेत् ताभ्यां विवर्जितम्।
न देशत्वमतो युक्तं, सर्वज्ञो न भवेत्तदा॥

(ज्ञान सिद्धि १२-४)

अर्थात मूल तत्त्व साकार और निराकार दोनों से भिन्न है वह न भाव रूप है न अभाव रूप और न तदुभय वर्जित है। इस सम्बन्ध में उपाध्यायजी एक और उदाहरण देते हैं। वज्र ज्ञान शून्य ज्ञान से भिन्न नहीं है ?

अप्रतिष्ठं यथाकाशं व्यापि लक्षण वर्जितम्।
इदं तत् परम तत्त्वं वज्रज्ञान मनुत्तरम्॥

(ज्ञान सिद्धि १-४७)

अर्थात आकाश के समान अप्रतिष्ठित, व्यापक तथा लक्षण वर्जित जो तत्त्व है वही वज्रज्ञान है।

इस बुद्ध और बुद्धेश्वरी के मिलन को (शिव और शक्ति के मिलन को) एव शब्द के द्वारा व्यक्त किया गया है। एवं की व्याख्या सम्बन्धी तीन दोहे काण्हपाद के भी दिये हैं—

एकारस्तु भवेन्मातावकारस्तु रताधियः।
बिन्दुश्च नाहतं ज्ञानं तज्जातान्य क्षराणि च॥

एवं युगल रूप का वाचक है। परमार्थ एक भी नहीं है न दो ही है अपितु दो होते भी एकाकार हैं।

टिप्पणी—इस शिव और शक्ति के युगल रूप को वैष्णव युगल मूर्ति (राम एवं सीता), तान्त्रिक लोग यामल (शिवशक्ति) और बौद्ध लोग युगनद्ध (बुद्ध और बुद्धेश्वरी) नाम से पुकारते हैं।

एवं शब्द की उपयोगिता काण्ह पाद ने निम्न प्रकार से की है-

एवं कार बीज लइअ कुसुमअ अरविन्दए।
महुअर रुएँ सुरअ-वीर जिघइ मअरन्दए॥

अर्थात एवं बीज को लेकर अच्युत महाराग सुख को चिन्त उसी प्रकार अनुभव करता है जिस प्रकार भ्रमर खिले हुए कमल के ऊपर बैठकर मकरन्द (कमल के रस का) स्वाद लेता है।

इसी प्रकार इस एवं (शिव शक्ति) अर्थात बुद्ध और बुद्धेश्वरी के मिलन का ज्ञान साधक को समग्र विषयों का ज्ञान करा देता है—

एवङ्कार जेवुज्झिअ ते बुज्झिअ सअल असेस।
धम्म करण्डओ सो हुरे णिअ पहुधर वेस॥

(बौद्ध दर्शन मीमांसा)

अर्थात जिसने एवङ्कार को (परमार्थ के ज्ञान को) जाना उसने समग्र विषयों को जान लिया। यह धर्म करण्डक (बुद्ध का धर्म काय रूप है। इसके ज्ञान होते ही साधक अपने गुरु वज्रधर का रूप धारण कर लेता है।

उपरोक्त से सिद्ध होता है कि उपरोक्त तत्त्व का ज्ञान बौद्धों के समान हिन्दुओं को भी ज्ञात था।

बौद्धधर्म में पंचमकारों का रहस्य

सनातन हिन्दूधर्म के समान बौद्धधर्म में भी ये पंचमकार प्रतीकात्मक है। काल चक्र पान (महायान में मन्त्र दीक्षा के समय गुरु जो प्रतिज्ञा करवाता है उससे यह बात पूरी तरह सिद्ध हो जाती है—

नहि प्राणिवधः कार्यः, त्रिरत्नं मा परित्यज।
आचार्यस्ते न सन्त्याजः, सवरो दुरवि क्रमः॥

अर्थात जीव का वध कभी न करना, तीनों रत्नों अर्थात बुद्ध, धर्म औ संघ को कभी न छोड़ना, आचार्य का त्याग न करना।

इसी प्रकार गुरु शिष्य को प्राणीहिंसा, चोरी, कामाचार तथा मिथ्या भाषण न करने का भी उपदेश देता है—

प्राणिनश्च न ते घात्या, अदत्तं नैव चाहरेत्।
मा चरेत कामांथ्या वा, मृषा नैव हि भाषयेत्॥

(ज्ञान सिद्धि ८-१९)

अर्थात प्राणीहिंसा, अदत्ताहरण, कामाचार तथा मिथ्या भाषण कभी न करना।

इसी प्रकार वह मद्यपान न करने का भी उपदेश देता है—

सर्वानर्थस्य मूलत्वाद मद्यपानं विवर्जयेत्।

अर्थात समग्र अनर्थों की मूल होने से मद्यपान कभी न करना चाहिये।

(वही)

इस प्रकार बौद्धधर्म में भी पंच मकारों का स्थूल रूप (भौतिक रूप) वास्तविक नहीं।

मुद्रायें

कुण्डलिनी योग में दस मुद्राओं का वर्णन है। महायान (बौद्धधर्म) के काल चक्र यान अथवा सहजयान में उन्मुनी मुद्रा का बड़ा गुणगान है। कबीर ने भी इस मुद्रा का वर्णन किया है—

अवधू मेरा मन मतिवारा
उन्मनि चढ़ा गगन रस पीवै त्रिभुवन भयउ उजियारा।
गुड़ करि ध्यान करि महुआ करि माठी मनधारा
सुखमनि नारी सहज सयानी पीवै पीवन हारा॥

सिद्ध सरहपा ने इस उन्मनी अवस्था का वर्णन इस प्रकार किया है—

जहँ मन पवन न सञ्चरइ, रवि ससि नाह पवेश।
तहि घट चित्त विसाम करु, सरहे कहिअ उवेश॥

जिस उन्मनी मुद्रा का इतना महत्त्व है उसका क्या स्वरूप है?

देवरहा बाबा बताते हैं, "आधी खुली और आधी बन्द आँखों से नासिका के अग्र भाग को लगातार देखते रहना उन्मनी मुद्रा है।"

टिप्पणी—उन्मनी मुद्रा के पूर्व शाम्भवी मुद्रा और शाम्भवी मुद्रा के पूर्व खेचरी मुद्रा का अभ्यास करना पड़ता है।

इस हेतु भगवान बुद्ध यद्यपि स्वयं उन्मनी मुद्रा की अवस्था में रहते थे जैसा कि तिकन्यात हन्ह ने अपनी पुस्तक (Old Path & White Clouds) में

लिखा है (स्वाति ने (बुद्ध को) "देखा उसकी पीठ सीधी थी और उसके पाँव जघाओं पर रखे हुए थे। वह एकदम संयत भाव से बैठा था उसकी आँखें अध खुली रह रही थीं)।" तथापि वह दूसरों को प्रारम्भिक चरण में खेचरी मुद्रा की ही शिक्षा देते थे।

असित ऋषि के भाँजे नालक को खेचरी मद्रा बताते हुए भगवान गौतम बुद्ध कहते हैं—"मैं तुम्हें ज्ञानयोग (मौनेय) को बताऊँगा। वह छुरे की धार के समान होता है। तालु से जीभ सटा कर पेट के प्रति संयमी बने।"

(सुत्तनिपात-नालक सुत्त ३८)

भगवान खेचरी मुद्रा में प्रवीण थे यह निम्न उद्धरण से भी प्रमाणित होता है फिर भगवान ने जीभ निकाल कर (उससे) दोनों कानों के श्रोतों को छुआ, दोनों नाकों के श्रोतों को छुआ, सारे ललाट मण्डल को जीभ से ढाँक लिया।

(वही, सेल सुत्त ३, ७)

हठ योग प्रदीपिका में खेचरी मुद्रा का जो स्वरूप बतलाया गया है उससे भी यही बात सिद्ध होती है। सर्वात्म दर्शन में देवरहा बाबा कहते हैं—जिह्वा को लौटा कर कपाल-कुहर में प्रविष्टि कराना होता है और दृष्टि आज्ञा चक्र में (भृकुटियों के मध्य में) लगानी होती है। जिह्वा इतनी बढ़ जानी चाहिए कि वह भृकुटि के मध्य तक पहुँच जाए। इसके लिए उसका छेदन, चालन और दोहन करना पड़ता है। इसमें कई महीने लग जाते हैं। जिह्वा के बढ़ने पर उसे तीनों नाड़ियों के मार्ग से कपाल कुहर में पहुँचाना होता है।

उपरोक्त नालक और सेल के उदाहरणों से उक्त बात पूरी तरह सिद्ध हो जाती है।

इस प्रकार यह बात प्रमाण से सिद्ध होती है कि भगवान बुद्ध सदैव उन्मनी मुद्रा में (जिसे तुरीयाअवस्था भी कहा जाता है) रहते थे। और चूँकि उन्मनी मुद्रा के पूर्व शाम्भवी मुद्रा का अभ्यास तथा शाम्भवी के पूर्व खेचरी मुद्रा का अभ्यास करना पड़ता है अतः भगवान उपरोक्त मुद्राओं में सिद्धहस्त थे तथा अपने शिष्यों को भी इसकी शिक्षा देते थे।

✤

भारतीय दृष्टिकोण की अन्य पुस्तके

सर्वदर्शन सार	*स्वामी शांतिधर्मानंद सरस्वती*	175.00
पूर्णयोग	*स्वामी शांतिधर्मानंद सरस्वती*	150.00
डायना के अंतर्द्वंद	*कुमुद शर्मा*	150.00
भारतीय सामाजिक एवं आर्थिक चिन्तन	*कृष्ण कुमार सोमानी*	75.00
Indian Economic and Social Traditions	*Krishna Kumar Somani*	490 00
Governance and Human Rights	*Ed. by Bharat Jhunjhunwala*	525.00
Human Development	*Ed. by Bharat Jhunjhunwala*	600 00

प्राप्त करने का स्थान

मोतीलाल भीमराज चैरिटी ट्रस्ट

732, माडर्न सोसायटी, सेक्टर 15

रोहिणी, दिल्ली – 110 085

फोन : (011) 729 8589, 789 3673

ई-मेल : bharati@nde.vsnl.net.in